खाइयों वाले विनष्ट हो गए। (खाइयों में) आग (भड़काने वाले) जिसमें ख़ूब ईंधन (झोंका गया) था। जब वे उस आग पर (धरना मारकर) बैठे हुए थे और वे मोमिनों से जो कुछ (मामिला) कर रहे थे उनका दिल उसकी वास्तविकता को समझता था।

मज़हब के नाम पर ख़ून

लेखक

हज़रत मिर्ज़ा ताहिर अहमद साहिब

रहिमहुल्लाहो तआला

इमाम जमाअत अहमदिय्या

"मज़हब के नाम पर ख़ून"

लेखक : हज़रत मिर्ज़ा ताहिर अहमद

अनुवादकर्ता : *अतिया रिज़वान*

प्रकाशन : नवम्बर 2004

संख्या : 2000

प्रकाशक : नज़ारत नश्र-व-इशाअत
सद्र अंजुमन अहमदिय्या
क़ादियान - 143516
ज़िला : गुरदासपुर (पंजाब) भारत ।

MAZHAB KE NAAM PAR KHOON
(Murder in the name of Allah)

By : **Hazrat Mirza Tahir Ahmad**

Translated by: Atiya Rizwan

Published in : November 2004

Copies : 2000

Published by: Nazarat Nashr-o-Ishaat
Sadr Anjuman Ahmadiyya
Qadian - 143516
Distt.: Gurdaspur (P.B.) INDIA.

ISBN : 81-7912-065-1

समर्पण

उन निर्दोष आत्माओं के स्मरण में
जो इस संसार के जीवन में मनुष्य
के अत्याचारों तथा अन्यायों का
निशाना बनी रहीं ।

भूमिका

जिन दिनों पाकिस्तान में पहली बार अहमदिय्या विरोधी Agitation 1953 ई. में ज़ोरों पर था तथा मौलवी मौदूदी साहिब की पुस्तक ''अल्-जिहादु फ़िल्-इस्लाम'' प्रकाशित हो चुकी थी, जिसमें जिहाद का अत्यधिक अशुद्ध विचार प्रस्तुत किया गया था उस समय अहमदियों के विरुद्ध जमाअते इस्लामी तथा अन्य दियोबंदी व अह्‌रारी पार्टियों के ''मुजाहिदीन'' लहू की होली खेल रहे थे । उनके मकान तथा दुकानें लूटी और जलाई जा रही थीं तथा हर प्रकार से उनकी जीवन रेखा उनपर तंग की जा रही थी । सय्यदना हज़रत मिर्ज़ा ताहिर अहमद (ख़लीफ़तुल मसीहुर्रबिअ रहिमहुल्लाहु तआला) ने क़ुर्आन व हदीस के अनुसार ठोस व विस्तारपूर्वक दलीलों द्वारा मज़हब के नाम पर ख़ून बहाने की इस घिनोनी क्रिया की निंदा करते हुए भविष्य में उसके घातक परिणामों से परदा उठाया था । आप ने उन ''मुजाहिदीन'' तथा पाकिस्तानी सरकार को नसीहत की थी कि यदि वह अपनी हरकत से बाज़ न आए तो पाकिस्तान की गलियों में न केवल अहमदियों का बल्कि अन्य मुस्लिम संप्रदायों का ख़ून भी बहना शुरू हो जायेगा । आज सय्यदना हज़रत अक़दस ख़लीफ़तुल मसीहुर्रबिअ रहिमहुल्लाहु तआला की यह भविष्यवाणी पाकिस्तान में पूरी हो चुकी है । पाकिस्तान के अधिकारी तथा जनता आए दिन मज़हब के नाम पर बहाये जाने वाले ख़ून से अत्यन्त दु:खी हो चुके हैं और वे इस यातना के कष्ट को जीवन के हर भाग में महसूस कर रहे हैं ।

इस प्रकार आज के युग में इस पुस्तक का महत्त्व बहुत बढ़ जाता है । यह पुस्तक अब तक विभिन्न भाषाओं में कई बार प्रकाशित हो चुकी है । अब नज़ारत नश्रो इशाअत (प्रकाशन विभाग) क़ादियान इसका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त कर रहा है ।

अल्लाह तआला इसके द्वारा बहुत से लोगों को सच्चाई का रास्ता दिखाये । आमीन !

नाज़िर नश्र-व-इशाअत, क़ादियान

विषय सूचि

*

प्राक्कथन

सिद्धान्तों में मतभेद तो संसार में सदा से रहा है और सदा रहेगा तथा मानव इस संबंध में पूरी तरह स्वतंत्र है कि अपने हृदय के विश्वास के अनुसार जो मत चाहे अपनाए तथा अपनी मुक्ति जिन मान्यताओं में चाहे कल्पित करे । परन्तु यह अधिकार किसी को नहीं दिया जा सकता कि अपने धार्मिक सिद्धान्तों को ज़बरदस्ती किसी पर ठोंसने का प्रयास करे या एसे सिद्धान्तों का अनुसरण करे जो अत्याचार और अन्याय की शिक्षा देते हों । यह ढंग जब भी अपनाया जायेगा, हमेशा एक न समाप्त होने वाले उपद्रव का क्रम आरम्भ हो जायेगा ।

एक उचित सीमा तक मतभेदों को दूर करने या सच्चाइयों को फैलाने का एक और केवल एक ही तरीका है कि शान्ति तथा सुरक्षा के वातावरण में हर मतभेद से दूर होकर एक दूसरे तक अपने विचारों को पहुँचाया जाए और एक दूसरे के दृष्टिकोण को ईमानदारी के साथ समझने का प्रयास किया जाए । मतभेद जितने जटिल होंगे उतना ही इस संबंध में नर्मी, सहनशीलता तथा शिष्टता की अधिक आवश्यकता होगी और इस बात की आवश्यकता होगी कि कट्टर विरोधी के मामले में भी न्याय का दामन हाथ से न छोड़ा जाए और सिद्धान्तिक मतभेदों पर क्रोधित होकर युद्ध का बिगुल फूँकने की आदत छोड़ दी जाए ।

परन्तु बहुत ही दुःख के साथ कहना पड़ता है कि बहुत से अन्य पूर्वी देशों की तरह हमारे देश में भी ऐसे पवित्र तथा शान्तिमय वातावरण का अभाव है और एक एसे कम प्रशिक्षित घोड़े की तरह जो ज़रा सी तेज़ चाल के संकेत पर अपनी ''चाल'' के सब नियमों को भूलकर सरपट हो जाने का आदी हो, हम भी अपने मतभेदी वार्तालाप में संयम तथा सहनशीलता की सब सीमाएँ तोड़ कर आगे निकल जाते हैं ।

इन कुछ पृष्ठों में उन दृष्टिकोणों और कार्यलिपियों का एक विश्लेषित अध्ययन श्रोताओं की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है जो कई बार देश के वातावरण को विषैला बनाने का कारण बन चुके हैं और बन रहे हैं ।

मिर्ज़ा ताहिर अहमद

मज़हब के नाम पर ख़ून

मानवीय इतिहास ख़ाक व ख़ून में लिथड़ा पड़ा है । उस दिन से ले कर आज तक जब क़ाबील ने हाबील का वध किया था, इतना नाजाएज़ ख़ून बहाया गया है कि यदि उस ख़ून को एकत्रित किया जाए तो आज इस धरती पर बसने वाले समस्त इन्सानों के कपड़े उस ख़ून में रंगे जा सकते हैं, बल्कि शायद वह ख़ून बचा रहे और हमारी आगे आने वाली नस्लों के वस्त्रों को भी लाल रंग देने के लिए पर्याप्त हो, परन्तु आश्चर्य है कि इस पर भी इन्सान की ख़ून की प्यास आज तक नहीं बुझी !

क़ाबील के हाथों हाबील का वध वह पहला अन्याय पूर्ण वध है, जिसका वर्णन क़ुर्आन और बाईबल ने आज तक हमें शिक्षा दिलाने के लिए सुरक्षित रखा है । और यह वर्णन उस दिन तक सुरक्षित रहेगा जिस दिन अन्तिम इन्सान को इस संसार से मौत दी जाएगी और समस्त प्रकृति समाप्त कर दी जाएगी । परन्तु जब इन्सान ऐतिहासिक भूमिका में इन्सानी पात्रों का अध्ययन करता है और फिर आज के संसार में अपनी दशा और अपने ईर्द गिर्द पर एक नज़र दौड़ाता है तो यह बात एक कटाक्ष बन कर उसके हृदय में फांस की भांति चुभने लगती है कि इन्सान पहले भी अत्याचारी था, और आज भी अत्याचारी है, पहले भी अन्यायी था और आज भी अन्यायी है । उसकी निर्दयता की कथा लम्बी है और इस कथा के अध्याय असीमित हैं और वह रक्त की प्यास जो क़ाबील के हृदय में धधकी थी आज भी असंख्य सीनों में धधक सकती है । यह वह आग है जो कि हज़ारों बर्षों की सिंचाई के पश्चात् भी ठंडी न हो सकी ।

व्यक्तिगत् रक्तपातों के उदाहरण भी असंख्य हैं, असीमित हैं और उस सामूहिक रक्त पात की उदाहरणें भी जो जातियों ने जातियों पर किए, सागर की न थकने वाली लहरों की भांति एक भाग में बसने वालों

ने दूसरे भाग में बसने वालों पर चढ़ाईयां कीं और जन समूहों के जनसमूह लुटेरों के लश्कर भीड़ के रूप में एकत्रित हो कर नए देशों को पराजित करने के लिए निकले । क़ैसर[1] ने भी रक्तपात किया और किसरा[2] ने भी । सिकन्दर महान के हाथ भी रक्त से रंगीन हुए और नीरू के भी । और हलाकू और चंगैज़ के हाथों हुई बग़दाद की तबाही से इतिहास के पन्ने आज तक ख़ून से रंगे हुए हैं ।

यह रक्तपात कभी मान-सम्मान के नाम पर किए गए कभी ईर्ष्या व द्वेष के आधार पर । कभी आजीविका की खोज में निकली हुई भूखी जातियों ने यह अत्याचार किए और कभी केवल समस्त संसार को विजयी करने का लालच निर्दयी महाराजाओं का उद्देश्य था । फिर ऐसा भी बहुत बार हुआ कि यह रक्तपात स्वयं ख़ुदा के नाम पर किए गए और धर्म की ओट बना बना कर मानव जाति का रक्त बहाया गया । यह सब कुछ हुआ और आज भी हो रहा है और अपने पात्र की यह प्रवृत्ति देख कर इन्सान का दिल कभी कभी निराशा से भर जाता है और वह सोचने लगता है कि क्या इसी कारण इन्सान को पैदा किया गया था ? एक धर्म ही था जिससे यह आशा थी कि मानव को मानवता के शिष्टाचार सिखाएगा परन्तु स्वंय उसका दामन भी रक्त रंजित दिखाई पड़ता है ।

स्वभाविक रूप से यह प्रश्न मन में पैदा होता है और तुरन्त आदम की पैदाइश की उस घटना की ओर दिमाग़ चला जाता है जिसका वर्णन क़ुर्आन और बाईबल दोनों में विद्यमान है । क़ुर्आन करीम इस घटना को इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि :-

وَاِذْ قَالَ رَبُّکَ لِلْمَلٰٓئِکَةِ اِنِّیْ جَاعِلٌ فِی الْاَرْضِ خَلِیْفَةً ؕ قَالُوْٓا اَتَجْعَلُ فِیْهَا مَنْ یُّفْسِدُ فِیْهَا وَیَسْفِکُ الدِّمَآءَ وَنَحْنُ نُسَبِّحُ بِحَمْدِکَ وَنُقَدِّسُ لَکَ ؕ قَالَ اِنِّیْٓ اَعْلَمُ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ○ (البقرة:۳۱)

(सूरत बक़रा :31)

---

1 ईरान के राजा को कहते हैं ।

2 रूम के राजा का लक़ब ।

अर्थात् "उस समय को याद कर, जब तेरे रब ने फ़रिश्तों से फ़र्माया कि मैं धरती पर अपना नायब (प्रतिनिधि) बनाने वाला हूँ । फ़रिश्तों ने कहा कि क्या तू वहां एक ऐसा व्यक्ति बनाएगा जो उसमें झगड़ा करे और रक्तपात करे जबकि हम तो तेरी स्तुति के साथ तसबीह (ईश्वर के गुण गाना) करते हैं और तेरी कुद्दूसीय्यत (पवित्रता) के गुण गाते हैं । ख़ुदा तआला ने फ़र्माया मैं अधिक जानता हूँ उन बातों को जिनकी तुम को कुछ ख़बर नहीं।"

ख़ुदा तआला और फ़रिश्तों का यह वार्तालाप पढ़ कर कुछ देर के लिए तो इन्सान एक आश्चर्यजनक दुविधा में पड़ जाता है । क्योंकि धार्मिक इतिहास पर एक दृष्टि डालने से तो दिखाई पड़ता है कि फ़रिश्तों की बात ही ठीक है, और इन्सान यह सोचने लगता है कि यदि फ़रिश्तों का कथन ठीक था तो ख़ुदा तआला ने फिर क्यों उनके सुझाव को ठुकरा दिया और उस आपत्ति को नकार दिया जो उसकी नयाबत (प्रतिनिधित्व) अर्थात् नबुव्वत के क्रम पर लागू होती थी और सबसे अधिक उसके वास्तविक प्रतिनिधि अर्थात् हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम उसकी चपेट में आते थे । एक ओर यदि हम धार्मिक इतिहास का अध्ययन करें, चाहे वे संसार के किसी भाग से सम्बन्ध रखता हो, उत्तर का हो या दक्षिण का, पूर्व का हो या पश्चिम का, हमें धर्म के नाम पर किए हुए ऐसे ऐसे भीषण अत्याचारों का ज्ञान होता है कि उनके अध्ययन से भी रौंगटे खड़े हो जाते हैं और दृष्टि धार्मिक शिष्टाचारों से निराश हो कर थकी हारी लौट आती है । उस समय मन में कुछ इस प्रकार के विचार मंडलाने लगते हैं कि :-

"हुई जिनसे तवक़्क़ो ख़स्तगी की दाद पाने की ।
वह हम से भी ज़्यादा ख़स्ता-ए-तेग़े सितम निकले ।"

धर्म जिससे आशा थी कि वह मानवता को झगड़े और रक्तपात से मुक्ति दिलाएगा वह तो स्वयं ही मानवता के रक्तपात में सम्मिलित नज़र आता है ।

दूसरी ओर जब ख़ुदा तआला के इस निश्चित निर्णय की ओर

इन्सान की दृष्टि उठती है कि धर्म हरगिज़ झगड़े और रक्तपात के उद्देश्य से स्थापित नहीं किया जा रहा बल्कि यह विचार अज्ञानता की पैदावार है और अत्यन्त निराधार है तो यद्यपि आश्चर्य कम नहीं होता परन्तु निराशा के अन्धकार में आशा की एक किरण फिर रौशन हो जाती है। इन्सान प्रसन्नता और आश्चर्य की मिली जुली भावनाओं के साथ ख़ुदा तआला के इस निर्णय को देखता है कि (अल्लाह का) वही वास्तविक प्रतिनिधि (मानव) जिसके सम्बन्ध में फ़रिश्तों ने इस संदेह का प्रकटन किया था कि वह धरती में झगड़ा करेगा, ख़ुदा तआला के समक्ष महानतम सुधारक का स्थान पाता है और उसके धर्म का नाम ही "इस्लाम" रखा जाता है अर्थात् सलामती और अमन का मज़हब, किन्तु प्रश्न फिर भी स्थापित रहता है यह माना कि अन्तर्यामी ख़ुदा का निर्णय ठीक है और शेष सभी अनुमान ग़लत। परन्तु फिर वह स्थान कौन सा है जहां पहुँच कर धार्मिक इतिहास पर दौड़ने वाली एक ऊपरी दृष्टि ठोकर खा जाती है और वह उलझन क्या है जिसमें पड़ कर कुछ धर्म के विरोधी यह कह दिया करते हैं कि धर्म अमन के नाम पर झगड़ा और सलामती (शांति) के नाम पर अनुचित रक्तपात की शिक्षा देता है।

क़ुर्आनि करीम बहुत ही सूक्ष्म ढंग से इस भ्रम का संकेतांकन करता है और बड़े विस्तार के साथ बार बार धार्मिक इतिहासों के विभिन्न प्रसंगों से यह प्रमाणित फ़र्माता है कि धर्म के नाम पर अत्याचार करने वाले प्रायः या तो अधर्मी हुआ करते हैं या फ़िर वह लोग होते हैं जिन के अन्दर वास्तविक धर्म का कोई अंश भी शेष नहीं होता और जिनके धर्म एक लंबे युग के गुज़र जाने के कारण बिगड़ कर कुछ का कुछ बन चुके होते हैं। या फ़िर ऐसे धार्मिक विद्वान इस अत्याचार के ज़िम्मेदार होते हैं जिनका धर्म से सम्बन्ध केवल नाम का होता है और उनके हृदय आध्यात्मिकता, दयालुता, कृपालुता और लोक सेवा जैसे पवित्र धार्मिक भावनाओं से रिक्त हो कर चालाकी, दिखावे और अत्याचार का ठिकाना बन जाते हैं। अतः ऐसे धार्मिक नेताओं के दुष्कर्मों को धर्म से सम्बन्धित करना धर्म पर बड़ा भारी अत्याचार है। और सच्चाई यही है कि वह ख़ुदा जो समस्त रहमतों का स्रोत है किसी धर्म के मानने वालों को अपने

बन्दों (प्राणियों) पर अत्याचार की शिक्षा नहीं दे सकता ।

क़ुर्आन-ए-करीम ने संसार के इतिहास से कुछ उदाहरण प्रस्तुत फ़र्मा कर तस्वीर का रुख एकदम बदल दिया है और पांसे को ऐसा पल्टा है कि इल्ज़ाम देने वाले स्वंय दोषी बन गए । अतः क़ुर्आन करीम अपने दावे के समर्थन में नबियों (अवतारों) के आरम्भिक समय को एक मापदंड और कसौटी के रूप में प्रस्तुत फ़र्माता है और बार बार विभिन्न नबियों की जातियों का वर्णन करके उनकी ऐतिहासिक हालतों से यह प्रमाणित फ़र्माता है कि धर्म की ओर से यदि कोई अत्याचार लागू होता तो स्पष्ट बात है कि सब से अधिक अत्याचार करने वाले स्वंय धर्म के संस्थापक होते या उनके वह शिष्य होते जिन्होंने स्वंय उस धर्म को उस धर्म के संस्थापक से सीखा और उसी से शिक्षा प्राप्त की और उसी के आचारण के अनुसार अपने कर्मों और आचरण को ढाला, न कि वह लोग जो उन लोगों के बहुत बाद में उत्पन्न हुए और या तो उन्होंने धर्म को बिगड़ी हुई दशा में देखा और उसीका अनुसरण करते रहे या अपने आचरण की गिरावट के कारण अपने ही विचारों का अनुसरण करते रहे और अपनी धार्मिक शिक्षाओं को पीठ पीछे डाल दिया परन्तु प्रत्यक्ष रूप से यह सभी कुछ धर्म के नाम पर ही किया गया ।

मज़हब का जो इतिहास क़ुर्आन करीम वर्णन फ़र्माता है इसमें बार-बार हमें ऐसे दृष्य दिखाई देते हैं कि अत्याचार तो किया जा रहा है धर्म के नाम पर, मगर किया जा रहा है अधर्मियों की ओर से । हिंसा तो की जा रही है ख़ुदा के नाम पर, परन्तु की जा रही है ऐसे लोगों की ओर से जो ख़ुदा की वास्तविक कल्पना से ही अज्ञानी थे । अतः क़ुर्आन-ए-करीम हज़रत नूह अलैहिस्सलातो वस्सलाम के सम्बन्ध में फ़र्माता है कि जब नूह(अ) ने संसार को दीक्षा और नेकी की ओर आंमत्रित किया तो नूह(अ) ज़ालिम नहीं थे, अपितु वह लोग ज़ालिम थे जो बाहूबल से नूह(अ) की आवाज़ को दबा देना चाहते थे । अतः क़ुर्आन करीम में अल्लाह तआला फ़र्माता है कि उन लोगों ने हज़रत नूह(अ) के संदेश को सुन कर कहा :-

لَئِنْ لَّمْ تَنْتَهِ يٰنُوْحُ لَتَكُوْنَنَّ مِنَ الْمَرْجُوْمِيْنَ ٥ (الشعراء:١١٧)

(सूरत शो-अरा : 117)

अर्थात् "कि हे नूह ! यदि तुम अपने इस धर्म से न हटे और अपना वर्तमान व्यवहार न बदला तो अवश्य संगसार (पत्थर मार-मार कर मारना) कर दिए जाओगे ।"

अतः क़ुर्आन करीम के अनुसार धर्म के नाम पर ज़ुल्म सच्चे धर्म के मानने वालों पर हुआ है, सच्चे धर्म के मानने वालों ने नहीं किया । फ़िर हज़रत नूह(अ) के बाद हज़रत ईबराहीम(अ) का उदाहरण आता है कि हज़रत ईबराहीम ने अमन, प्रेम और सहानुभूति और नम्रता के साथ संसार को ख़ुदा के सच्चे मार्ग की ओर बुलाया । उनके हाथ में कोई तलवार नहीं थी, कोई हिंसक तरीका नहीं था, कोई अत्याचार का साधन नहीं था परन्तु ईब्राहीम को जाति के सरदारों ने भी वही कुछ कहा जो उस से पहले नूह(अ) के समय के अधर्मी लोगों ने कहा था कि :-

لَئِنْ لَّمْ تَنْتَهِ لَاَرْجُمَنَّکَ

(सूरत मर्यम :47)

अर्थात् "यदि अपनी इस आस्था और प्रचार से हट जाओ तो ठीक है वरन् मैं तुमको अवश्य संगसार (पत्थरों से मार-मार कर मारना) कर दूँगा ।"

यह शब्द आज़र ने हज़रत ईब्राहीम से कहे थे । अब देखें कि बिल्कुल वही शब्द जो हज़रत नूह(अ) के समय के अधर्मियों ने हज़रत नूह(अ) के सम्बन्ध में प्रयोग किए थे, हज़रत इब्राहीम के समय के अधर्मियों ने भी हज़रत ईब्राहीम के सम्बन्ध में उन्हीं शब्दों में धमकियां दीं, उसी प्रकार अपमानित किया गया, वैसा ही उनसे व्यंग्य किया गया और पहलों की भांति उनको भी मारा-पीटा गया और कष्ट दिए गए, परन्तु वह नम्रता और धैर्य के साथ डटे रहे । हज़रत ईब्राहीम पर भी एक विरोध और झगड़े की आग भड़का दी गई और प्रत्यक्ष रूप में भी उनको जलती हुई आग में डाल कर ज़िन्दा जलाने का प्रयत्न किया गया ।

हज़रत लूत(अ) के वह नकारने वाले जो धर्म की वास्तविक्ता से अज्ञात थे उन्होंने भी धर्म ही का नाम लेकर हज़रत लूत(अ) और हज़रत लूत(अ) के मानने वालों पर ज़ुल्म ढाऐ और उनको भी इसी प्रकार की धमकियां दी गईं । अतः लूत(अ) के न मानने वालों ने आप को अपने देश से निकालने की धमकी दी और बार बार आक्रमण करके चढ़ आते रहे और धमाकाते रहे आरै डराते रहे कि किसी प्रकार यह अपने धर्म के शांतिपूर्वक प्रचार से हट जाऐं । और हज़रत शौऐब(अ) के विरोधियों ने भी यही तरीक़ा अपनाया और हज़रत शौऐब से कहा :-

لَنُخْرِجَنَّكَ يٰشُعَيْبُ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَعَكَ مِنْ قَرْيَتِنَآ اَوْ لَتَعُوْدُنَّ فِيْ مِلَّتِنَا ؕ قَالَ اَوَ لَوْ كُنَّا كٰرِهِيْنَ ۟ (الاعراف:۸۹)

(सूरत अल ऐराफ़ : 89)

अर्थात् :- कि हे शौऐब ! या तो हम तुम को और जो लोग तुम्हारे साथ ईमान (आस्था) लाए हैं, अपने शहर से निकाल देंगे या तुम हमारे धर्म में अवश्य लौट कर आ जाओगे, अर्थात् तुम पर इतनी हिंसा की जाएगी इतनी सख़्ती की जाएगी कि जीवन तुम पर अत्यन्त कठिन हो जाएगा तुम ने इरतिदाद (धर्म परिवर्तन) का जो मार्ग धारण किया है अर्थात् एक धर्म को छोड़ कर दूसरे धर्म का अनुसरण आरम्भ कर दिया है । यह तरीक़ा तुमको हर दशा में बदलना पड़ेगा । इसी कारण हम तुमको यह अवसर दे रहे हैं और तुम को चेतावनी दे रहे हैं :-

اَوَلَوْ كُنَّا كٰرِهِيْنَ

हज़रत शौऐब(अ) ने फ़रमाया कि क्या इस दशा में भी कि हमारा दिल तुम्हारे धर्म का समर्थन न करता हो ? क्या इस प्रकार भी किसी को किसी धर्म का अनुयायी और पाबन्द किया जाता है ? दिल गवाही देता हो कि वह धर्म

झूठा है और सहसा उस धर्म से भाग कर किसी शांतिमय धर्म की शारण में आ जाना चाहता हो तब भी क्या उसे मजबूर किया जा सकता है कि वह अपने दिल की गवाही के विरुद्ध अपने अन्तर्मन की आवाज़ के विरुद्ध एक ऐसे सिद्धान्त को स्वीकार कर ले जिस पर उसका दिल तसल्ली नहीं पाता ?

''क़त्ले मुरतद'' (अर्थात् धर्म परिवर्तन करने वाले का वध) के विरुद्ध हज़रत शौऐब(अ) का यह एक ऐसा चट्टान की भांति सुदृढ़ और नकारा न जा सकने वाला प्रमाण है कि आज तक इस का उत्तर किसी हिंसक से बन नहीं पड़ा क्योंकि प्रत्येक मानवीय विवेक और प्रत्येक मानवीय हृदय इस बात पर हमेशा से गवाह हैं कि तलवार को न कभी पहले दिलों पर हकूमत प्राप्त हुई न कभी भविष्य में होगी । उसे हड्डियों और हाड़-मांस पर तो अधिकार प्राप्त हो जाता है परन्तु बुद्धि और भावनाओं के संसार तक उसकी कोई पहुँच नहीं । यह मानवीय प्रवृत्ति की एक न बदलने वाली आवाज़ है और यह मौलिक प्रवृत्ति वही है जो आदम(अ) को प्राप्त हुई थी और संसार का अन्तिम व्यक्ति भी इसी पर मरेगा । मानवीय प्रवृत्ति की यह आवाज़ कभी परिवर्तित नहीं हो सकती और वह निर्दोष जिन को धर्म के नाम पर धर्म के अज्ञानी आगुओं ने धर्म परिवर्तन करने वाला ठहरा कर वध करने योग्य घोषित कर दिया है उनके दिलों की आवाज़ प्राय: इसी प्रकार उठती रहेगी कि क्या तुम हमें अपने बिगड़े हुए सिद्धान्तों को मानने पर इस समय भी विवश कर रहे हो जबकि हमारा दिल एकदम उनसे तंग आ चुका है ? परन्तु पश्चाताप का स्थान है कि प्राय: से ऐसा ही होता चला आया है और धर्म के न मानने वालों ने हर नबी और उस की जाति पर धर्म परिवर्तन के फ़त्वे लगाए, और उनको वध करने योग्य घोषित किया और ज़ुल्म व हिंसा के वह वह साधन खोजे कि उनके वर्णन से भी मानवता शर्मा जाती है ।

फ़िर देखिए हज़रत मूसा(अ) और आप के अनुयायियों से भी यही हुआ और फ़िर्औन ने भी वही कहा जो उस से पहले पिछली जातियों के नाममात्र धार्मिक नेता कहा करते थे और वही ज़ुल्म का मार्ग अपनाया

जो ख़ुदा के प्रतिष्ठ बन्दों के सम्बन्ध में आरम्भ से ज़ालिम अपनाते आए थे । अतः फ़िरऔन ने अपने अनुयायियों को आज्ञा दी :-

اقْتُلُوْا اَبْنَآءَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوا مَعَهٗ وَاسْتَحْيُوْا نِسَآءَهُمْ (مؤمن:٢٦)

(सूरत मोमिन :26)

कि ऐ मेरे अनुयायी और आज्ञाकारी अधिकारियो! उन लोगों को जो मूसा(अ) पर ईमान लाए ज़बरदस्ती के साथ रोको और उनके बेटों को तो कत्ल कर दो और उनकी बेटियों को जीवित रखो ।"

अतः देखिए कि धर्म के नाम पर धर्म परिवर्तन की यह सज़ा भी नबियों(अ) की जमाअतों ने नहीं दी अपितु नबियों की जमाअतों को दी गई । फ़िर इसी प्रकार हज़रत मूसा(अ) के पश्चात् हज़रत ईसा(अ) को भी कैसे कैसे अत्याचारों का निशाना बनाया गया यहां तक कि दुश्मनों ने अपनी ओर से उनको सूली पर चढ़ा कर मारने की कोशिश की और उनके मानने वालों पर भी कई प्रकार के अत्याचार ढाए । अतः यह ज़ुल्म व अत्याचार का क्रम जो आज तक धर्म के नाम पर किया जाता रहा और जिस का नाम हमेशा धर्म परिवर्तन की सज़ा रखा गया उसका हरगिज़ कोई प्रमाण भी धार्मिक पुस्तकों में नहीं मिलता । मेरा अभिप्राय है उन पुस्तकों में नहीं मिलता जो पुस्तकें ख़ुदा तआला ने अपने नबियों(अ) पर उतारीं उनके बिगड़े हुए रूप में नबियों(अ) के गुज़र जाने के सैंकड़ों वर्षों के पश्चात् यदि पश्चात के दुष्ट लोगों ने उन में काट-छांट करके या अपने विचार ठोंस कर उनमें ज़ुल्म की शिक्षा भरदी है । तो ख़ुदाई पुस्तकें उससे भार-मुक्त हैं ।

क़ुर्आन-ए-करीम ने धार्मिक इतिहास के न नकारे जा सकने वाले प्रसंगों से प्रमाणित कर दिया है कि नबियों(अ) और उन पर ईमान (आस्था) लाने वाले आदर्श पूर्ण संसार के अत्यन्त निर्दोष लोग थे जिन पर अत्यन्त अत्याचार ढाए गए परन्तु उन्होंने बहुत धैर्य और दृढ़ता के साथ केवल ख़ुदा की ख़ातिर उन अत्याचारों को सहन किया । इस इतिहास को पढ़ने के पश्चात् संसार का कोई भी व्यक्ति जो ज़रा सी भी

बुद्धि अपने अन्दर रखता हो यह दावा नहीं कर सकता कि धर्म की ओर से धर्म छोड़ने पर ज़ुल्म किया जाता रहा है । ख़ुदा के नबी(अ) तो एक धर्म छोड़ कर दूसरे में सम्मिलित होने की शिक्षा देते हैं । जब वह स्वंय यह शिक्षा देते हैं तो वह यह किस प्रकार सहन कर सकते हैं कि केवल इस आधार पर कि कोई व्यक्ति किसी धर्म को छोड़ कर दूसरे धर्म में दाख़िल हो रहा है उस पर किसी प्रकार का ज़ुल्म या ज़ोर ज़बरदस्ती जायज़ रखी जाए । क़ुर्आन-ए-करीम से यह भी पता चलता है कि ज़ुल्म केवल उन ही पर नहीं किए जाते जो नबियों पर उनके आरिम्भक काल में ईमान लाते हैं, बल्कि नबियों के गुज़रने के सैंकड़ों वर्ष पश्चात् भी उन के मानने वालों पर कई बार उस समय के ज़ालिम लोग ज़ुल्म करते हैं और यह ज़ुल्म भी धर्म ही के नाम पर किया जाता है परन्तु वास्तव में ख़ुदा तआला की इच्छा या समर्थन उनको प्राप्त नहीं होता और धर्म से उस ज़ुल्म का दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं होता । अत: इस बारे में क़ुर्आन-ए-करीम कहफ़ वालों के उदाहरण का वर्णन फ़र्माता है । यह वह ईसाई लोग थे जो तीन सदियों तक ईसाईयत के विरोधियों के ज़ुल्म व अत्याचार का निशाना बने रहे। उनको इतना तंग किया गया, ऐसे ऐसे भयंकर ज़ुल्म उन पर ढाए गए कि उनकी याद से आज भी सीनों में दिल ख़ून हो जाता हैं । मैंने स्वंय वह इमारतें देखी हैं । जिन इमारतों में उन इसाईयों पर ज़ुल्म ढाए जाते थे । उनको Collisium (कोलीसम) कहा जाता है । पुराने रोमन समय में यह एक प्रकार के थियेटरज़ हुआ करते थे अर्थात् तमाशाग्रह जहां पहलवानों की लड़ाईयां या शेरों और भैंसों की लड़ाईयां हुआ करती थीं ।

जिस युग का वर्णन क़ुर्आन-ए-करीम में आता उस युग में इन्ही तमाशा गाहों को ईसाईयों पर ज़ुल्म करने का एक साधन बना लिया गया। और एक ओर तो पिंजरे में भूखे शेर या दूसरे जंगली जानवर जिनको कई कई दिन भूखा रखा होता था बन्द हुआ करते थे और दूसरी ओर पिंजरों में वे ईसाई बन्द होते थे जिनके सम्बन्ध में उस समय के धार्मिक आगुओं का यह फ़त्वा था कि यह मुरतदीन (धर्म बदलने वाले) हैं क्योंकि उन्होंने एक धर्म छोड़ कर दूसरा धर्म अपना लिया है । अत:

एक ओर तो पिंजरों में यह "धर्म परिवर्तन" करने वाले थे। वह भूखे भी थे, नंगे भी थे, वह भी कई कई दिन तक पानी और रोटी से वंचित रखे जाते थे जिससे उनकी कमज़ोरी इस हद तक बढ़ जाती थी कि उनके लिए खड़ा होना कठिन हो जाता था। और इस के विपरीत भूखे और प्यासे जानवर और भी ख़ूंखार हो जाते थे और भूख की तीव्रता से क्रोधित हो कर एक भयानक जंगली चीख़ के साथ बिजली की तीव्रता की तरह अपने शिकार पर लपकते थे और देखते ही देखते उनकी हड्डियां तक चबा जाते थे, तब वह तमाशाईयों से खचा खच भरा हुआ हाल क़हक़हों से गूंज जाता था कि हां यह है धर्म परिवर्तन करने वालों की सज़ा। और उस शाम वह क़हक़हे लगाते हुए, व्यंग्य करते हुए अपने घरों को लौटा करते थे यह दावा करते हुए कि धर्म परिवर्तन की समस्या को मिटाने का बस यही प्रभाविक ढंग है।

कभी भूख के सताए हुए भैंसे उन पर छोड़े जाते थे जिनको अजनबी वातावरण और इन्सानों की अत्यन्त भारी भीड़ का अजनबी दृश्य घबराहट से दीवाना कर देता था। और जब वह उन निर्दोष ईसाईयों को अपनी ओर बढ़ता हुआ देखते थे तो उनकी आंखों में ख़ून उतर आता था और अत्यधिक नफ़रत और क्रोध की आग उनके सीनों में धधक उठती थी और सांस धोंकनी की भांति चलने लगती थी। अतः वह सिर फैंक कर अपने सांसों की ख़ास प्रतिशोध भरी ध्वनि के साथ जो चौपायों की सांस से अधिक सांपों की फुंकार जैसी होती है अपने कमज़ोर दुर्बल शिकार पर आक्रमण करते थे और कभी उनको अपने सींगों में पिरोते और कभी अपने खुरों के नीचे कुचल डालते थे और उन निर्दोषों की पीड़ा में डूबी हुई हाहाकार तमाशाईयों के शोर में खो जाती थी परन्तु इन "मोमिनीन" (ईमान लाने वालों) के पग नहीं कांपें और उन भूखपीड़ितों के दुर्बल डगमगाते हुए कदम उनके ईमानों (आस्था) को डगमगा न सके। अतः वह ईमानी जुर्अत (हिम्मत) के साथ मृत्यु की ओर बढ़ते रहे और कभी तो जंगली जानवरों के मुख का निवाला बन गए और कभी जंगली भैंसों के सींगों का हार हो गए।

यह ज़ुल्म विभिन्न समयों में निरन्तर तीन सदियों तक इसाईयों पर

तोड़े गए यहां तक कि जब उन्होंने देखा कि पृथ्वी पर हमारे लिए कोई सिर छिपाने का स्थान नहीं तो वह धरातल को छोड़ कर धरती के नीचे गुफ़ाओं में चले गए । वह गुफ़ाओं के चूहों, कीड़े-मकौड़ों और सांपों और बिच्छुओं में तो रह सकते थे, परन्तु धरातल पर बसने वाले इन्सानों में उनके लिए कोई स्थान न था क्योंकि यह ख़तरनाक जानवर, चोले धारण किए हुए धार्मिक नेताओं की तुलना में उनके लिए कम भयंकर थे ।

उन धरती के नीचे बसने वाले ''असहाबे कहफ़'' के अतिरिक्त क़ुर्आन-ए-करीम ऐसे आरम्भिक एकेश्वरवादी इसाईयों का भी वर्णन करता है जिनको अधर्मी शासकों की ओर से धर्म ही के नाम पर ज़िन्दा आग में जला दिया गया केवल इस दोष की सज़ा के रूप में कि वह विजयी प्रशंसा योग्य ख़ुदा पर ईमान लाए थे । अत: उनका वर्णन करते हुए सूरत बरुज में अल्लाह तआला फ़र्माता है :-

وَالسَّمَآءِ ذَاتِ الْبُرُوجِ ۙ وَالْيَوْمِ الْمَوْعُوْدِ ۙ وَشَاهِدٍ وَّمَشْهُوْدٍ ؕ قُتِلَ اَصْحٰبُ الْاُخْدُوْدِ ۙ النَّارِ ذَاتِ الْوَقُوْدِ ۙ اِذْ هُمْ عَلَيْهَا قُعُوْدٌ ۙ وَّهُمْ عَلٰى مَا يَفْعَلُوْنَ بِالْمُؤْمِنِيْنَ شُهُوْدٌ ؕ وَمَا نَقَمُوْا مِنْهُمْ اِلَّاۤ اَنْ يُّؤْمِنُوْا بِاللّٰهِ الْعَزِيْزِ الْحَمِيْدِ ۙ الَّذِىْ لَهٗ مُلْكُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ؕ وَاللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَىْءٍ شَهِيْدٌ ؕ (البروج:١٠:٢)

(अल बुरूज 6-10)

इसका स्वतन्त्र अनुवाद यह है कि :-

''सौगंध है ! बुर्जों वाले आसमान की और वादे वाले दिन की और एक महानतम गवाही देने वाले की और उस महानतम अस्तित्व की जिसकी गवाही दी गई कि ख़ंदकों वाले हलाक हो गए, अर्थात् ख़ंदकों में वह आग भड़काने वाले जिस में ख़ूब ईंधन झोंका गया था । और क्या ही भयंकर था वह समय जब वह उन खाईयों के किनारे बैठे हुए जलते हुए मोमिनीन को देख रहे थे और उनसे उनकी

नाराज़गी का कारण इसके अतिरिक्त कुछ न था कि वह ख़ुदाए अज़ीज़ो हमीद (प्राय: विजयी होने वाला तथा प्रत्येक प्रशंसा का पात्र) जो आसमानों और ज़मीनों का मालिक है पर ईमान ले आए थे और ख़ुदा हर चीज़ पर नज़र रखने वाला है ।''

क़ुर्आन-ए-करीम इस बात के प्रमाण में कि धर्म के नाम पर ज़ुल्म करने वाले वास्तव में स्वंय अधर्मी हुआ करते हैं एक और नकारा न जा सकने वाला प्रमाण प्रस्तुत करता है और वह यह है कि यह ज़ालिम लोग ख़ुदा के नाम पर ख़ुदा ही की इबादत से रोकते हैं और इनका यह ज़ुल्म इन मोमिनीन के निकट समस्त शारीरिक अत्याचारों से बढ़ कर होता है। अत: अल्लाह तआला क़ुर्आन-ए-मजीद में फ़र्माता है :-

وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ اللّٰهِ اَنْ يُّذْكَرَ فِيْهَا اسْمُهٗ وَسَعٰى فِيْ خَرَابِهَا
(البقرہ:۱۱۵)

(अलबक़रा : 115)

''कि इन धर्म के झूठे दावेदारों से भी अधिक कोई ज़ालिम हो सकता है कि ख़ुदा का नाम ले ले कर ख़ुदा ही की इबादत से रोकते हैं और मस्जिदों में उसके नाम को बुलन्द करने से मना करते हैं और यह प्रयत्न करते हैं कि वह वीरान हो जाएं ।''

अत: क़ुर्आन ने अत्यन्त सूक्ष्म ढंग से धर्म पर पड़ने वाले इस ख़ूनी इल्ज़ाम को नकार दिया है और यह स्वीकार करते हुए भी कि इस पवित्र नाम पर संसार में अत्यन्त कुरूप अत्याचार ढाए गए, सच्चे धर्मों के सच्चे व ज़्यादती से पूर्णत्या भार मुक्त घोषित कर दिया है ।

यह तो पिछले नबियों(अ) के साथ इनसानों का व्यवहार था जबकि अभी ख़ुदा की ज्योति का पूर्णत्या प्रकटन नहीं हुआ था परन्तु जब उस सम्पूर्ण प्रकटन का समय आया और द्वीप रूपी अरब के आकाश से वह अमर सच्चाईयों का सूर्य उगा तो भी इन अधर्मी ज़ालिमों ने अपने तेवर

ना बदले । जब वह संसार का सरदार आया जिसकी हज़ारों वर्षों से मानव जाति को प्रतीक्षा थी और जिसकी बाट तकते तकते एक लाख चौबीस हज़ार नबी इस संसार से गुज़र गए वह जिसके लिए समस्त संसार को उत्पन्न किया गया । जिसकी शरीअत सब शरीअतों से अधिक उज्जवल और जिसकी शान सब नबियों से उच्चतम थी । वह मानवता का सम्मान वह ख़ुदा के तेज और सुन्दरता का पात्र वह सब नबियों से अधिक मासूम नबी(अ) जब संसार में प्रकट हुआ तो उसको भी ज़ुल्म व अत्याचार का निशाना बनाया गया और ऐसे पीड़ाजनक ज़ुल्म व अत्याचार का निशाना बनाया गया कि उसका उदाहरण धार्मिक इतिहास में नहीं मिलता ।

वह सारे अत्याचार जो पिछले नबियों पर अलग अलग किए गए थे उस एक नबी और उसकी जमाअत पर किए गए । उनको चिलचिलाती धूप में तपती रेत पर नंगे शरीर लिटाया गया और उनकी छातियों पर दहकते हुए पत्थरों की सिलें रखी गईं । उनको मक्का की पथरीली गलियों में मरे हुए जानवरों की भांति रस्सियां बांध कर घसीटा गया । वर्षों वर्ष तक उनसे बाईकाट किए गए । उनको भूख और प्यास का अत्यन्त दुःख पहुँचाया गया । कभी उनको तंग अंधेरी कोठरियों में क़ैद किया गया और कभी उनके धन व सम्पत्ति लूट कर घरों से निकाल दिया गया । कभी पत्नियों को पतियों से छुड़ाया गया कभी पतियों को पत्नियों से अलग कर दिया गया । पवित्र गर्भवती स्त्रियों को ऊंटनियों पर से गिरा कर उन पर क़हक़हे लगाए गए, और वह इस कष्ट से मृत्यु को प्राप्त हो गई । उन पर इबादत करते हुए ऊंटों की ओझरियां फैंकी गईं । उनको गालियां दी गई और गलियों के बदमाशों ने उनको लज्जित व अपमानित किया । संसार के अत्यन्त ज़लील अवारा लौंडों ने झोलियों में भर-भर कर उन पर पत्थर बरसाए । यहां तक कि संसार का सबसे पवित्र ख़ून ताएफ़ की गलियों में बहने लगा । उनको ज़हर दिए गए । उन पर अग्नि समान जंगों की आग भड़का दी गई और तलवारों से उनकी बलि दी गई । उन पर तीरों और पत्थरों की वर्षा की गई और ओहद की धरती गवाह है कि निष्ठुर निदर्यओं ने प्रकृति के सबसे निर्दोष

व्यक्ति का शरीर लगातार ज़ख़्मों से छलनी कर दिया । हां उनको नेज़ों में पिरोया गया और उनके सीने चीर कर उनके जिगर चबा लिए गए और वह काम जो रोम के निर्दयी बादशाह जंगली जानवरों से लिया करते थे अरब के जानवरों समान लोगों ने स्वंय कर के दिखा दिए ।

धर्म के नाम पर यह अत्यन्त रक्तपात केवल इसी लिए किया गया कि उन्होंने कहा था رَبُّنَا اللّٰہ "हमारा रब (पालनहार) अल्लाह है ।"

और धर्म के नाम पर यह रक्तपात केवल इसी लिए किया गया कि मक्का के मुशरेकीन (अनेकश्वरवादियों) के निकट यह लोग "मुरतद" धर्म परिवर्तन करने वाले थे । अतः इतिहास से पता चलता है कि आप(स) का और आप(स) के मानने वालों का नाम मुशरेकीन ने 'साबी' रख दिया था । साबी ऐसे व्यक्ति को कहते हैं जो अपने पूर्वजों का धर्म छोड़ कर कोई नया धर्म अपना ले । अतः इस धर्म परिवर्तन की समस्या (झगड़े) نعوذ باللہ من ذٰلک (हम इससे अल्लाह की पनाह चाहते हैं) को दबाने के लिए उन्होंने वह सारे ढंग अपनाए जो उनसे पहले अधर्मी लोग नबियों और उनकी जमाअतों के विरुद्ध अपनाते आए थे । एक लम्बा युग है इन कष्टों का जो अधर्मियों ने धर्म का झंडा ऊंचा करने वालों को दीं, बल्कि एक ऐसी जाति को दीं जो मज़हब के आकाश पर चन्द्रमा और सूर्य बन कर चमके थे, जो मज़हबी प्रगति की चरम सीमा थे, जिनके निश्चित किए हुए स्थानों से आगे और कोई स्थान न था, जिनसे उत्तम लोग न पहले किसी मज़हब ने उत्पन्न किए थे न भविष्य में कभी इस संसार में प्रकट हो सकते हैं । परन्तु वह नबी, वह इस ब्रह्माण्ड के उत्पन्न करने वाले का शाहकार और उसके दीवाने अत्यन्त धैर्य और नम्रता के साथ और असाधारण सहनशक्ति के साथ उन ज़ुल्मों को सहन करते रहे और आह तक न भरी, और अपने दुःखों और अपने बलिदानों और अपने बहते हुए ख़ून से यह प्रमाणित कर दिया कि ज़ालिम और हिंसक मज़हब के विरोधी हुआ करते हैं, मज़हब के मानने वाले नहीं ।

केवल इसी पर बस नहीं की बल्कि धीरज और सहनशीलता के गुणों के असाधारण प्रकटन के पश्चात् दया, कृपा और क्षमा के वह कमाल दिखाए कि मानवीय विवेक आश्चर्यचकित टिकटिकी बांधे देखती है कि

यह कौन लोग थे और कैसे उन ऊंचे स्थानों तक जा पहुँचे । अतः उस समय जबकि ख़ुदा की सहायता के वादों को पूरा करने का समय आया आर मक्का के काफ़िरों की गर्दनें उनके हाथों में दीं गईं, जब दस हज़ार पवित्र लोगों की चमकती हुई तलवारों के नीचे अरब के निष्ठुर सरदारों के शरीर कांपने लगे तो मक्का की ईंट ईंट गवाह है कि संसार के इतिहास ने एक अजीब दृश्य देखा और आम रक्तपात के स्थान पर मक्का के वातावरण में لَا تَثْرِيْبَ عَلَيْكُمُ الْيَوْمَ (यूसुफ़ :93)

''अर्थात् तुम पर कोई (पकड़) नहीं) के शादयाने बजने लगे । उस दिन संसार के सबसे अधिक ज़ालिम व्यक्ति क्षमा किए गए । तपती रेत पर लाचार दासों को लिटाने वाले भी क्षमा किए गए, चिलचिलाती धूप में मक्का की गलियों में असहायों को घसीटने वाले भी क्षमा किए गए । उस दिन मासूम इनसान पर पत्थरों की वर्षा बरसाने वाले भी क्षमा किए गए और ख़ूनी और हिंसक और विश्वासघातक और लुटेरे भी क्षमा कर दिए गए और अभी कुछ समय न व्यतीत हुआ था कि उन पत्थर दिलों को भी क्षमा कर दिया गया जिन्होंने सम्मान जनक व्यक्तियों के सीने चीर कर उनके दिल और जिगर चबा लिए थे ।

اَللّٰهُمَّ صَلِّ عَلٰى مُحَمَّدٍ وَّعَلٰى اٰلِ مُحَمَّدٍ كَمَا صَلَّيْتَ عَلٰى اِبْرَاهِيْمَ
وَعَلٰى اٰلِ اِبْرَاهِيْمَ اِنَّكَ حَمِيْدٌ مَّجِيْدٌ

मैं सच सच कहता हूँ कि यदि आदम(अ) से ले कर हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा(स) के प्रकटन तक का सारा धार्मिक इतिहास भी मिटा दिया जाए और आपकी मृत्यु से लेकर आज तक का इतिहास भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाए तो भी इस वरिष्ठ नबी(स) के कुछ वर्षों का इतिहास ही इस वास्तविकता को प्रमाणित करने के लिए प्रर्याप्त है कि मज़हब इन्सान को हरगिज़ नफ़रत नहीं सिखाता, ज़ुल्म व ज़्यादती और निर्दयता और हिंसा का पाठ नहीं पढ़ाता, बल्कि उसके विपरीत रहम, दया, कृपा, धैर्य और नम्रता की शिक्षा देता है ।

केवल इसी पर बस नहीं की बल्कि वह رَحْمَةٌ لِّلْعَالَمِيْنَ (समस्त

ब्रह्माण्ड के लिए दया करने वाला) ज़ुल्म की समाप्ति के लिए एक कदम और आगे बढ़ा और ख़ुदा से वही (आकाश वाणी) प्राप्त कर के सदैव के लिए यह आम घोषणा कर दी कि :-

لَآ اِكْرَاهَ فِى الدِّيْنِ

कि धर्म के नाम पर कोई जबर (ज़्यादती, सख़्ती) उचित नहीं । और इसकी आवश्यकता ही क्या है ।

قَدْتَّبَيَّنَ الرُّشْدُ مِنَ الْغَيِّ

अर्थात् सच अपने ज्योतिर्मय मुख के साथ विशिष्ट हो गया और कुमार्ग व झूठ के साथ उसके मिलने का कोई प्रश्न शेष नहीं रहा ।

यह घोषणा इस भूमिका में एक अनोखी घोषणा दिखाई देती है । एक ओर तो ज़ालिम है जो ज़ुल्म व ज़्यादती के साथ कुछ दुर्बल और निर्बल लोगों को धर्म पविरर्तन के दोष की सज़ा स्वरूप धरती से मिटाने पर तुले हुए हैं और मजबूर कर रहे हैं कि यह नया धर्म छोड़ो और अपने पहले धर्म में वापिस आ जाओ और दूसरी ओर उस (नए) धर्म के मानने वाले जब शक्तिशाली हो जाते हैं तो उस शक्ति के होने पर भी उनको यह शिक्षा दी जाती है कि :

لَآ اِكْرَاهَ فِى الدِّيْنِ قَدْتَّبَيَّنَ الرُّشْدُ مِنَ الْغَيِّ فَمَنْ يَّكْفُرْ بِالطَّاغُوْتِ وَيُؤْمِنْۢ بِاللّٰهِ فَقَدِ اسْتَمْسَكَ بِالْعُرْوَةِ الْوُثْقٰى لَا انْفِصَامَ لَهَا. (البقرہ:٢٥٧)

(सूरत बक़रा : 257)

कि दीन में कोई जबर (ज़बरदस्ती, सख़्ती) नहीं । सच अपनी सम्पूर्ण सच्चाईयों के साथ स्पष्ट हो चुका है झूठ का मार्ग एक ऐसा मार्ग है जिसे सच के साथ संदिग्ध नहीं किया जा सकता... अत: जो ख़ुदा तआला पर ईमान लाएगा उसका उदाहरण ऐसा ही होगा जैसे कि एक मज़बूत कड़े पर उसका हाथ पड़ जाए जिस कड़े के लिए टूटना न लिखा हो । यह घोषणा कितनी शानदार और कैसी शांतिमय घोषणा है ।

अत: हे धर्म के नाम पर ज़ुल्म करने वालो ! तुम मज़हब की

वास्तविकता से ही अनजान हो । मज़हब तो हृदय परिवर्तन का नाम है। मज़हब कोई राजनैतिक दल नहीं मज़हब कोई जाति नहीं मज़हब कोई देश नहीं, मज़हब तो वह पवित्र परिवर्तन उत्पन्न करने के लिए आता है जो दिलों की गहराईयों में होता है और जिसका सम्बन्ध आत्मा से है । कोई तलवार और कोई ताकत और कोई ज़बरदस्ती और कोई हिंसा चाहे वे कितनी ही भयंकर क्यों न हो हृदय को परिवर्तन करने की इतनी भी शक्ति नहीं रखती जितनी एक तुच्छ च्यूँटी ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों को अपने स्थान से टलाने की रखती है । फिर एक दूसरे स्थान पर ख़ुदा तआला ने क़ुर्आन-ए-करीम में यह फ़र्माया कि :-

وَقُلِ الْحَقُّ مِنْ رَّبِّكُمْ فَمَنْ شَآءَ فَلْيُؤْمِنْ وَّمَنْ شَآءَ فَلْيَكْفُرْ
(الكهف:٣٠)

(अलकहफ़ : 30)

कि कह दो कि सच तो तुम्हारे रब (पालनहार) की ओर से आ चुका, उसके पश्चात् किसी ज़बरदस्ती का प्रश्न ही शेष नहीं रहता । सच तो कहते ही उस चीज़ को हैं जो दिलों को अपनी सच्चाई के साथ मनवाए जिसका लोहा आत्माएं मानें । जिसका शारीरिक अत्याचार व हिंसा से कोई सम्बन्ध न हो । अत: फ़र्माया कि घोषणा कर दो कि सच तुम्हारे रब (पालनहार) की ओर से आ चुका :-

فَمَنْ شَآءَ فَلْيُؤْمِنْ وَّمَنْ شَآءَ فَلْيَكْفُرْ.

अब तुम्हें छूट है चाहो तो ईमान लाओ चाहो तो ईमान न लाओ । फ़िर एक दूसरे स्थान पर फ़र्माया :-

اِنَّ هٰذِهٖ تَذْكِرَةٌ فَمَنْ شَآءَ اتَّخَذَ اِلٰى رَبِّهٖ سَبِيْلًا (الدّھر:٣٠)

(सूरत अददहर :30)

कि यह तो एक नसीहत की बात है

فَمَنْ شَآءَ اتَّخَذَ اِلٰى رَبِّهٖ سَبِيْلًا

अत: इस नसीहत से प्रभावित हो कर जो चाहे वह अपने रब (पालनहार) का मार्ग पकड़ ले । कितनी उत्तम और प्यारी शिक्षा है । आश्चर्य होता है कि इसके पश्चात् भी लोग यह कल्पना किस प्रकार कर सकते हैं कि धर्म ज़ुल्म और ज़बरदस्ती और हिंसा की शिक्षा देता है ।

एक और स्थान पर स्पष्ट करते हुए ख़ुदा तआला फ़र्माता है :-

قُلِ اللّٰهَ اَعْبُدُ مُخْلِصًا لَّهٗ دِيْنِيْ (الزمر:١٥)

(अज़्ज़ुमर : 15)

कि है मुहम्मद(स) ! तू घोषणा कर दे कि मैं तो अपने रब की पूर्णतया शुद्ध हो कर पूजा करता हूँ अर्थात् मेरा सब कुछ उसी का हो गया है और मेरा धर्म उसी के प्रति विशुद्ध है ।

فَاعْبُدُوْا مَا شِئْتُمْ مِّنْ دُوْنِهٖ (الزمر:١٦)

(अज़्ज़ुमर : 16)

तुम जिसकी चाहो उस (अल्लाह) के अतिरिक्त पूजा करते फिरो मुझे तो अपना मार्ग मिल गया है । कैसी अद्‌भुत शिक्षा है अमन की । इसके होते हुए मज़हब के नाम पर किसी ज़ुल्म का प्रश्न ही शेष नहीं रहता । फिर फ़र्माया :-

لَكُمْ دِيْنُكُمْ وَلِيَ دِيْنِ۝ (سورة الكافرون)

(सूरत अल्काफ़िरून)

कि तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन धर्म है, وَلِيَ دِيْنِ मेरे लिए मेरा दीन धर्म है । अत: धर्म का झंडा उठाने वाले प्राय: बिना किसी अपवाद के एक ही दावा रखते रहे और इस दावे को प्राय: अपने कर्मों से प्रमाणित करते चले आए । धर्म के न मानने वाले भी इसके मुक़ाबले पर एक ही नारा रखते रहे कि ज़ुल्म और ज़्यादती और अत्याचार के साथ धर्म परिवर्तन का दरवाज़ा बंद कर दो अर्थात ज़ुल्म ज़्यादती और हिंसा के साथ उन्होंने धर्मों को दबाने का प्रयत्न किया ।

इसी विषय को स्पष्ट करते हुए ख़ुदा तआला ने एक और स्थान अर्थात् सूरत यूनस में रसूल-ए-करीम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम को सम्बोधित करते हुए फ़र्माया :-

وَلَوْ شَآءَ رَبُّكَ لَاٰمَنَ مَنْ فِي الْاَرْضِ كُلُّهُمْ جَمِيْعًا (يونس:١٠٠)

(यूनस : 100)

यदि तेरा रब (पालनहार) चाहता तो उसको हिंसा की क्या आवश्यकता थी वह तो मालिक है, जन्म दाता है, सम्पूर्ण अधिकार रखता है अपनी सृष्टि पर यदि वह चाहता :

لَاٰمَنَ مَنْ فِي الْاَرْضِ كُلُّهُمْ جَمِيْعًا

धरती पर हर ओर हर स्थान पर रहने वाले एक ही दिन में एक ही क्षण में ईमान ले आते । तो यह हो किस प्रकार सकता है कि ऐसा सर्वशक्तिमान ख़ुदा तलवार के ज़ोर से किसी को मोमिन बनाने का प्रयत्न करे ? यदि उसकी तक़दीर की मांग यही होती कि सब इन्सानों ने चाहे उनकी इच्छा हो या न हो, ईमान अवश्य लाना है, चाहे उनके दिल टेढ़े हों या सीधे उन्होंने इस्लाम अवश्य स्वीकार करना है तो उसका बस एक इरादा, एक आज्ञा ही पर्याप्त थी, फिर कौन था जो उसकी आज्ञापालन में बाल बराबर भी अन्तर कर सकता । परन्तु ख़ुदा तआला ने आरम्भ से ही यह निश्चित नहीं किया था । आदम के जन्म के पीछे उसकी अति सूक्ष्म हिकमतें कुछ और ही चाहती थीं । यह हिकमतें क्या चाहती थीं ? यही कि प्रत्येक व्यक्ति ईमान लाने या न लाने के फ़ैसले में स्वतन्त्र है और कोई किसी दूसरे को इस बारे में विवश नहीं कर सकता। अतः हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम को जो शिक्षा दी गई वह यह थी :-

اَفَاَنْتَ تُكْرِهُ النَّاسَ حَتّٰى يَكُوْنُوْا مُؤْمِنِيْنَ (يونس:١٠٠)

(यूनुस : 100)

क्या तू लोगों को विवश कर सकता है कि वह ईमान ले आऐं ?

وَمَا كَانَ لِنَفْسٍ اَنْ تُؤْمِنَ اِلَّا بِاِذْنِ اللّٰهِ (یونس:١٠١)

(यूनुस :101)

जबकि वास्तविक्ता यह है कि कोई व्यक्ति भी ईमान नहीं ला सकता परन्तु उस समय जबकि ख़ुदा की आज्ञा हो जाए । अर्थात् केवल वही लोग ईमान लाऐंगे जिनके सम्बन्ध में ख़ुदा का यह निर्णय हो कि यह इस योग्य हैं कि इनको ईमान की नेअमत से फ़ाएदा पहुँचाया जाए । परन्तु अत्यन्त खेद और अफ़सोस है कि इतना होने पर भी कि एक लाख चौबीस हज़ार नबी बिना किसी अपवाद के सारे के सारे धार्मिक स्वतन्त्रता की शिक्षा देते रहे और अपने कर्मों से और अपने जीवन से यह प्रमाणित कर दिखाया कि सच्चे धर्म का नाम लेने वाले मज़लूम बन कर जीवित रहा करते हैं, ज़ालिम बन कर नहीं । और धार्मिक शिष्टाचारों से दिलों को विजयी किया करते हैं तलवार के ज़ोर से नहीं । परन्तु बाद में आने वाले बड़े बड़े चोलाधारी जो धार्मिक या पीर फ़क़ीर कहलाते थे, कहीं वह राहिब का नाम प्रयोग करते थे कहीं पादरी का । कहीं उनको मंत्री कहा जाता था कहीं महन्त । धर्म के इन ठेकेदारों ने जो वास्तव में धर्म की वास्तविक्ता से पूर्णत्या अप्रिचित थे अपने मज़लूम नबियों(अ) का नाम ले ले कर उन के ही सम्मान का दावा सम्मुख रख कर ऐसे ऐसे अत्याचार संसार पर किए कि मानवता उनको देख कर लज्जा से शीश झुका लेती है ।

हज़रत रसूले अकरम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के उदय से पूर्व भी ऐसा ही होता रहा है और आप(स) के पश्चात् भी ऐसा ही हुआ है और आज तक ऐसा ही होता चला आ रहा है । आज से कुछ सौ वर्ष पूर्व ईसाइयत ने या यूँ कहना चाहिए कि बिगड़ी हुई ईसाइयत के बिगड़े हुए ठेकेदारों ने बड़े बड़े पादरियों ने और बड़े बड़े बिशिप्स और कार्डोनलज़ ने धर्म के नाम पर ईसाई दुनिया में जो ज़ुल्म किए हैं वह भी अपना उदाहरण आप हैं और उस युग में इन्सानों को दुःख देने के जो जो ढंग

ईसाई धर्म के ठेकेदारों ने पैदा किए हैं वह इतने भयानक हैं कि उनको जानने के पश्चात् इन्सान आश्चर्य में डूब जाता है कि मानवता नीचता की ऐसी अथाह गहराईयों में भी उतर सकती है । क्या दिल सख़्ती में इतने भी बढ़ सकते थे कि हीरे की धार से भी अधिक कठोर हो जाऐं, परन्तु ऐसा ही हुआ और स्वंय ईसाई इतिहासकार इस बात को स्वीकार करते हैं कि ईसाइयत के नाम पर जो अत्याचार कुछ मज़लूम लोगों पर ढाए गए, मानवता उनके वर्णन मात्र से लज्जित है ।

इंग्लैंड में मुझे स्वंय उन हिंसक औज़ारों में से कुछ को देखने का अवसर मिला है । लन्दन में एक प्रदर्शनी है जिका नाम है मैडम टूसो (Madame Toussad) अर्थात् मैडम टूसो की बनाई हुई चीज़ों की प्रदर्शनी । वहां एक फ्रांसीसी स्त्री मैडम टूसो ने संसार के बड़े बड़े नेक व्यक्तियों के बुत भी बना कर रखा हुए और बुरे व्यक्तियों के भी । यह बुत ऐसे अच्छे ढंग से बनाए हुए हैं कि बिल्कुल जीवित व्यक्ति के समान दिखाई पड़ते हैं और कई बार धोखा लग जाता है कि यह बुत नहीं है बल्कि इन्सान ही हैं । अत: कई बार ऐसा होता है कोई अजनबी किसी सिपाही को खड़ा देख कर उस से मार्ग पूछने के लिए बढ़ता है तो पता चलता है कि यह जीवित सिपाही नहीं बल्कि सिपाही का बुत है । अत: बड़े बड़े नेक काम करने वालों या प्रसिद्ध व्यक्तियों के बुत भी वहां उपस्थित हैं और बड़े-बड़े हिंसक और अत्याचारी व्यक्तियों और बदनाम दोषियों के बुत भी वहां रखे हुए हैं । केवल यही नहीं बल्कि उन ज़ालिमों के ज़ुल्म करने के औज़ारों को भी अपने वास्तविक रूप में एकत्रित करके रखा गया है, अत: वह वास्तविक मशीनें भी वहां रखी हैं जिनके द्वारा ईसाईयत के ठेकेदार कुछ व्यक्तियों को धर्म परिवर्तन के दोष स्वरूप दु:ख दिया करते थे या धर्म परिवर्तन के दोष को स्वीकार करवाने के लिए अत्याचार किया करते थे ताकि उन अत्याचारों और दु:खों से तंग आकर वह लोग अपने परिवर्तन के आरोप को स्वीकार कर लें । वह अत्याचार इतने भयंकर थे कि निसंदेह लोग या तो इन अत्याचारों के अत्यधिक दु:खों से सिसक सिसक कर वहीं जान दे दिया करते थे और या फ़िर अपने आरोप को स्वीकार करने में ही भला समझते थे । वह यह अच्छा

समझते थे कि उनको जीवित आग में जला दिया जाए, बजाए इसके कि स्पेन की इनको ईंज़ेशन या फ्रांस की इन्कोरज़ेशन के हाथों में वह असहनीय ज़ुल्म सहन करके जान दे दें । इन मशीनों में से जो लन्दन के म्यूज़ियम में रखी हुई हैं, कुछ ऐसी हैं जिनके ऊपर पर्दा पड़ा हुआ है और यह लिखा हुआ है कि स्त्रियाँ और बच्चे उनको न देखें । अर्थात् वह ज़ुल्म के ढंग इतने भयानक हैं कि प्रबन्धकों के ख़ियाल में स्त्रियाँ और बच्चों का उनको देखना भी एक असहनीय कार्य है और उनके स्वभाव पर अत्याधिक गहरा और भयंकर प्रभाव व्यक्त करने का कारण बन सकता है ।

मैंने स्वंय अपनी आंखों से उन मशीनों को देखा है और मैंने सोचा कि इनसान भी ख़ुदा तआला की कैसी आश्चर्यजनक उतपत्ति है कि उन्नति और अवनत्ति दोनों में चरम सीमा तक पहुँच जाता है । एक ओर तो जब ऊंची उड़ान भरता है तो अवतार या नबी बन जाता है और अपने स्वामी, जन्मदाता और मालिक से वार्तालाप करने लग जाता है और दूसरी ओर जब गिरता है तो बिगड़े हुए धार्मिक चोला धारी धार्मिक ज्ञानियों के रूप में संसार पर एक धिक्कार बन कर गिरता है । एक ओर मुझे उस निर्दोष मसीह(अ) की तस्वीर नज़र आई जो सूली की भयंकर पीड़ी से कराहते हुए ايلی ايلی لِمَا سَبَقْتَانِیْ की पीड़ाजनक आवाज़ उठा रहे थे । उन्होंने केवल इस आरोप की सज़ा में सूली की यातनाऐं सहन कीं कि उनकी जाति के निकट उन्होंने धर्म परिवर्तन किया था । दूसरी ओर वह हिंसक ईसाई चोलाधारी धार्मिक सुधारक मुझे दिखाई पड़े जिन्होंने उसी निर्दोष के नाम पर असहाय और विवश व्यक्तियों पर इसी धर्म परिवर्तन के दोष में ऐसे ऐसे भयानक अत्याचार किए कि सूली की यातना भी उन ज़ुल्मों के समक्ष कुछ हक़ीक़त नहीं रहती । मैंने सोचा कि क्या इस्लाम को इस आम घोषणा के पश्चात् कि हे मानव जाति ! ख़ुश हो जाओ कि इस्लाम सदैव के लिए अमन की घोषणा करता है और धार्मिक हिंसा का सदैव के लिएं समापन करता है । لَاۤ اِكْرَاهَ فِی الدِّیْنِ धर्म में कोई जबर (ज़बरदस्ती) नहीं, धर्म के नाम पर दु:ख देना हराम (अवैध) है । قَدْ تَّبَیَّنَ الرُّشْدُ इस्लाम का तो यह हाल

है कि मानो बुद्धि और विवेक का एक चमकता सूर्य उग गया । एक स्पष्ट और खुली दीक्षा आ गई । मैंने सोचा कि इस स्पष्ट और शंका रहित अमन की घोषणा के पश्चात् भी क्या किसी मुसलमान के दिल में यह कल्पना उत्पन्न हो सकती है कि इस्लाम धर्म के नाम पर ज़बरदस्ती करता है तो मेरी नज़र इस समय के ज्ञानियों की ओर उठी और लज्जा से झु गई और मेरा मन पीड़ा से भर गया कि आज इस युग में भी ऐसे धार्मिक सुधारक उपस्थित हैं जो उस رَحْمَةٌ لِّلْعَالَمِيْنَ (समस्त प्रकृति के लिए कृपा बांटने वाला) से सम्बन्धित होने का दावा करते हैं.... वह जिसे ज़िन्दगी भर अत्याचारों का निशाना बनाया गया, परन्तु ज़ुल्म का उत्तर उसने ज़ुल्म से न दिया बल्कि अत्यन्त धैर्य और क्षमा और माफ़ करने के वह नमूने दिखाए कि जो इन्सानों की ताकत से बढ़ कर दिखाई देते हैं । यह उसी رَحْمَةٌ لِّلْعَالَمِيْنَ की ग़ुलामी का दम भरते हुए भी उसके समस्त सुन्दर गुणों से वंचित हैं, उनके हृदय रहमत से ख़ाली और ज़ुल्म से भरे हुए हैं और उनके सीनों में क्रोध का सागर उमड़ रहा है और धर्म के नाम पर सख़्ती करना और हिंसा करना तो अब उनके सिद्धान्तों में सम्मिलित हो चुका है ।

वह उसी आकाशीय जल को माध्यम बना कर जो दिलों की आग को ठंडा करने आया था, जनता के सीनों में क्रोध की ज्वाला भड़का देते हैं । वह इसी अमन के राजकुमार का नाम ले ले कर जिसने अरब की ख़ूनी धरती से अपने ख़ून की बलि दे कर अवैध रक्तपात को एकदम मिटा डाला था उसी के मानने वालों को असहायों के वध के लिए तैयार करते हैं । वह उसी विश्वस्त के प्रेम को प्रज्वलित करके जिसके घर लुटेरों ने लूट लिए, संसार को लूट मार की शिक्षा देते हैं । वह जिसने परायों और चरित्रहीनों की पत्नियों के सतीत्व की भी रक्षा की, हां वह सब लज्जावानों से अधिक लज्जावान जो अश्लीलता को एकदम समाप्त करने के लिए आया था आज उसी के सम्मान के नाम पर वर्षा वर्ष की ब्याहता स्त्रियों को अपने पतियों के लिए हराम (अवैध) और परायों के लिए हलाल (वैध) कर देते हैं । वह इबादत करने वालों का सरदार जिसने दूसरे धर्मों के मन्दिरों की भी रक्षा की आज इन धार्मिक

सुधारकों ने स्वंय उसी का कल्मा पढ़ने वालों के एक गिरोह की मस्जिदों को गिराने के फ़त्वे (धार्मिक आदेश) दिए । और यह सब ज़ुल्म जिसे वह नबियों का सरदार मिटाने के लिए आया था स्वंय उसी निर्दोष नबी के नाम पर किए जाने लगे । क्या कोई भी मुसलमान यह कल्पना कर सकता है कि यदि आज हमारा आक़ा(स) हम में उपस्थित होता (ख़ुदा की अत्यन्त कृपा और दरूद हों उस उपकार करने वाले नबी पर) तो वह क्या अपनी उम्मत की इस दशा को देख कर प्रसन्न होता ? नहीं, नहीं, ऐसा मत सोचो क्योंकि यह उस साक्षात उपकारी की बद नामी है । क्या कोई भी मुसलमान यह भ्रम भी मन में ला सकता है कि वह अपनी उम्मत (मानने वालों) के उलमा (ज्ञानियों) को शिक्षा देता कि स्टेजों पर चढ़ कर एक दूसरे के बुर्ज़ुगों की निन्दा करो और उन्हें कहता कि हां और गालियां दो । गन्दे आरोप लगाओ, दोषारोपण करो और पर्दे में रहने वाली, सतीत्व, पतीव्रताओं के नाम ले ले कर ऐसी अश्लील बकवास करो कि एक अधर्मी भी उनको सुन कर शर्मानि लगे । क्या कोई भी मुसलमान यह भ्रम मन में ला सकता है कि वह शांति का राजकुमार अपने उलमा (ज्ञानियों) को ऐसे भड़काने वाले उपदेश देने को कहता जिससे बस्तियों की शांति भंग हो जाए और ऐसी प्रज्वलित भाषा के प्रयोग का आदेश देता कि जिस से असहायों और दुर्बलों के घरों और धन सम्पत्ति को उन के सहित आग लगा दी जाए और कहता कि अभी बस न करो और धर्म परिवर्तन करने वालों की मस्जिदें ढाह दो जिनके इस्लाम का कोई भाग तुम्हारे इस्लाम से भिन्न है, और उनके पुरुषों का भी वध कर दो और उनकी स्त्रियों को भी । क्योंकि धर्म परिवर्तन की समस्या को मिटाने का बस यही एक अध्यात्मिक उपाय है ।

ख़ुदा के लिए अपने दिलों को टटोलो और उत्तर दो कि क्या कोई भी मुसलमान एक क्षण के लिए भी यह कल्पना कर सकता है ? नहीं और विश्वसनीय रूप से नहीं । मुझे उस ख़ुदा की सौगन्ध है कि जिसके हाथ में मेरी जान है और मक्का की गलियों की ईंट-ईंट साक्षी है जिन पर निर्दोष दासों को धर्म परिवर्तन की सज़ा में मरे हुए जानवरों की भांति घसीटा गया था और अरब के मरुस्थलों की रेत के तपते हुए कण

साक्षी है और वह झुलसती हुई पत्थर की सिलें साक्षी हैं जिनको उन असहायों की छातियों पर रखा जाता था कि यह ढंग सय्यद वुल्दे आदम(स) (अर्थात् हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) के नहीं और यह शिष्टाचार उस पवित्र रसूल(स) के शिष्टाचार नहीं । और मुझे सौगन्ध है उस ख़ुदा की जिसके हाथ में मेरी जान है और ताऐफ़ की पत्थरीली धरती का एक एक पत्थर साक्षी है जिस पर सैय्यद वुलदे आदम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का ख़ून टपका था कि मेरे नृशंसित आक़ा(स) (स्वामी) ने कभी धर्म के नाम पर ज़बरदस्ती की शिक्षा नहीं दी । पवित्रता के नाम पर सतीत्व भंग करने का आदेश नहीं दिया और इबादत की आड़ में इबादत ख़ानों (पूजा स्थलों) को ढाने पर नहीं उकसाया । फ़िर क्यों न मेरी आंख लज्जा से झुक जाए और क्यों न मेरा दिल पीड़ा से भर जाए कि उसी पवित्र अस्तित्व से सम्बन्ध रखने वाले आज भी ऐसे ऐसे निर्दयी पथप्रदर्शक उपस्थित हैं ।

اُذِنَ لِلَّذِیْنَ یُقَاتَلُوْنَ بِاَنَّهُمْ ظُلِمُوْا وَاِنَّ
اللّٰهَ عَلٰی نَصْرِهِمْ لَقَدِیْرٌ٥ (الحج:۴۰)

(अलहज : 40)

इस्लाम के प्रचार के दो दृष्टिकोण

आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के इस्लाम के प्रचार के ढंग के बारे में दुनिया में दो दृष्टिकोण प्रचारित हैं :-

1. इस्लाम विरोधियों के समक्ष आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की जंगें, अत्याचार पूर्ण थीं, और इस्लाम तलवार के ज़ोर से फ़ैला । परन्तु

2. निष्पक्ष खोज यह है कि :-

हज़रत रसूले अकरम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने कभी इस्लाम के प्रचार हेतु तलवार नहीं उठाई और आप(स) की समस्त जंगें अपने बचाव के लिए की गई थीं । इस्लाम फैला है तो केवल आप(स) की आध्यात्मिक और शिष्टाचार की शक्तियों से ।

इस्लाम के प्रचार के विषय में मौलाना मौदूदी तथा कुछ दूसरों के दृष्टिकोण

ज़ुल्म की चरम सीमा यह है कि कुछ मुसलमान ''सुधारक'' हिंसा व अत्याचार के दृष्टिकोण को केवल अपने तक ही सीमित नहीं रखते बल्कि हमारे पवित्र आक़ा(स) (स्वामी) को भी उसमें सम्मिलित करने का प्रयत्न करते हैं और उस(स) के धर्म और उसकी पवित्र रूहानी शक्ति को भी अपनी खोखली दलीलों और कीड़ा खाई हुई शक्तियों की भांति ऐसा दुर्बल समझते हैं कि मानों यदि तलवार उसके क़ब्ज़े में न होती तो वह कभी भी वह महान आध्यात्मिक परिवर्तन उत्पन्न न कर सकता जो अरब से फूटने वाले उस आध्यात्मिक स्रोत ने कुछ वर्षों में करके दिखा दिया था । उनके निकट उस निर्दोष नबी की आत्म रक्षा की जंगे केवल अपने धर्म के विस्तार के लिए एक हिंसात्मक पग था और उसका मक्का में व्यतीत जीवन का युग केवल शक्ति हीनता की एक दलील था । इस विषय में जमाअते इस्लामी के नेता मौलाना मौदूदी अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं :-

''रसूल उल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम 13 वर्ष तक अरब को इस्लाम की ओर बुलाते रहे, उपदेशों व नसीहत का जो प्रभावशाली से प्रभावशाली ढंग हो सकता था उसे अपनाया। ठोस दलीलें दीं, स्पष्ट तर्क प्रस्तुत किए, लाटिका व साहित्य की अलंकृत शैली और भाषण के ज़ोर

से दिलों को गरमाया । अल्लाह की ओर से आश्चर्यजनक चमत्कार दिखाए । अपने शिष्टाचार और पवित्र जीवन से नेकी का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया और कोई ऐसा साधन न छोड़ा जो सच्चाई के प्रकटन व स्थिरता के लिए लाभदायक हो सकता था परन्तु आपकी जाति ने सूर्य की भांति आपकी सच्चाई उज्जवल होने पर भी आपके आमन्त्रण को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया... परन्तु जब उपदेश व नसीहत की असफ़लता के पश्चात् इस्लाम के प्रचारक ने हाथ में तलवार ली... तो दिलों से धीरे धीरे बुराई व शरारत का जंग छूटने लगा । स्वभाव से गंदे ख़्याल स्वंय निकल गए । आत्माओं की गंदगी दूर हो गई और केवल यही नहीं कि आंखों से पर्दा हट कर सच्चाई का प्रकाश स्पष्ट हो कर प्रकट हो गया बल्कि गर्दनों में वह सख़्ती और सिरों में वह अहंकार भी बाकी नहीं रहा जो सच्चाई के प्रकटन के पश्चात् इन्सान को उसके आगे झुकने से रोके रखती है ।

अरब की भांति दूसरे देशों ने भी जो इस्लाम को इस तेज़ी से स्वीकार किया कि एक शताब्दी में एक चौथाई संसार मुसलमान हो गया तो इस का कारण भी यही था कि इस्लाम की तलवार ने उन पर्दों को फ़ाड़ डाला जो दिलों पर पड़े हुए थे ।"

(अलजिहाद-फ़िल-इस्लाम" पृ. 137-138)

إِنَّا لِلّٰهِ وَإِنَّا إِلَيْهِ رَاجِعُوْنَ

(अर्थात अवश्य ही हम अल्लाह के लिऐ हैं और उसी की ओर लौट कर जाना है) अर्थात् वह गंदा और अत्यन्त दुष्ट आरोप जो इस्लाम के अत्यन्त संकीर्ण दुश्मनों की ओर से हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की पवित्र अस्तित्व पर लगाया जाता था जिसे युरोप के मिथ्याभाषी लिखारी पिछली शताब्दी तक इसाई दुनिया में उछालते रहे

और इस्लाम से दिलों को घृणित करते रहे वह आज स्वयं एक मुसलमान ''पथप्रदर्शक'' की ओर से उस पवित्र रसूल(स) के पवित्र अस्तित्व पर लगाया जा रहा है एक ऐसे पथप्रदर्शक की ओर से जिसे ''मिज़ाज शनासे रसूल'' (अर्थात् हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के स्वभाव को समझने वाला) का दावा है । चाहे शब्दों को मीठा बनाने का प्रयत्न किया गया है, चाहे तलवार की इस विचारात्मक विजय को शानदार बनाकर दिखाने का प्रयत्न किया गया है परन्तु गोली वही कड़वी और अपवित्र और विषैली गोली है जो इस्लाम के दुश्मनों की ओर से रसूल अल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की ओर फैंकी जाती थी । यह वही पत्थर है जो इससे पूर्व जार्ज सैल और स्मिथ और डोज़ी ने हज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम पर फैंका था । और वही आरोप है जो मिस्टर गांधी ने हज़रत मुहममद(स) पर उस समय लगाया था जब वह इस्लाम की शिक्षा से अभी पूरी तरह परिचित नहीं थे और केवल इस्लाम के दुश्मनों की कही हुई बातों को सुन कर यह समझ लिया था । अतः मिस्टर गांधी के शब्दों में :-

''इस्लाम ऐसे वातावरण में उत्पन्न हुआ जिसकी निर्णायक शक्ति पहले भी तलवार थी और आज भी तलवार है ।''

और डोज़ी कहता है कि :-

''मुहम्मद(स) के जरनैल एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में क़ुर्आन लेकर उपदेश देते थे ।''

और स्मिथ का दावा है कि जरनैलों का क्या प्रश्न स्वंय :-

''आप(स) एक हाथ में तलवार और दूसरे में क़ुर्आन लेकर विभिन्न जातियों के पास जाते हैं ।''

और जार्ज सैल यह निर्णय देता है कि :-

''जब आप(स) का इकट्ठ बढ़ गया तो आप(स) ने दावा किया कि मुझे उनपर आक्रमण करने और तलवार के बलपूर्वक मूर्तिपूजा मिटा कर सच्चा धर्म (इस्लाम) स्थापित करने की आज्ञा अल्लाह की ओर से मिल गई है ।''

इन सब इस्लाम के शत्रुओं की आवाज़ों को सुनिए और फ़िर

मौलाना मौदूदी की ऊपर लिखित रचना का अध्ययन कीजिए, क्या यह बिल्कुल वही आरोप नहीं जो इससे पूर्व बीसियों इस्लाम के दुश्मनों ने निर्दोष रसूल सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के अस्तित्व पर लगाया था ? बल्कि इससे भी अधिक भयानक और इससे भी अधिक आपकी रूहानी शक्ति पर आक्रमण करने वाला । आप इस्लाम के दुश्मनों की रचनाऐं पढ़ कर देख लीजिए कहीं भी आपको हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की रूहानी शक्ति की दुर्बलता और चमत्कारों की शक्ति हीनता का ऐसा भयंकर दृश्य दिखाई नहीं देगा जैसा कि मौलाना मौदूदी ने दृशाया है । अर्थात् आप(स) का लगातार 13 वर्षों का इस्लाम की ओर आमन्त्रण तो दिलों को विजयी करने से वंचित रहा परन्तु तलवार और हिंसा ने दिलों को विजयी कर लिया । उपदेश व नसीहत के प्रभावशाली से प्रभावशाली ढंग तो मरुस्थल की वायु की भेंट चढ़ गए परन्तु नेज़ों की पैनी धार ने इस्लाम को दिलों की गहराईयों तक इस्लाम पहुँचा दिया । आप(स) के ''प्रबल तर्क'' तो इन्सानी बुद्धि को समझ न आसके परन्तु गुरज़ों की मार फ़ौलादी टोपियों को तोड़ कर उनकी बुद्धि को समझा गई। स्पष्ट बहसें उनकी तर्क शीलता को प्रभावित न कर सकीं परन्तु घोड़ों की टापों ने इनको इस्लाम की सच्चाईयों के सभी राज़ समझा दिए। लाटिका व साहित्य की अलंकृत शैली बेकार गई । और उपदेशों का बल दिलों को उस प्रकार गर्मा न सका कि इस्लाम का प्रकाश उनके दिलों में चमक उठता, यहां तक कि स्वंय अर्श के ख़ुदा की ओर से प्रकट होने वाले आश्चर्यचकित चमत्कार भी लाभकारी न हुए और एक तुच्छ सा भी पवित्र परिवर्तन उत्पन्न न कर सके परन्तु.... ''जब इस्लाम के प्रचारक ने हाथ में तलवार ली...''

إِنَّا لِلّٰهِ وَإِنَّا إِلَيْهِ رَاجِعُوْنَ

(अर्थात :- हम अवश्य ही अल्लाह के लिए हैं और उसी की ओर लौट कर जाऐंगे) कितनी हास्यप्रद है यह कल्पना और कैसे अपमान जनक शब्द हैं कि जिनको पढ़ कर रोना आता है कि यह एक ''इस्लामी पथप्रदर्शक'' के क़ल्म से निकले हैं जो रसूल(स) के प्रेम का दावेदार है ।

मौलाना के इन शब्दों को पढ़िए और "मीज़ान-उल-हक़" के द्वेषी लेखक पादरी फ़ंडर के इन शब्दों का अध्ययन कीजिए :-

*"अब हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम तेरह वर्ष तक नम्रता व मेहरबानी के साधनों से अपने धर्म के प्रचार का प्रयत्न कर चुके थे... अत: अब से आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम "**اَلنَّبِیُّ بِالسَّیْف**" कहलाए अर्थात् तलवार धारी नबी बन गए और उस समय से इस्लाम की अत्यन्त सुदृढ़ और कारगर दलील तलवार ही निश्चित हुई।"* (मीज़ानुल हक पृ. 468)

"यदि हम हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम और उनके अनुयाइयों के चरित्र पर ध्यान दें तो ऐसा प्रतीत होगा कि अब वह विचार करने लग गए थे कि अकबा के शिष्टाचारी सिद्धान्तों की पाबन्दी उनके लिए आवश्यक न थी । अब ख़ुदा उनसे केवल एक बात की मांग करता था कि अल्लाह के मार्ग में लड़ें और तीरो-तलवार और ख़ंजर व कृपाण से वध पर वध करते रहें ।" (मीज़ानुल हक़ 499)

और इसके पश्चात् यह लेखक मसीह(अ) की निर्दोषता का बड़े गर्व से **نعوذ بالله** (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) हज़रत रसूले अकरम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के साथ तुलना करते हुए लिखता है :-

*"आप को ख़ुदावन्द यसूह मसीह कलिमह-तुल-अल्लाह और हज़रत मुहम्मद बिन अब्दुल्लाह (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम - लेखक) में से एक को पसन्द करना है । या तो उसको पसन्द करना है जो नेकी करता फ़िरा या उसको जो "**اَلنَّبِیُّ بِالسَّیْف**" (तलवारधारी) नबी कहलाता है ।"*

(ततिम्मा मीज़ानुल हक़)

फ़िर मौलाना मौदूदी के समर्थन में एक और इस्लाम के शत्रु मिस्टर हेनरी कोपी के निम्नलिखित शब्द पढ़िए :-

"...और अपनी नबुव्वत के 13 वें वर्ष आपने इस बात का प्रकटन किया कि ख़ुदा ने मुझ को न केवल आत्म

रक्षा के लिए जंग करने की आज्ञा दी है बल्कि अपना धर्म तलवार के बल पर फैलाने की भी आज्ञा दी है ।"

(अहले अरब की स्पेन की तारीख़ लेखक हिनरी कोपी प्रति नं. 1 पृ. 39 प्रकाशन बोस्टन मुकद्दमा तहकीकुल जिहाद से ली गई पृ. 31)

और डाक्टर ए. स्पिरन्गर के यह शब्द पढ़िए जो मौलाना मौदूदी के विचार से सहमत हो कर इस राय का प्रकटन करते हैं :-

"अब पैग़म्बर (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) ने फ़ितना व फ़साद के दूर करने के लिए अपने दुश्मनों से युद्ध करने का कानून ख़ुदा के नाम से प्रकाशित किया और उस समय से यह सिद्धान्त आपके نعوذ باللہ *(हम अल्लाह को पनाह चाहते हैं) ख़ूनी धर्म के युद्ध का नारा हो गया।"*

(मुकद्दमा तहकीकुल जिहाद से लिया गया हवाला तारीख़ मुहम्मदी पृ. 207 प्रकाशित इलाहाबाद 1851 ई.)

वह इस्लाम के दुश्मन जो हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) के अत्यन्त शत्रुओं में गिने जाते हैं, द्वेष व ईर्ष्या से जिनके सीने ख़ौलते हैं, जो घृणा की आग में जलते हैं, यदि वह हज़ूर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम पर हिंसा का आरोप लगाऐं तो आश्चर्य नहीं, दुःख तो बहुत होता है परन्तु आश्चर्य नहीं । हां आश्चर्य उनपर है और खेद है उनपर जो उस अबोध और निर्दोष रसूल(स) के अनुयायी होने का दम भर कर भी आप(स) के पवित्र अस्तित्व पर हिंसा का आरोप लगाने का साहस करते हैं ।

मौलाना मौदूदी के समक्ष न कभी पहले इस्लाम में यह शक्ति थी कि केवल अपनी सुन्दरता और मनमोहकता से तलवार की सहायता के बिना दिलों पर विजय प्राप्त कर सके और न आज यह शक्ति है । अतः अपनी पत्रिका "हक़ीक़त-उल-जिहाद" में लिखते हैं :-

"कोई एक सरकार भी अपने असूल व सिद्धान्तनुसार पूर्णत्या कार्य नहीं कर सकती, जब तक कि पड़ौसी देश में भी वही असूल व सिद्धान्त न प्रचलित हो जाए । अतः मुस्लिम पार्टी के लिए जन सुधार और आत्म सुरक्षा दोनों

के लिए यह आवश्यक है कि किसी एक भाग में इस्लामी व्यवस्था की सरकार स्थापित करने को पर्याप्त न समझे, बल्कि जहां तक उसका सामर्थ्य साथ दे, इस व्यवस्था को समस्त दिशाओं में विस्तृत करने का प्रयत्न करे । वह एक ओर अपने सिद्धान्तों व दृष्टिकोण को संसार में फ़ैलाएगी और समस्त देशवासियों को आमन्त्रित करेगी कि इस सिद्धान्त को स्वीकार करें जिसमें उनके लिए वास्तविक सफ़लता छिपी है । दूसरी ओर यदि उसमें शक्ति होगी वह लड़ कर इस्लाम के अतिरिक्त सरकारों को मिटा देगी और उनके स्थान पर इस्लामी सरकार स्थापित करेगी ।''

इन पंक्तियों को जनाब मौलाना साहिब की पहली पंक्तियों के साथ मिलाकर पढ़ने से सहसा गांधी जी को यह राय मस्तिष्क में उभर आती है कि :-

''इस्लाम ऐसे वातावरण में जन्मा हुआ है कि उसकी निर्णायक शक्ति पहले भी तलवार थी और आज भी तलवार है।''

और हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की उस बनावटी काल्पनिक चित्र की ओर ध्यान फिर जाता है जो वाशिंगटन इरविंग ने अपनी रचना ''सीरत-ए-मुहम्मद'' (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) के पहले ही पृष्ठ पर संकलित की है और जिसमें हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम को एक हाथ में तलवार लिए और एक हाथ में क़ुर्आन लिए हुए दिखाया गया है और दिल में यह विश्वास पैदा होता है कि मौलाना के निकट भी इस्लाम और इसके पवित्र रसूल सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की कल्पना वाशिंगटन इरविंग की कल्पना से कुछ भिन्न नहीं है।

अत: एक ओर तो यह मुसलमान ''आलिम'' (ज्ञानी) है कि संसार के सबसे अधिक निर्दोष नबी (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) पर अत्यन्त विरोधियों का समर्थक होकर ज़ुल्म, हिंसा, ज़बरदस्ती और बग़ावत का आरोप लगा रहा है और दूसरी ओर हमें अनगिनत ऐसे न्यायप्रिय ग़ैर

मुस्लिम दार्शनिकों का गिरोह नज़र आता है जो कि अत्यन्त विरोध के होने पर भी यह कहने पर मजबूर हो गए कि मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का धर्म हरगिज़ तलवार के ज़ोर से नहीं फैला बल्कि अपनी बाहरी और आन्तिरक सुन्दरता और महान शिष्टाचार की शक्ति के ज़ोर से दिलों पर विजय प्राप्त कर गया । अत: मौलाना और इस्लाम विरोधियों की ऊपरलिखित पंक्तियों के पश्चात् अवसर रहित न होगा कि हम कुछ न्यायप्रिय ग़ैर मुस्लिमों की राय भी प्रस्तुत कर दें । यह सब के सब इस्लाम के समर्थक व प्रशंसक नहीं हैं, बल्कि कुछ ऐसे भी हैं कि छोटे से छोटे अवसर का लाभ उठा कर भी इस्लाम पर आक्रमण करने से नहीं चूके, परन्तु हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की आत्मसुरक्षा की जंगों पर गहरी आलोचनात्मक दृष्टि डालने के पश्चात् उनको सहसा यह स्वीकार करना पड़ा कि :-

''अधिकतर संकीर्ण इस्लाम विरोधी विशेषकर गुमराह करने वाला प्रोपेगंडा करने और देश में दंगे व फ़साद की अग्नि भड़काने वाले कहा करते हैं कि हज़रत मुहम्मद साहिब (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) मदीना जाकर शक्ति व बल प्राप्त करके अपनी इस बनावटी दया व रहम की शिक्षा को शेष न रख सके बल्कि अपने जीवन के महान उद्देश्य (सांसारिक लोभ) सरकार व पद, धन धनाढ्यय आदि) को पाने के लिए बड़े ज़ोर के साथ तलवार और शक्ति का प्रयोग किया बल्कि एक ख़ूनी पैग़म्बर (अवतार) बन कर संसार में तबाही व बर्बादी मचाई और अपने इस बनावटी धैर्य और सहनशीलता की कसौटी से गिर गए । परन्तु यह उन संकीर्ण दृष्टिकोण रखने वाले विरोधियों की (जिनको बिना कारण इस्लाम और मुसलमानों से द्वेष है) संकीर्णता और पक्षपात रूपी अज्ञान का पर्दा जो उनकी आंखों पर पड़ा हुआ है और जो प्रकाश के स्थान पर अग्नि, सुन्दरता के स्थान पर कुरुपता और अच्छाई की जगह पर बुराई ही ढूंढते रहते हैं प्रत्येक

गुण के ऊंचे स्थान व शिक्षा को ऐसे बुरे रूप में प्रस्तुत करते हैं जिनसे उनकी आन्तरिक बुराई और दुष्ट हृदयता का भली भांति पता चलता है ।"

(दुनिया का हादी आज़म गैरों की नज़र में पृ. 57)

यह पंक्तियां एक ग़ैर मुस्लिम वक्ता जनाब पंडित ज्ञानेन्द्र साहिब देव शर्मा शास्त्री के एक भाषण से ली गई हैं जो उन्होंने 1928 ई. में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि व सल्लम की जीवनी पर गोरखपुर में फ़र्माई थी । कुछ आगे चल कर यही पंडित साहिब इस्लाम की निर्णायिक शक्ति के विषय में अपनी खोज का सारांश इन शब्दों में प्रस्तुत करते हैं:-

"विरोधी अन्धे हैं । उनको नज़र नहीं आता कि मुहम्मद (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम - लेखक) की तलवार दया व प्रेम थी । मित्रता और क्षमा थी जो विरोधियों पर पूर्णत्या कारगर होती और उनके दिल को पवित्र व साफ़ करके दर्पण की भांति बना देती है जिस की काट इस भौतिक तलवार से बड़ी ज़बरदस्त और तीव्र होती ।"

(दुनिया का हादी आज़म गैरों की नज़र में पृ. 61)

इन पंक्तियों के पश्चात् किसी टिप्पणी या तुलना की आवश्यकता नहीं रहती, परन्तु दिल से सहसा यह आह निकल जाती है कि काश मौलाना मौदूदी अपने "आक़ा(स)" (स्वामी) के बारे में उतने ही न्याय से काम लेते जितना कृष्ण(अ) के एक दास ने लिया है । एक नहीं बल्कि बीसियों हज़रत कृष्ण(अ) के सेवकों ने जब इस्लाम के इतिहास पर ध्यान दिया तो हमारे आक़ा(स) की असीमित सुन्दरता व उपकार को महसूस किया और यह कहे बिना उनसे बन न पड़ी कि :-

"लोग कहते हैं कि इस्लाम तलवार के बल पर फैला परन्तु हम उनकी इस राय से समर्थन का प्रकटन नहीं कर सकते क्योंकि ज़बरदस्ती से जो चीज़ फैलाई जाती है वह शीघ्र अत्याचारी से वापस ले ली जाती है । ((आश्चर्य है कि मौलाना की नज़र "मिज़ाज शनास-ए-नबुव्वत" (नबी के स्वभाव को समझने वाला) मानव प्रकृति के इस

खुले हुए रहस्य को भी न समझ सकी - लेखक)) यदि इस्लाम का प्रचार अत्याचार द्वारा हुआ होता तो आज इस्लाम का नाम, निशान भी शेष न रहता परन्तु नहीं ऐसा नहीं है बल्कि हम देख रहे हैं कि इस्लाम दिन प्रतिदिन उन्नति पर है । क्यों ? इसलिए कि इस्लाम के संस्थापक (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम - लेखक) के अन्दर आध्यात्मिक शक्ति थी । मनुष्य मात्र के लिए प्रेम था । उसके अन्दर प्रेम और दया की पवित्र भावना विद्यमान थी। नेक विचार उसका मार्ग दर्शन करते थे ।''

(ऐडीटर सत उपदेश लाहौर के कलम से तिथि 7 जुलाई 1915, प्रसंग ''बरगुज़ीदा रसूल ग़ैरों में मकबूल'' से लिया गया, पृ. 12-13)

परन्तु मौलाना साहिब फिर भी इसरार करते हैं कि इस्लाम की निर्णायक शक्ति का राज़ आपके अध्यात्मिक चमत्कार में नहीं बल्कि तलवार में छिपा था । खेद ! सौ बार खेद !! कि आप(स) के पवित्र जीवन का वह चमत्कार जो एक पक्के आर्य की दृष्टि से भी छिपा न रह सका मौलाना की ''विवेकशील आंख'' उसे देखने से वंचित रह गई । ''आर्य मुसाफ़िर'' की इस्लाम से शत्रुता से कौन परिचित नहीं है । यह आर्य धर्म का वह अनुवादक है जो प्राय: इस्लाम के विरोध पर डटा रहा, परन्तु जब इसके एक लेखक ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि व सल्लम की विजय के कारणों पर विचार किया तो तलवार की शक्ति के आरोप को एक पुरातन और निराधार भ्रम के रूप में ठुकरा दिया और आपकी विजय का कारण केवल यह निर्धारित करने पर विवश हो गया कि आपका जीवन एक साक्षात चमत्कार था, अत: वह लिखता है और मानव प्रकृति की यह कैसी सच्ची और पवित्र गवाही है कि :-

''वह व्यक्ति जिसने क़ुरैश को ईमान की शहादत का जाम पिलाया, एक चमत्कार था... यदि मुहम्मद (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम - अनुलेखक) का जीवन एक चमत्कार न होता तो कौन हमको वलीद (सम्भवता ख़ालिद बिन वलीद(र) - अनुलेखक) की बिना किसी लालच के की

गई सेवाओं से लाभ पहुँचाता । हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम - अनुलेखक) ने ईमान के जोश का दरिया चलाया और अरब की जंगली आबादी को एकेश्वरवादी बनाया।''

(आर्य मुसाफ़िर अक्तूबर 1913 पृ. 23, सुप्रसंग बरगुज़ीदा रसूल ग़ैरों में मकबूल'' पृ. 24)

फिर लाहौर में होने वाले आर्य समाज के एक जलसे में प्रोफ़ैसर राम देव साहिब, पूर्व प्रोफ़ेसर गुरुगुल कांगड़ी व ऐडीटर वैद्दिक मैगज़ीन ने हमारे आक़ा व मौला (स्वामी) मुहम्मद-ए-अरबी सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम पर लगाए जाने वाले इस भद्दे दोष को ग़ल्त निर्धारित करते हुए कि आपने इस्लाम तलवार से फैलाया था इन शब्दों में अपनी खोज का प्रकटन किया :-

''परन्तु मदीना में बैठे हुए मुहम्मद(स) साहिब ने उनमें जादू की बिजली भर दी । वह बिजली जो इनसानों को देवता बना देती है... और यह ग़ल्त है कि इस्लाम केवल तलवार से फैला है । वास्तविकता यह है कि इस्लाम के प्रचार के लिए कभी तलवार नहीं उठाई गई । यदि धर्म तलवार से फैल सकता है तो आज कोई फैला कर दिखाए।''

(समाचार पत्र 'प्रकाश' सुप्रसंग बरगुज़ीदा रसूल ग़ैरों में मक़बूल, पृ. 24)

इस अन्तिम पंक्ति में कैसी अमर सच्चाई भरी हुई है ''यदि धर्म तलवार से फैल सकता है तो आज कोई फैला कर दिखा दे ।'' हमारे पवित्र आक़ा (स्वामी) सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम पर हिंसा का आरोप लगाने वालों के लिए चिंताजनक बात और चैलेन्ज है और मुझे सौगन्ध है उस अस्तित्व की जिसने धर्म को पैदा किया कि जब से सिलसिला नबुव्वत (अवतारवाद का क्रम) जारी हुआ है न कभी पहले किसी हिंसक अत्याचारी ने इस चैलेंज का उत्तर दिया न आज दे सकता है न कभी भविष्य में देगा । और एक मौदूदी नहीं पचास करोड़ मौदूदी भी एकत्रित हो कर प्रयत्न करें तब भी एक इन्सान के दिल से कभी तलवार के बल

पर उसका धर्म निकाल नहीं सकते । एक लाख चौबीस हज़ार नबी इस बात के साक्षी हैं कि उनके विरोधियों की ओर से धर्म को बल पूर्वक परिवर्तित कराने के लिए एक लाख चौबीस हज़ार बार तलवार उठाई गई परन्तु हर बार असफ़ल व निराश रही । वह हाथ शिथिल हो गए और वह तलवारें टूट गईं और धर्म उनकी छाया तले निडर फैलता और फूलता और फलता रहा । फिर इन सब नबियों के सरदार को कहां शोभनीय था कि इस पवित्र गिरोह के सफ़ल प्रचारक ढंग को छोड़ कर असफ़ल अत्याचारियों का ढंग अपनाते । नहीं ऐसा मत कहो कि यह मेरे आक़ा(स) (स्वामी) पर तोड़े जाने वाले सब ज़ुल्मों से अधिक ज़ुल्म है और ऐसा प्रत्यक्ष ज़ुल्म है कि पराए भी सहसा पुकार उठे कि नहीं ऐसा नहीं हुआ अत: मूसियों ओजीन कलौफ़ल ने आप(स) के सम्बन्ध में लिखा :-

> *''मुहम्मद (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम - अनुलेखक) ने समस्त संसार को विजयी करना और इस्लाम का बोल बाला करना चाहा परन्तु अन्य धर्म वालों पर किसी प्रकार की हिंसा व अत्याचार नहीं किया उनको धर्म और राय की आज़ादी दी और उनकी सभ्यता के अधिकार बरकरार रखे ।''*

(इस्लाम और उलेमा फ़रंग पृ. 9 सुप्रसंग बरगुज़ीदा रसूल ग़ैरों में मकबूल, पृ. 11)

मिस्टर गांधी को भी जिनकी विवेकशीलता बड़ी गहरी थी, खोज के पश्चात् अन्ततः अपनी उस राय को तबदील करना पड़ा जिसका संकलन ऊपर किया गया है और अपने समाचर पत्र ''यंग इंडिया'' के एक एडीशन में यह स्वीकार करना पड़ा कि :-

> *''मैं जैसे जैसे इस आश्चर्यजनक धर्म का अध्ययन करता हूँ, वास्तविकता मुझ पर खुलती जाती है कि इस्लाम का वैभव तलवार पर आधारित नहीं ।''*

और डॉ. डी. डब्ल्यू. लाईटज़ ने भी स्वयं क़ुर्आन ही से इस आरोप के खण्डन में एक सुदृढ़ दलील देते हुए लिखा :-

"सत्यत: उन लोगों की समस्त दलीलें गिर जाती हैं जो केवल इस बात पर स्थिर हैं कि जिहाद (धर्मयुद्ध) का उद्देश्य तलवार द्वारा इस्लाम का प्रचार था क्योंकि इसके विपरीत सूरत हज में स्पष्ट लिखा है कि "जिहाद (धर्मयुद्ध) का उद्देश्य मस्जिदों और गिरजाओं और यहूदियों के पूजागृहों और विरक्तों और आबिदों (तपेश्वरों) की ख़ानक़ाहों (तपस्याशालाओं) को बर्बादी से सुरक्षित रखना है ।"

(एशयाटिक तिमाही रेविंयु अक्तूबर 1886 ई.)

अत: तलवार से बलपूर्वक इस्लाम फैलाने का आरोप लगाने वालों से मैं स्वयं क़ुर्आन ही के शब्दों में पूछता हूँ :-

اَفَلَا يَتَدَبَّرُوْنَ الْقُرْاٰنَ اَمْ عَلٰى قُلُوْبٍ اَقْفَالُهَا؟ (محمد:٢٥)

(मुहम्मद : 25)

"क्या वह क़ुर्आन पर विचार नहीं करते ? या दिलों पर ताले पड़े हुए हैं ।"

परन्तु मौलाना को कौन समझाए कि वह इस दावा पर डटे हैं और घोषणा करके डटे हैं और फंडर और सैल और हेनरी कोपी और स्मिथ डोज़ी और स्पिरिन्गर के समर्थन पर हैं इस घोषणा के साथ डटे हैं कि :-

"यही नीति थी जिस पर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने और आपके पश्चात् आपके उत्तराधिकारी चले। अरब जहां मुस्लिम पार्टी पैदा हुई थी, सबसे पहले उसी को इस्लामी सरकार के अधीन किया गया । इसके पश्चात् रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने चारों ओर के देशों को अपने असूल और सिद्धान्त की ओर आमंत्रित किया परन्तु इसकी प्रतीक्षा न की कि यह आमन्त्रण स्वीकार किया जाता है या नहीं बल्कि शक्ति प्राप्त करते ही रूमी सरकार से टकराव आरम्भ कर दिया

हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के पश्चात् हज़रत अबूबकर(र) पार्टी के लीडर हुए तो उन्होंने रोम और ईरान दोनों ग़ैर इस्लामी राज्यों पर आक्रमण किया और हज़रत उमर(र) ने इस आक्रमण को सफ़लता के अन्तिम चरण तक पहुँचा दिया ।'' (हक़ीक़ते जिहाद पृ. 65)

यदि यह रचना किसी समाज वादी इतिहासकार को होती और यह नीति मार्क्स या लैनिन या सटालिन से सम्बन्धित की जाती और ''मुस्लिम पार्टी'' के स्थान पर ''कम्यूनिस्ट पार्टी'' के शब्द होते तो मुझे कुछ आश्चर्य न होता और मैं बिना किसी हार्दिक अशांति के इन पंक्तियों को पढ़ पर आगे गुज़र जाता और यह विचार भी न आता कि यह किसी ने क्या लिखा है । काश ऐसा ही होता परन्तु खेद कि ऐसा नहीं हुआ । खेद कि ऐसा नहीं है । और यह एक मुस्लिम पथप्रदर्शक की रचना है जो कि स्पष्ट शब्दों में उस पवित्र हस्ती पर यह आरोप लगा रहा है जिसकी सेवा का दावा करता है ।

यह मौलाना मौदूदी की रचना है... शब्द स्पष्ट और भ्रम रहित है। आरोप अतिघृणित और भौंडा है और केवल एक आरोप लगाया गया है । इस रचना का पढ़ना भी मेरे लिए अत्यन्त कठिन है और इसका लिखना भी । असहनीय पीड़ा देता है जब इस वाक्य पर नज़र पड़ती है कि इस्लाम का आमन्त्रण तो भेजा परन्तु :-

''इसकी प्रतीक्षा न की कि यह आमन्त्रण स्वीकार किया जाता है या नहीं बल्कि शक्ति प्राप्त करते ही रोमी राज्य से टकराव आरम्भ कर दिया...।''

आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की नीति तो एक अबोध नीति थी जो एक नवजात शिशु की भांति पवित्र व साफ़ थी । आप(स) ने तलवार उसी समय उठाई जब आप पर हद से बढ़ कर अत्याचार किए गए आपके हाथ सुरक्षा के हाथ थे और हिंसा की तलवार से बिल्कुल अपरिचित थे । सज्जन परायों ने भी जब आप(स) की इस नीति को देखा तो उसे पूर्णत्या शांतिमय और अमन और आत्मरक्षा की नीति बताया । अत: मौदूदी साहिब की ऊपरलिखित पंक्तियां पढ़ने के पश्चात्

अब एक सिख समकालीन के शब्द भी देखिए :-

"आरम्भ में आँहज़रत(स) के विरोधियों ने जब आपका(स) जीवन अजीरन कर दिया तो आप(स) ने अपने अनुयायियों से कहा कि अपना देश छोड़ कर मदीने चले जाओ । अर्थात् अपने किसी देशवासी भाई पर हाथ उठाने के स्थान पर हुज़ूर(स) ने अपना प्यारा देश छोड़ना स्वीकार कर लिया । परन्तु जब उनपर अत्याचार और हिंसा की हद कर दी गई तो विवशता पूर्वक आप(स) ने अपनी और इस्लाम की रक्षा हेतु तलवार उठाई... यह प्रचार कि धर्म के प्रचार के लिए हिंसा वैध है उन बुद्धिहीनों की आस्था है जिनको न धर्म की सूझ है न संसार की । वह वास्तविक सच्चाइयों से दूर होने के कारण इस ग़ल्त आस्था पर गर्व करते हैं ।"

(नवां हिन्दुस्तान, दिल्ली 17-11-49)

इस पर मैं कोई और टिप्पणी नहीं करता पाठकों का हृदय स्वयं गवाही देगा कि दोनों में से कौन सच्चा है एक सिख लेखक या "मिज़ाज शनासे नबुव्वत ?"

इस्लाम के प्रचार में हिंसा के प्रयोग का आरोप

इतिहासिक प्रमाणों के प्रकाश में

पिछले अध्याय में मौलाना मौदूदी की जो पंक्तियां नक़ल की गई हैं (''परन्तु जब उपदेश एवम् नसीहत की नाकामी के पश्चात् इस्लाम के प्रचारक ने हाथ में तलवार ली...।'') यह उनकी पुस्तक ''अल-जिहाद-फिल-इस्लाम'' से ली गई है । इस पुस्तक के अध्ययन के पश्चात् इन्सान बिना किसी कठिनाई के इस परिणाम तक पहुँच जाता है कि यह एक ऐसे व्यक्ति के मानसिक प्रयत्नों का परिणाम है जिसका विवेक उसके व्यक्तिगत झुकावों और हार्दिक दशा का अनुयायी है । अल्लाह तआला ने इन्सान को बुद्धि एक न्यायाधीश और क़ाज़ी के वरदान स्वरूप दी है जो उसकी भावनाओं और ज्ञान पर बराबर न्याय करती है और यदि एक ओर इन दोनों को एक दूसरे पर नाजाइज़ अधिकार जताने से हटाती है तो दूसरी ओर उनके आंतरिक संतुलन को भी बनाए रखती है । परन्तु यदि किसी की दृष्टि व विवेक का यह न्यायकर्ता ग़ल्त प्रशिक्षण के आधार पर अन्यायी हो जाए या स्वतन्त्र न रह सके और स्वंय अपनी ही भावनाओं का दास हो कर रह जाए तो ऐसे व्यक्ति के मानसिक संसार में एक अस्तव्यस्तता फैल जाएगी और कोई कानून और प्रबन्ध दिखाई नहीं देगा । यदि यह अस्वतन्त्र या अन्यायी बुद्धि किसी ऐसे व्यक्ति में पाई जाए जो पूर्णतया जाहिल हो या भावनारहित हो तो इन्सान को सम्पूर्ण रूप में उससे कोई ख़तरा प्रतीत नहीं हो सकता । परन्तु जितना भी ऐसे व्यक्ति के पास ज्ञान अधिक हो या भावनाओं की अधिकता हो उतने ही

ग़ल्त परिणाम उदृत करके संसार के लिए एक मुसीबत और विपत्ति का कारण बन सकता है । जब यह न्याय कर्ता कमज़ोर हो तो कभी यह अपनी भावनाओं के अधीन हो जाता है और कभी दिखावा मात्र ज्ञान का। कभी एक भटकते हुए कवि या एक पागल के वेश में प्रकट होता है कभी एक शुष्क दार्शनिक या एक आध्यात्मिक्ता हीन आ़रिफ़ (ज्ञानी) का रूप धार लेता है और इन में से हर सूरत मानव जाति के लिए एक मुसीबत और ख़तरा बन जाती है ।

मौलाना मौदूदी की कुछ पुस्तकों उदाहरणार्थ ''अलजिहाद-फ़िल-इस्लाम'' के अध्ययन से मैं ने यह समझा है कि उनके पास बुद्धि का न्यायाधीश स्वतन्त्र नहीं बल्कि विशिष्ट व्यक्तिगत झुकावों के पीछे चलता है। यही कारण है कि अपने प्राप्त किए हुए ज्ञान से जो परिणाम उधृत करते हैं वह अत्यन्त बैचेन बल्कि एक दूसरे में उलझे हुए हैं । इस्लाम के सम्बन्ध में मौलाना पहले से यह ठान कर बैठे हैं कि यदि इस अबोध धर्म को फैलाया जा सकता है तो तलवार के बलपूर्वक । परन्तु कठिनाई मध्य में यह आ जाती है कि प्रथम तो क़ुर्आन इस दृष्टिकोण के विरुद्ध और हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के जीवन का एक-एक पल इसके विपरीत है । दूसरे अन्य लोगों की नज़र का कुछ-कुछ डर । वह क्या कहेंगे कि ''इस्लाम'' एक ऐसा हिंसक धर्म है । अतः मौलाना अजीब दुविधा में पड़े हैं जो चाहते हैं वह भली भांति कह नहीं सकते और जो कह सकते हैं वह दिल की पूरी आवाज़ नहीं । इसी उलझन में फंस कर मौलाना ने एक पैचदार ढंग अपने अन्तरमन के विचार के प्रकटन का निकाला है । अपनी पुस्तक का आरम्भ तो इस दावे से करते हैं कि इस्लाम धर्म में हिंसा को वैध नहीं समझता परन्तु अन्त इसके बिल्कुल विरोध पर जाकर होता है । इस पुस्तक के आरम्भ में सारा ज़ोर यह प्रमाणित करने पर लगाया गया है कि हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की जंगें आत्म रक्षा की जंगें थीं और उनका उद्देश्य यह था कि इन्सान के अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता स्थापित की जाए, हिंसा व अत्याचार द्वारा इस्लाम को दबाने के लिए विरोधियों के समस्त अपवित्र प्रयत्न असफ़ल बना दिए जाऐं और सच्चाई को उनकी निर्धारित सीमाओं से स्वतन्त्र किया जाए ।

एक पग आगे

यह पढ़ कर इन्सान का दिल प्रसन्न हो जाता है कि बड़ा ही पवित्र धर्म है जो प्रकृति के अनुसार ऐसी स्वतन्त्र और शांतिमय शिक्षा देता है और इन्सान के इस अधिकार को मान्यता देता है कि वह अपने धार्मिक विचारों में पूरी तरह स्वतन्त्र है और उस पर दूसरे धार्मिक दृष्टिकोण ठोंसने के लिए हर प्रकार की हिंसा अवैध है परन्तु खेद कि यह ख़ुशी अधिक देर तक नहीं रहती और मौदूदी साहिब यहां पहुँच कर पैंतरा बदलने लगते हैं और सारा प्रमाण इस ओर फिर जाता है कि किस प्रकार इस्लाम के साथ हिंसा के दृष्टिकोण को बांधा जाए । आप यह पढ़ कर अवश्य आश्चर्यचकित रह जाऐंगे कि यदि पहले इस दृष्टिकोण को मान लिया जाए कि इस्लाम की जंगें केवल आत्मरक्षा की जंगें थीं और धर्म में हिंसा के प्रयोग के विरुद्ध एक व्यवहारिक असंतोष के रूप में थीं, तो फिर उसी सांस में यह कहने का स्थान ही कहां रहता है कि इस्लाम स्वंय धर्म के नाम पर हिंसा का प्रयोग करता है । यह समझना आपके और मेरे लिए कठिन हो तो हो परन्तु मौदूदी साहिब के लिए कठिन नहीं । अतः इस स्थान पर इस बात की पूरी तसल्ली कर लेने के पश्चात् कि इस्लाम के विरोधियों का दांत तोड़ उत्तर देकर मुंह पूर्णत्या बंद कर दिया गया है, अब अपनों में बैठ कर दिल की बात का प्रकटन आरम्भ करते हैं और एक आश्चर्यजनक Transformation में से गुज़रते हुए क़ुर्आन एंव हदीस को मनमाने अर्थ पहना कर और एक न समझ आने वाला कारण प्रस्तुत करके अन्ततः इस परिणाम तक पहुँच ही जाते हैं कि मुसलमान बनाने के लिए तो जंग किसी हालत में वैध नहीं परन्तु बुरी बातों से रोकने के लिए अवश्य वैध बल्कि आवश्यक है । और क्योंकि ग़ैर इस्लामी देशों और संस्कृति में बुरी बातें होती हैं इसी कारण इस्लाम यह हरगिज़ सहन नहीं कर सकता कि कोई अपने देश में बुरी बातें करता रहे । इस हिंसा को तो मानव स्वतन्त्रता में विघ्न नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसका इस्लाम के प्रचार से कोई सम्बन्ध नहीं बल्कि यह तो केवल बुरी बातों से रोकने के लिए अपनाया गया है ।

एक और पग आगे

यह फ़र्मा कर मौलाना अपने व्यक्तिगत झुकावों के बहुत समीप आ जाते हैं परन्तु अभी दिल की पूरी बात क़लम की नोक पर नहीं आई । भला इसमें क्या मज़ा कि किसी को तलवार के बलपर बुरी बातें करने से मना कर के इन्सान अपने मार्ग पर चल पड़े । जब एक बार बुरी बातों से रोकने के उद्देश्य से तलवार हाथ में पकड़ ही बैठे तो फिर क्या इसी पर बस कर देंगें नहीं बल्कि इसका कोई और उद्देश्य होना चाहिए और वह उद्देश्य ढूंढना भी कुछ कठिन नहीं । यदि क़ुर्आन-ए-करीम की केवल एक आयत को उस के स्थान से हटा कर दूसरे स्थान पर रख कर अपनी इच्छानुसार अर्थ पहना दिए जाऐं तो सरलता से ऐसा हो सकता है । अत: यही सरल मार्ग अपनाते हुए मौदूदी साहिब फ़र्माते हैं :-

"حَتّٰى يُعْطُوا الْجِزْيَةَ (यहां तक कि वह अपने जिज़ए अदा करदें) में इस रक्तपात के उद्देश्य को भली भांति ब्यान कर दिया गया है (जिस रक्तपात को बुरी बातों को रोकने के उद्देश्य से आरम्भ किया गया था - (अनुलेखक) यदि حَتّٰى يُسْلِمُوْا (यहां तक कि वह मुसलमान हो जाऐं) कहा जाता तो फिर भी रक्तपात का उद्देश्य यह होता कि उनको तलवार के बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाए, परन्तु حَتّٰى يُعْطُوا الْجِزْيَةَ (यहां तक कि वह अपने जिज़ए अदा कर दें) ने बता दिया कि उन का जिज़या अदा कर देने पर राज़ी हो जाना रक्तपात की अन्तिम सीमा है और फिर इस के पश्चात् उन की जान व धन सम्पत्ति पर कोई हमला नहीं किया जा सकता, चाहे वह इस्लाम स्वीकार करें अथवा न करें ।" (अलजिहाद फ़िल इस्लाम, पृ. 93)

पाठक गण अब तक मेरी इस भूमिका का अर्थ भली प्रकार समझ चुके होंगे कि एक अस्वतन्त्र बुद्धि को जब ज्ञान पर कुछ सामर्थ्य प्राप्त हो तो वह संसार के समक्ष अद्‌भुत, बेचैन और भयानक परिणाम प्रस्तुत करती है । व्यंग्य की चरमसीमा है कि आरम्भ तो इस ब्यान से होता है कि इस्लाम अन्तर आत्मा की स्वतन्त्रता का धर्म है और इस्लामी जंगों का

उद्देश्य केवल यह था कि विरोधियों की ओर से धार्मिक स्वतन्त्रता को कुचला जा रहा था । मध्य में जाकर यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जाता है कि वास्तव में इस्लाम के दो भाग हैं, अच्छी बातों का आदेश देना और बुरी बातों से रोकना । बलपूर्वक अच्छी बातों का आदेश देना तो क्योंकि अन्तरआत्मा की स्वतन्त्रता के विरुद्ध है इस कारण इस्लाम ऐसा नहीं करता । परन्तु बुरी बातों को क्योंकि किसी दशा में सहन नहीं कर सकता इस कारण संसार के कोने कोने से तलवार के बल पर मिटाने के लिए जंग का आदेश देता है । और अन्ततः परिणाम यह निकलता है कि क्योंकि बुरी बातों को मिटाने के उद्देश्य से जंग की गई थी इसी कारण इस्लाम जिज़या (तावाने जंग) लेकर राज़ी हो जाता है और "फिर उनकी जान व धन सम्पत्ति पर कोई हमला नहीं किया जा सकता चाहे वह इस्लाम स्वीकार करें अथवा न करें ।" यहां पहुँच कर मौलाना को आधे धर्म अर्थात् बुरी बातों से रोकना बिल्कुल भूल जाता है क्योंकि जिज़या मिल गया और वास्तविक उद्देश्य पूरा हो गया । अतः यह कहना भी याद नहीं रहता कि इस स्थान पर इस्लाम स्वीकार करने या न करने का क्या अर्थ है । भलाई का आदेश देना और बुराई से रोकना दोनों अथवा दोनों में से एक ।

आख़री छलांग

परन्तु अभी तक भी मौलाना अपने दिल की बात को भली प्रकार प्रकट नहीं फ़र्मा सके और एक आख़री छलांग लगानी शेष है । मौदूदी विवेक यह सोच ही नहीं सकता कि इस्लाम के प्रचार का तलवार से कोई सम्बन्ध न हो और हिंसा के बिना भी कोई धर्म संसार में फैल सकता है। अतः रक्तपात का उद्देश्य जिज़या प्राप्त करना बता कर यह साबित फ़र्माने का प्रयत्न करते हैं कि इस्लाम के प्रचार के लिए तलवार प्रत्येक दशा में आवश्यक थी । अतः अंग्रेज़ी के इस मुहावरे के अनुसार कि "बिल्ली बैग से बाहिर निकल आई" (Cat is out of the bag) मन की बात अन्ततः बाहर निकल ही आती है और मौलाना अचानक हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के पवित्र नाम पर इस आरोप के साथ छलांग लगाते हैं "परन्तु जब मुअजिज़ात (इलाही चमत्कार) की

असफ़लता के पश्चात इस्लाम के प्रचारक ने तलवार हाथ में ली..." और अचानक वह सब कुछ कह डालते हैं जो अब तक सीने में दबा पड़ा था (खेद कि इस स्थान से पहले यदि मौलाना के पग व्यंग्य की सीमा में उठ रहे थे तो इस छलांग के साथ ही स्पष्ट रूप से ज़ुल्म व अत्याचार की सीमा में दाख़िल हो जाते हैं) और अपने विशिष्ट रंग में रात को दिन और दिन को रात बताते हुए धर्म के प्रचार की इस ख़ूनी कल्पना को बिल्कुल सही और सच्चाई का मार्ग दिखाते हैं । अन्ततः परिणाम इन समस्त काले किए हुए पृष्ठों का यह निकलता है कि :-

"जिस प्रकार यह कहना ग़ल्त है कि इस्लाम तलवार के बल पर लोगों को मुसलमान बनाता है इसी प्रकार यह कहना भी ग़ल्त है कि इस्लाम के प्रचार में तलवार का कोई भाग नहीं है ।" (अलजिहाद फ़िलइस्लाम पृ. 138)

कुछ देखा आपने कि कहां से चले थे और कहां जा निकले । किस उद्देश्य से तलवार पकड़ी थी और कहां प्रयोग होने लगी ?

मौलाना की इस कूटनीति को देख कर स्वयं ध्यान उन देशों की ओर स्थानांत्रित हो जाता है जो अपनी रक्षा हेतु हथियार लेकर हिंसक अभियानों में प्रयोग करने लगते हैं । मौलाना को अधिकार है कि जो चाहें करें और जिस प्रकार चाहें सोचें । केवल इतनी सावधानी आवश्यक थी कि ईर्ष्यालू शत्रु के लिए जो पहले दिन से ही इस्लाम और इस्लाम के प्रचारक पर घोर आक्रमण कर रहा है और अवसर की तलाश में हर पल चौकस और होशियार है, स्वयं अपने हाथ से क़िले के द्वार न खोल देते !

यदि मौलाना ने क़ुर्आन व हदीस का अध्ययन न किया होता या उनको इस्लामी इतिहास का कुछ परिचय न होता तो मैं यह विचार करके संतोष प्राप्त कर लेता कि जो कुछ कह रहे हैं अज्ञानता के कारण कह रहे हैं, परन्तु खेद कि यह कहने की भी संभावना शेष नहीं । ज्ञान सब अपने स्थान पर है और सब कुछ जान रहे हैं परन्तु इतना होने पर भी कि इस्लामी इतिहास का एक एक पृष्ठ, एक एक शब्द इस दृष्टिकोण को झुठला रहा है कि इस्लाम के प्रचार में तलवार को कोई अंश भर भी स्थान था । इसी दृष्टिकोण पर डटे हैं और नहीं बता सकते कि यदि

दिलों के ज़ंग धोने के लिए तलवार इतनी ही आवश्यक थी तो अबूबकर(र) और उमर(र) और उसमान(र) और अली(र) के दिलों के ज़ंग किस तलवार ने धोऐ थे और किस तलवार ने हब्शी बिलाल(र) के दिल में एकेश्वरवाद का प्रकाश डाला था ? फिर वह तलवार कौन सी थी जिसने ज़ैद बिन हारिस(र) और ज़ुबैर बिन-उल-अवाम(र) को मुसलमान किया ? और वह कौन सी तलवार थी जो हमज़ा(र) और तलहा(र) के दिल को ईमान का वरदान दे गई ? अब्दु-र्रहमान बिन औफ़(र) और अबु उबैदा बिन अबदुल्लाह(र) उसमान बिन मज़ऊन(र) और सअद बिन-अबी वक़ास(र) के दिल किस तलवार के पानी से पवित्र किए गए ? और वह सारे मुहाजिरीन (शरणार्थी) और वह अनसार(र) जिनकी संख्या हज़ार तक जा पहुँचती है और जिनके सम्बन्ध में स्वयं मौलाना को भी स्वीकार होगा कि उनके इस्लाम स्वीकार करने में किसी तलवार के प्रयोग की शंका तक नहीं पाई जाती किस प्रकार दिलों को पवित्र करने के इस आवश्यक हथियार के बिना दिल पवित्र करने में सफ़ल हो गए । किस प्रकार उनके ज़ंग खुरचे गए और नया रंग चढ़ाने हेतु दिल साफ़ किए गए ? मौलाना इस्लामी इतिहास पर एक दृष्टि डाल कर बताईए कि क्या यह ठीक नहीं कि इन मुहाजिरीन एवं अनसार(र) जिनके इस्लाम स्वीकार करने में तलवार के प्रयोग को स्वयं आप भी नकारते होंगे । यही तो इस्लाम का वह फल थे जो फल लगाने के लिए इस्लाम के संस्थापक सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम संसार में पधारे, यह वही तो हैं जिनको इस्लाम का रसूल (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) गर्व के साथ संसार के सामने प्रस्तुत कर सकता था कि ऐ मानव जाति ! यह है वह ब्राह्मांड का सारांश जिस को उत्पन्न करने के लिए ब्राह्मांड को उत्पन्न किया गया । यही है जिनको हिदायत के आकाश के सितारे कहा गया और इन ही में से कुछ थे जिनके सम्बन्ध में बदर के मैदान में इस्लाम के नबी(र) ने रो-रो कर ख़ुदा के समक्ष दुआ की कि :-

اَللّٰهُمَّ اِنْ اَهْلَكْتَ هٰذِهِ الْعِصَابَةَ فَلَنْ تُعْبَدَ فِی الْاَرْضِ اَبَدًا

"ऐ अल्लाह ! यदि इस जाति को तूने हलाक (समाप्त)

होने दिया तो धरती पर फिर कभी तेरी इबादत न की जाएगी ।"

यह वही इबादत करने वाली सर्वश्रेष्ठ जाति थी जिनके दिल ख़ुदा के सिंहासन बन गए और सीने ख़ुदा के स्मरण से भर गए । यह कौन लोग थे और यह सब कुछ कैसे हुआ ? क्या यह वही अरब के बसने वाले असभ्य मनुष्य न थे जिनके दिल (अतिरिक्त इसके कि जिनके सम्बन्ध में अल्लाह ने चाहा हो) इस्लाम के स्वीकार करने से पहले भांति-भांति की बुराईयों के फंदों में गिरफ़्तार थे और शिर्क (अनेकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा) का ज़ंग उन पर तहों के रूप में चढ़ा हुआ था जिनको आंहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने आध्यात्मिक पानी से धोया और पवित्र व साफ़ किया। फिर उनके बाहर और भीतर को ख़ुदा तआला के रंग में ख़ूब रंगीन कर दिया यहां तक कि यह रंग उनकी आत्मा की गहराईयों तक उतर गया, और इतना अधिक हो गया कि मस्तकों से फूटने लगा... परन्तु एक बार भी इस महान आध्यात्मिक परिवर्तन के मध्य इस्लाम के प्रचारक(र) को जंग के हथियारों की आवश्यकता न पड़ी । क्या वह बाद के आने वाले मुसलमान जो इस्लाम की एक सामूहिक आध्यात्मिक विजय के पश्चात् मुसलमान हुए इन सितारों के पैरों की धूल के समान भी थे ?... मौलाना! आप कहां चले गए और किन वीरानों में भटक गए ? सुनिए कि मैं ख़ुदा की बड़ाई और प्रताप की सौगन्ध खा कर कहता हूँ कि मुहम्मद (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) का दीन अपने प्रचार के लिए किसी दूसरे सहारे का ज़रूरतमंद न था । आज भी नहीं है, भविष्य में भी कभी न होगा ।

यह आपने क्या कहा कि तलवार का काम खेत तैयार करना है और यह आपने क्या कह दिया कि तलवार दीक्षा स्वीकृति से पूर्व दिलों के जंग को दूर करती है । क्या आप मानव प्रकृति के क, ख से भी परिचित नहीं ? क्या आप इस खुली हुई सच्चाई से भी परिचित नहीं कि तलवार सच्चाई के बीज के लिए खेत तैयार नहीं करती बल्कि स्वयं घृणा एवम् बग़ावत के बीज बोती है और मानव प्रकृति के अंग-अंग को विषैला कर देती है । नहीं, नहीं इस्लाम कदापि तलवार के बलपूर्वक दिलों पर क़ब्ज़ा

नहीं करता बल्कि स्वयं अपने अस्तिव में एक सम्पूर्ण आध्यात्मिक शक्ति है जो अपनी सच्चाई के बल पर प्रत्येक विद्रोही से विद्रोही सिर को झुकाने का सामर्थ्य रखती है । बताइए कि उमर(र) का शीष किस ने झुकाया था ? हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की तलवार ने या सूरत मरयम की कुछ आयतों की तिलावत ने ?

मौलाना को अपने इस हिंसात्मक दृष्टिकोण के समर्थन में कि इस्लाम अकेला नहीं बल्कि तलवार के सहारे से ही फैल सकता है, इस्लाम के इतिहास से यदि कोई दूर की गवाही मिल सकती है तो वह केवल यह है कि जब इस्लाम को मक्का की विजय के पश्चात् राजनैतिक सत्ता प्राप्त हो गई और जंगे-हुनैन ने आक्रमण कारियों की शेष शक्ति भी समाप्त कर दी तो इस्लाम बड़ी तीव्र गति से फैलने लगा । यह है वह अकेली इतिहासिक दलील जिसके खूंटे पर यह समस्त दृष्टिकोण नाच रहा है । आईए हम कुछ देर के लिए इस दलील को स्वीकार करके देखें कि इन बाद के आने वाले मुसलमानों के दिलों को तलवार ने किस सीमा तक पाक किया था । इतिहास हमें बताता है कि यह वही बाद के आने वाले मुसलमान थे जिन्होंने हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के देहांत के पश्चात् सबसे पहली सेवा इस्लाम की यह की कि इस्लामी हकूमत के विरुद्ध एक सामूहिक विद्रोह का झंडा उठा लिया और सेनाओं के रूप में इस्लाम के केन्द्र पर चढ़ दौड़े । मौलाना ! आईए और स्वयं अपनी आंखों से देख लीजिए कि यदि यहां वह लोग थे जिनके सिर तलवार ने झुकाए थे, और जिनके दिलों को ज़ंग से ख़ूब साफ़ करके इस्लाम के प्रकाश को स्वीकार करने के लिए तैयार किया था तो यह ज़ंग तो दौड़ा चला आता है और दिलों को फिर प्रत्येक ओर से अपनी लपेट में ले रहा है और देखिए कि वह कौन लोग थे जिन्होंने इस कठिन समय में इस्लाम के लिए दुश्मनों के तीरों के समक्ष अपनी छातियां प्रस्तुत कीं । क्या वही अबूबकर(र) और उमर(र) और उसमान(र) और अली(र) नहीं थे जिनके दिलों से अज्ञानता का जंग किसी तलवार ने नहीं छुड़ाया था ?

मैंने उपरोक्त तर्क केवल इस कल्पना को कुछ देर के लिए स्वीकार

करते हुए प्रस्तुत किया है कि यही वह लोग थे जिनके दिलों में इस्लाम केवल अपनी सच्चाईयों के बल से नहीं बल्कि तलवार की सहायता से दाख़िल हुआ था । तलवार ने पहले हल चलाया फिर इस्लाम ने बीज बो दिया[1], तब जाकर कहीं इस्लाम की फ़सल उत्पन्न हुई । अतः मैं मौलाना को इस फ़सल का फल दिखा रहा था जो उन के कहने के अनुसार तलवार के हल की पैदावार थी । अब मैं पाठकों के सामने वह सच्चाइयां प्रस्तुत करता हूँ जिनसे यह प्रमाणित होता है कि अरब के रहने वालों के इस्लाम स्वीकार करने में न पहले, न मध्य में, न बाद में कभी भी तलवार का हाथ नहीं रहा । सबसे पहले में उस गिरोह को लेता हूँ जो सबके पश्चात् मुसलमान हुए और जिन के विषय में यह विचार किया जा सकता है कि उन्होंने स्वंय तलवार के डर से या किसी के प्रभाव से इस्लाम को स्वीकार किया परन्तु इतिहासिक सच्चाईयां प्रस्तुत करने से पूर्व इस बारे में कुछ भूमिका स्वरूप कहना आवश्यक समझता हूँ ।

इस्लाम के इतिहास के निष्पक्ष और स्वतन्त्र अध्ययन के पश्चात् इन्सान इस परिणाम पर पहुँचे बिना नहीं रह सकता कि इस्लाम के फैलाने में तलवार कभी भी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि व सल्लम की सहायक नहीं हुई बल्कि बात इसके विपरीत थी । मुसलमानों की आत्मरक्षा की जंगें जो अत्यन्त मजबूरी की दशा में मानव जीवन की रक्षा हेतु लड़ी जा रही थीं, इस्लाम के शीघ्र फैलाव के मार्ग में वास्तव में रोक बन रही थीं और यह रुकावट कई प्रकार से उत्पन्न होती थी । उदाहरणत्या :-

1. इन लड़ाईयों को इस्लाम के विरुद्ध घृणा फैलाने का एक साधन बना लिया गया था और उपद्रवी लोग, काल्पनिक अत्याचारों को मुसलमानों की ओर सम्बन्धित करके अत्यन्त उत्तेजक कविताओं द्वारा अरब में क्रोध की ज्वाला धदका रहे थे । अतः कअब-बिन-अशरफ़ के सम्बन्ध में यह रिवायत (बात बताई जाती है) आती है कि यह अभागा

---

1. मौलाना मौदूदी इस्लाम के प्रचार के इस ढंग को अपनी पुस्तक अलजिहाद फ़िल इस्लाम के पृष्ठ 138-139 पर पेश फ़रमाते हैं ।

जंगे बदर के पश्चात् विशेष रूप से इस उद्देश्य के लिए मक्का पहुँचा था कि अपनी कविताओं द्वारा क़ुरैश की प्रतिशोध की ज्वाला को धधकाए। इसी प्रकार यही कअब-बिन-अशरफ़ दूसरे अरब क़बीलों में भी मुसलमानों के विरुद्ध विषैली बातें फैलाता रहा। इसके अतिरिक्त क़ुरैश की ओर से भी लगातार मुसलमानों को बदनाम करने का प्रयत्न किया जाता रहा और उन्हें نعوذ بالله (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) एक ख़ूनी लुटैरों के गिरोह के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा।

2. आक्रमण कारियों में से जो लोग भी मुसलमानों के हाथों मारे जाते थे उनके रिश्तेदार अरब की रीति के अनुसार प्रतिशोध की सौगंध खाते थे और सारा कुम्बा या क़बीला इन वधों का इस्लाम ही को दोशी ठहराता था और अनुचित रूप से इस्लाम उनकी घृणा का निशाना बन जाता था।

3. इन विपरीत परिस्थितियों में अरब की अधिकतर जनता तक इस्लाम का संदेश पहुँचाना और दिलों से भ्रान्तियों को दूर करना अत्यन्त दुर्लभ कार्य हो गया था जिसके परिणाम स्वरूप प्रचार एक बहुत ही तंग भाग तक सीमित हो कर रह गया था।

4. जिन लोगों तक इस्लाम का संदेश पहुँच सका था और वह इसकी सच्चाई के समर्थक भी बन चुके थे उन में से भी एक निर्बल वर्ग केवल इस विरोधी वातावरण से डर कर इसके प्रकटन से रुका हुआ था और इन लड़ाईयों का आतंक उनके दिलों पर छाया हुआ था।

5. व्यक्तिगत रूप से शत्रुता का भय न होने की दशा में भी इस्लाम में सम्मिलित होना एक विशेष साहस और मर्दांगी चाहता था क्योंकि इसमें सम्मिलित होने का अर्थ मुसलमानों के साथ आत्मरक्षा की जंगों में उनके साथ सम्मिलित होने के बराबर था और मुसलमानों की दुर्बलता के सम्मुख दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह था कि कोई जान बूझ कर आंखों देखते हुए मौत के मुख में पग रख दे।

6. आत्मरक्षा के प्रबन्धों में मुसलमानों का इतना समय नष्ट हो जाता था कि उनको प्रचार के कार्यों के लिए बहुत कम समय मिलता था।

यदि मेरा उपरोक्त दावा सही है तो इसका आवश्यक परिणाम यह निकलना चाहिए कि जैसे ही जंग अपने हथियार डाल दे, इस्लाम के फैलने की गति अत्यन्त तीव्र हो जाए और हम देखते हैं कि बिल्कुल इसी प्रकार ही हुआ और इस्लाम की अन्तिम विजय से भी सुलह के समय में इस्लाम के प्रचार की गति असाधारण रूप से तीव्र हो गई । यदि कोई व्यक्ति संदेह करने पर तुल ही जाए तो मक्का की विजय का दिन वह पहला दिन है जिसके पश्चात् यह संदेह किया जा सकता है कि तलवार द्वारा प्राप्त हुई विजय के परिणाम स्वरूप इस्लाम स्वीकार करने की ओर लोगों की रुचि बढ़ी, परन्तु सुलह हुदैबिया के समय पर तो यह संदेह नहीं किया जा सकता क्योंकि यह सुलह (मैत्री) प्रत्यक्ष रूप से दुर्बलता की एक दलील थी और शत्रु इसे अपनी सफ़लता का नाम देता था । अब देखिए कि नबुव्वत के दावे से लेकर सुलह हुदैबिया तक जो मुसीबतों और अशांति का युग था लगभग 19 वर्षों में जितने लोगों ने इस्लाम को स्वीकार किया, उससे कहीं अधिक संख्या में सुलह हुदैबिया के दो वर्षों में लोग मुसलमान हुए । यह तुलना आश्चर्यजनक है परन्तु इतिहास से प्रमाणित है कि ऐसा ही हुआ । अधिक से अधिक मुसलमान पुरुषों की संख्या जो सुलह हुदैबिया से पूर्व किसी जंग में सम्मिलित हुए वह लगभग 3000 व्यक्ति बनती है । यह बड़े से बड़े अनुमान के अनुसार इस्लामी सेना के उन योद्धाओं की संख्या है जिन्होंने जंगें अहज़ाब में भाग लिया । इसकी तुलना में मक्का की विजय के समय मुसलमान सेना की संख्या 10000 कुद्दूसियों (पवित्र लोगों) पर आधारित थी । इन अधिकांश 7000 में से बहुत ही कम थे जो जंगे एहज़ाब और सुलह हुदैबिया के मध्य में मुसलमान हुए । और विश्वसनीय रूप से अधिकांश ने सुलह हुदैबिया के दो वर्षीय शांति के समय में ही इस्लाम को स्वीकार किया अत: हज़रत अमर-बिन-आस(र) और हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद(र) सैफ़ुल्लाह[1] भी इसी समय के मुसलमानों में से हैं ।

यह तुलना साफ़ प्रमाणित करती है कि हिंसक जंगों का तो क्या

1 सैफ़ुल्लाह : यह हज़रत खालिद बिन वलीद का ख़िताब है इस का अर्थ है अल्लाह की तलवार ।

प्रश्न, स्वयं यह आत्मरक्षा हेतु जंगें भी इस्लाम के लिए अत्यन्त विनाशकारी सिद्ध हो रही थीं, कहां यह कि हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम इस उद्देश्य से किसी प्रकार की जंग या झगड़े का विचार भी दिल में लाते । इसके अतिरिक्त इस तुलना से यह बात भी स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाती है कि जब मक्का की विजय और फ़िर जंगे हुनैन के पश्चात् शांति का समय आया तो अरब वासीयों का एक भारी भीड़ के रूप में मुसलमान होना किसी विजय के प्रभावधीन न था, बल्कि सुलह हुदैबिया के समय की भांति मुसलमानों की शांति मय प्रचार के परिणाम स्वरूप था ।

अब रहा यह प्रश्न कि इन पश्चात् के मुसलमानों ने हज़रत अबूबकर(र) की हकूमत के विरुद्ध क्यों बग़ावत की ? तो इसका उत्तर बिल्कुल स्पष्ट है । वास्तव में उस समय के अधिकतर मुसलमान जो कि बदवी क़बीलों से सम्बन्ध रखते थे, उनको सीधे हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम से प्रशिक्षण प्राप्त करने का कोई अवसर न मिल सका था, बल्कि अधिकतर अभागे उनमें से ऐसे थे जिन्होंने हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के नूरानी (ज्योतिमय) चेहरे को एक नज़र देखा भी न था ।

उस समय में यात्राऐं इतनी कठिन हुआ करती थीं कि यह संभव नहीं था कि दूर दूर के क़बीलों के व्यक्ति एक-एक करके हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की सेवा में उपस्थित होते, इसी कारण अरब की रीति के अनुसार विभिन्न क़बीले या तो कोई प्रचारक मंडली अपने पास बुला लेते थे, अथवा अपने दूत हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की सेवा में भिजवा दिया करते थे, जो काफ़ी तर्क-वितर्क के पश्चात् किसी परिणाम तक पहुँचते थे और फिर प्रतिनि मण्डल का जो भी निर्णय होता था, समस्त जाति उसके पीछे चलती थी । यही कारण था कि उनमें से बहुत से नए मुसलमान ऐसे थे जो हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम से प्रशिक्षण प्राप्त करना तो अलग रहा, बड़े-बड़े सहाबा(र) से भी प्रशिक्षण प्राप्त न कर सके थे । इस पर और कठिनाई यह आन पड़ी कि वह सब सदउपदेशकों का मार्ग दर्शन करने

वाला और दीक्षा का सूर्य उन अभागों के इस्लाम स्वीकार करने के कुछ समय पश्चात् ही डूब गया और एक तुलनात्मक रूप से अरब के क्षितिज पर अंधकार छा गया । इतिहास के इन पन्नों में हमारे लिए एक गहरी शिक्षा है कि जब जातियां अपने समय के नबी का इन्कार करती हैं और बलपूर्वक उस ज्योति को बुझाने का प्रयत्न करती हैं तो इस संसार में एक अत्यन्त पीड़ा जनक सज़ा उनको यह मिलती है कि अधिकतर लोगों को उस समय ईमान (आस्था) नसीब होता है जब वह नबी उनसे जुदा होने को होता है अथवा उससे भी देर में, उस नबी की जुदाई के बहुत पश्चात्। अत: क्या ही अभागे हैं वह प्रेमी जो मिलन के समय में तो एक अत्यन्त प्रेम किए जाने वाले अस्तित्व से घृणा कर रहें हों परन्तु जब जुदाई का समय आ पहुँचे या वियोग की रातें सिर पर आन पड़ें तो उनके दिलों में प्रेम की ज्वाला धधक उठे।

आइऐ ! अब हम हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के नबूव्वत के दावे से लेकर आप(स) के विसाल (देहान्त) तक के इस्लामी इतिहास पर एक उत्सुक्तापूर्ण दृष्टि डाल कर देखें कि किसी समय में हो सकता है किसी और साधन से हिंसापूर्वक मुसलमान बनाने का कोई प्रमाण मिलता हो । उदाहरणत्या हो सकता है कि विजयों के पश्चात् भयभीत विरोधियों को बलपूर्वक इस्लाम स्वीकार करने का उपदेश दिया गया हो, अथवा उनकी जान बख़्शी स्वतन्त्रता के लिए मुसलमान होना शर्त स्वरूप रख दिया गया हो ।

हज़रत रसूले अकरम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के जीवन को मक्का की विजय तक तीन युगों में विभाजित किया जा सकता है । प्रथम वह अत्यन्त असहायता का युग जो नबुव्वत के दावे से लेकर हिजरत तक विस्तृत है और जिसको जनसाधारण की भाषा में मक्की युग कहा जाता है । दूसरे वह मदनी युग जो हिजरत के वर्ष से लेकर सुलह हुदैबिया तक फ़ैला हुआ है । यह युग भी वास्तव में एक अत्यन्त असहायक अवस्था का ही दौर है क्योंकि यद्यपि मुसलमानों को आत्मरक्षा की आज्ञा दे दी गई थी परन्तु वह अपने दुश्मन के मुक़ाबले पर न तो संख्या के लिहाज़ से और न जंगी औज़ारों व हथियारों के लिहाज़ से कोई

भी योग्यता न रखते थे । अरब में केवल मदीना ही एक ऐसी बस्ती थी जहां अधिकांश मुसलमानों की संख्या आबाद थी और उस एक बस्ती पर भी उनका पूर्णत्या क़ब्ज़ा न था बल्कि यहूदियों के तीन धनी क़बीले उसके एक बड़े भाग के स्वामी थे और ओस व ख़िज़रज के समस्त व्यक्ति भी मुसलमान न हुए थे, उनका उदाहरण ऐसा ही था जैसे एक पहलवान के मुक़ाबले पर एक दुर्बल बच्चे को अपनी आत्मरक्षा की आज्ञा दे दी जाए । वह पहलवान तो लोहे के वस्त्र पहने हो, उसके हाथ में नेज़ा हो और तलवार कमर पर लटकी हो और एक ऊंचे जंगी घोड़े पर सवार हो, परन्तु वह बच्चा नंगे पांव, अर्धनग्न, एक टूटी हुई तलवार लेकर उसके मुक़ाबले पर निकले । समस्त अरब की शक्ति तो मदीना में बसने वाले इन कुछ मुसलमानों के मुक़ाबले पर बहुत अधिक थी । केवल जंगे बदर ही में आक्रमणकारी शत्रुओं और मुसलमानों की आत्मा रक्षा हेतु इकट्ठी सेना की तुलना की जाए तो वह कुछ इसी प्रकार की तुलना होगी । माना कि आत्मरक्षा की आज्ञा मिल चुकी थी फिर भी मैं इस समय को अत्यन्त असहायता का समय ही कहूँगा ।

तीसरा दौर वह दौर है जो सुलह हुदैबिया से आरम्भ होकर मक्का की विजय तक फ़ैला हुआ है यह शांति व मैत्री का दौर था जिसमें मक्का के क़ाफ़िरों की ओर से मुसलमानों पर कोई आक्रमण नहीं किया गया, फ़िर भी यहूदियों और कुछ दूसरे क़बीलों के वचनबद्ध न रहने के परिणामस्वरूप कुछ युद्ध व जंगें हुईं ।

मक्की युग

प्रारम्भिक समय के तेरह वर्षीय अत्यन्त असहायता का समय है इस्लाम के घोर विरोधी भी यह दावा नहीं करते कि इस युग में इस्लाम की ओर से किसी भी उद्देश्य से तलवार उठाई गई हो । हां यह आवश्यक था कि इस्लाम के शत्रुओं का डर होने पर भी बहुत से सच्चाई ढूंढने वाले इस्लाम में सम्मिलित होते रहे । अत: मक्का में होने वाले समस्त मुसलमान जो बाद में मुहाजिरीन (शरणार्थी) कहलाए इस आरोप से बरी हैं कि उनके इस्लाम के स्वीकार करने में तलवार का कोई हाथ था ।

हिजरत से सुलह हुदैबिया तक

दूसरे दौर के सम्बन्ध में इस विचार से कि इस दौर में मुसलमानों ने आत्मरक्षा के लिए तलवार उठाई । शंका है कि कुछ द्वैषी प्रकृतियां यह कह सकें कि हो सकता है इस आत्मरक्षा की तलवार के भय से इस्लाम फ़ैला हो । परन्तु इस दौर के इस्लाम स्वीकार करने वालों पर यदि एक उचटती हुई दृष्टि भी डाली जाए तो यह संदेह इस प्रकार छिप जाता है जैसे सूर्य उदय होने पर रात का अन्धकार ।

इस दौर के वह मुसलमान जो मदीना के निवासी थे, अनसार कहलाते थे और यह लगभग सारे 'ओस' और 'ख़िज़रज' के क़बीलों से सम्बन्धित थे । इसके अतिरिक्त कुछ व्यक्तियों ने यहूदियों में से इस्लाम स्वीकार किया था, और कुछ वह मुसलमान थे जो मदीना के अतिरिक्त दूसरी बस्तियों के रहने वाले थे । मक्का में भी इस्लाम का विस्तार पूर्णत्या बंद न हो सका था और मक्का के क़ाफ़िरों के अत्यन्त अत्याचारों के होने पर भी इस्लाम को स्वीकार करने का क्रम जारी था ।

इस मदनी दौर के मुसलमानों की अधिकतर संख्या अनसार[1] पर आधारित थी और अनसार का बिना किसी बल व हिंसा के इस्लाम का स्वीकार करना भी एक ऐसी स्पष्ट और निखरी हुई वास्तविकता है कि मित्र तो मित्र, दुश्मन भी यह कह नहीं सकते कि अनसार को मुहाजरीन (प्रवासी) की तलवार ने मुसलमान बनाया था अथवा उनके इस्लाम स्वीकार करने में तलवार का अंश मात्र भी भाग है । हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने 'ओस' व 'ख़िज़रज' के साथ सिरे से कोई जंग ही नहीं लड़ी । अत: तलवार के बलपूर्वक मुसलमान बनाने का प्रश्न ही उत्पन्न न होता था । यहूदियों में से मुसलमान होने वालों की संख्या बहुत थोड़ी थी और उनमें से भी किसी पर शंका का स्थान नहीं कि वह तलवार के भय से मुसलमान हुआ बल्कि उनका मुसलमान होना ऐसे अतिविरोधी और भयंकर वातावरण में हुआ जबकि स्वयं मुसलमानों का भविष्य भी प्रत्यक्ष रूप में अत्यन्त भयंकर था । बाहर रहने वाले क़बीलों

1 मदीना के वह वासी जिन्होंने मक्का से हिजरत (प्रवास) करके आने वाले मुसलमानों की सहायता की ।

के नए मुसलमान भी जिनकी संख्या अनसार की तुलना में बहुत हो थोड़ी थी, हरगिज़ किसी तलवार के डर से मुसलमान नहीं हुए, बल्कि अत्यन्त भयंकर वातारण में इस्लाम स्वीकार किया ।

अब रहीं उस दौर की जंगें तो उनके परिणाम स्वरूप तलवार के डर से मुसलमान होने वालों की अधिक से अधिक संभव संख्या जंगी क़ैदियों की ही हो सकती है । इस बात की छान बीन के लिए आवश्यक है कि हम हिजरत से लेकर सुलह हुदैबिया तक के समस्त ग़ज़वात (ग़ज़वात- वह जंगें हैं जिनमें स्वयं हज़रत मुहम्मद(स) शरीक़ हुए) एवं सरिय्याह पर नज़र डालें तो इन युद्धों की कुल संख्या पच्चास है ।

ग़ज़वाह या सरिय्याह को कुछ लोग ग़ल्ती से जंग समझते हैं, परन्तु यह विचार अज्ञानता के फलस्वरूप पैदा होता है 'ग़ज़वाह' का अर्थ केवल ऐसी जंगें अभिप्राय हैं जिसमें रसूल अल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम स्वयं सम्मिलित हुए । चाहे लड़ाई हो, चोर डाकू का पीछा हो या देख भाल के लिए कोई पार्टी बाहिर जाए आदि । इस प्रकार 'सरिय्याह' का अर्थ भी अभियान ही है । अन्तर केवल यह है कि सरिय्याह में रसूल अल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम शामिल नहीं हुए । इसके अतिरिक्त प्रचार हेतु की गई यात्राओं को भी ग़ज़वाह और सरिय्याह में गिने जाते हैं और किसी सहाबी(र) की व्यक्तिगत अभियान भी सरिय्याह ही कहलाती है । अतः उस दौर में कुल पचास ग़ज़वात और सरिय्याह हुए, जिनमें से केवल तीन को जंग कहा जाएगा ।

''जंगे ऊहद, जंगे बदर, और जंगे अहज़ाब ।'' इन पचास में से 42 में कोई क़ैदी नहीं बना । जिन आठ में कैदी बनाए गए उन में से वर्णन योग्य संख्या जंगे बदर के कैदियों की है । कुल 72 कैदी थे जिनमें से दो पुराने दोषों की सज़ा स्वरूप क़त्ल किए गए और शेष सभी को फ़िदया (वह राशि जो स्वतंत्र होने के लिए विजयी सेना को दी जाती है) लेकर स्वतंत्र कर दिया गया । उन में से कुछ का फ़िदया यह था कि अनसार बच्चों को लिखना सिखा दें । जंगे ऊहद में कोई शत्रु कैद नहीं हुआ और न ही जंगे अहज़ाब में कोई क़ैद हुआ । ''ग़ज़वा-ए-बनी मुसतलक़ में सौ से ऊपर स्त्री पुरुष क़ैद हुए परन्तु सबको बिना किसी

प्रतिकार व शर्त के स्वतन्त्र कर दिया गया । इसके अतिरिक्त कुछ सरीयों में एक-एक दो-दो क़ैदी हाथ आए जो बिना प्रतिकार व शर्त के आज़ाद किए गए । यह सब सच्चाईयां वह हैं जो स्वयं मौलाना साहिब भी स्वीकार करते हैं ।

परन्तु मैं कहता हूँ कि यदि यह मान भी लिया जाए कि यह सब जंगी क़ैदी तलवार के बल पर मुसलमान बना लिए गए थे तो भी उनकी संख्या इतनी थोड़ी और वर्णन करने योग्य ही नहीं है कि वह मुहाजरीन(र) और अनसार की महान संख्या की तुलना में कुछ भी नहीं और इसको आधार बना कर वह परिणाम कदापि नहीं निकलता जो मौलाना मौदूदी साहिब ने निकाला है । यह उनको शोभा नहीं देता । ऐसी बातें तो उन संकीर्ण विरोधियों की आदत है जो अपने हृदय के द्वेष के कारण विवश होकर हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम पर आरोप लगाने के लिए तिनकों के सहारे ढूंढा करते हैं ।

तीसरा युग - सुलह हुदैबिया से मक्का की विजय तक

इस युग में होने वाले ग़ज़वात एवं सरिय्याह की संख्या बाईस है । इनमें से केवल तीन ऐसे थे जिनमें जंगी क़ैदी हाथ आए । एक सरिय्याह हसमी (जमादी-उल-आख़िर[1] 7 हिजरी -अरबी महीना-) है जिसमें हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा ने हुनैद डाकू और उसके साथी लुटैरों पर चढ़ाई की और सौ लुटैरों को क़ैदी बनाया, परन्तु प्रायश्चित का वादा लेकर छोड़ दिया - इसके अतिरिक्त सरिय्याह बनू क्लिाब और सरिय्याह बशीर-बिन-सअद अनसारी में कुछ गिनती के क़ैदी हाथ आए । परन्तु उनके हालात का पता नहीं चला ।

अत: इस बात में कोई भी संदेह नहीं कि हिजरत से लेकर मक्का के विजय होने तक एक भी क़ैदी को तलवार के बलपूर्वक मुसलमान बनाने का वर्णन नहीं मिलता और न ही उनके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि तलवार ने तो केवल ज़ंग साफ़ किया था, इसके पश्चात् इस्लाम का रंग उनके दिलों पर चढ़ाया गया क्योंकि वास्तविकता यह है कि उनको फिर उसी ज़ंग भरी शिरक से दूषित संसार में वापिस लौटने की

1 जमादीउल आख़िर : छटा अरबी महीना

आज्ञा दे दी गई । फिर क्या मौलाना मौदूदी बता सकते हैं कि आख़िर वह कौन लोग थे जिनको अपनी समस्त शिष्टाचार और आध्यात्मिक शक्तियों की असफ़लता के पश्चात् रसूल अल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने نعوذ بالله (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) तलवार की चमक दिखा कर मुसलमान बनाया था ? वह कब पैदा हुए ? कहां से आए थे और कहां चले गए ? क्या उनको धरती निगल गई या आकाश खा गया ? और यदि उनका अस्तित्व केवल मौलाना की कल्पना की पैदावार है और वास्तविक रूप से उनकी ही कल्पना की पैदावार है तो फिर क्यों हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम (मानवजाति के सरदार) पर ऐसे घोर और निराधार दोषारोपण से नहीं चकते । यदि हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम धर्म में हिंसा के समर्थक थे तो क्यों ख़ंज़र की नोक पर इन असहाय क़ैदियों को मुसलमान न बना लिया ?

बनू क़ैनक़ा-बनू नज़ीर एवं बनू क़ुरैज़ा

आख़िर पर लिखे गए दोनों युगों के क़ैदियों की संख्या में यहूदी क़बीलों बनू क़ैनक़ा, बनू नज़ीर एवं बनू क़ुरैज़ा के क़ैदियों को सम्मिलित नहीं किया गया जिनके साथ विभिन्न समयों में मुसलमानों को मुक़ाबला करना पड़ा । उनका संक्षिप्त वर्णन अब अलग किया जा रहा है ।

इस लेख के इस भाग का सम्बन्ध केवल इस आरोप से है कि نعوذ بالله (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) हज़रत मुहम्मद सल्लाहो अलैहि वसल्लम के इस्लाम की विजय शिष्टाचारिक शक्तियों की बजाए तलवार के बल पर हुई थीं और हम इस समय केवल इस बात की छान-बीन कर रहे हैं कि इस समस्त जंगी दौर में कुल कितने क़ैदी हाथ आए थे जिनको बलपूर्वक मुसलमान बना लिया था या जिनके इस्लाम स्वीकार करने पर संदेह पड़ सकता है ।

अब तक जो हम ने तलाश की है इससे तो मामला बिल्कुल उलट दिखाई दे रहा है । इसके स्थान पर कि हम क़ैदियों के गिरोह के गिरोह देखें जो मुसलमानों की तलवारों के नीचे कांपते हुए

لَآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ

(अल्लाह के अतिरिक्त कोई पूजनीय नहीं) पढ़ रहे हों, दिखाई यह देता है कि मुसलमानों के तलवारों के कारण नहीं बल्कि शत्रुओं की तलवारों का भय होने पर भी अरब निवासी लगातार मुसलमान होते चले जा रहे हैं और हम देखते यह हैं कि इतना होने पर भी निर्दोष मुसलमान जो मदीना की एक छोटी सी बसती में क़ैद हैं जो अन्दर से भी सुरक्षित नहीं, क्योंकि अन्दर बैठे हुए यहूदी जब अवसर मिलता है शरारत करते हैं और बाहिर से भी सुरक्षित नहीं, क्योंकि समस्त अरब उनका शत्रु हो रहा है, परन्तु फ़िर भी कुछ जां बाज़ ऐसे हैं जो मुसलमान हो हो कर इस जमाअत में सम्मिलित होते चले जाते हैं । यदि विरोध को एक आग की भांति मान लिया जाए तो मदीना में मुसलमानों की यह दशा थी कि एक धदकती हुई आग के बीच मानो एक बिन्दु की भांति थे, जिसे जला कर भस्म कर देने के लिए उस आग की भड़की हुई लपटें बार-बार ऊपर उठतीं और उस पर लपकती थीं । एक क्रोधित और प्रज्वलित अरब के मध्य मदीना के दुर्बल मुसलमान अल्पसंख्यकों का वास्तव में यही उदाहरण था।यह मैं उस दौर का वर्णन कर रहा हूँ जिसको इस्लाम के शत्रु हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की शक्ति और तलवार का दौर कहते हैं अत: इस दौर में जो लोग मुसलमान हो कर मदीना आ जाते थे वह तो जलाने वालों को छोड़ कर जलने वालों में सम्मिलित होने के लिए आया करते थे । अधिक संख्या वालों को छोड़ कर अल्पसंख्यकों की ओर भागते थे और जो लोग मदीना की ओर हिजरत नहीं कर सकते थे और विरोधी वातावरण ही में रहने पर विवश थे, उनका उदाहरण भी कुछ इसी प्रकार का था जैसे जंगली भेड़ियों के रेवड़ में कोई भेड़िया अपनी इच्छा व मर्ज़ी से भेड़ बन जाए । उस बेचारे के सम्बन्ध में यह कहना कि एक छोटे से भेड़ों के रेवड़ ने जो एक भेड़ियों से भरे हुए जंगल में घिरा हुआ था उसे डरा-धमका कर और विवश करके भेड़ बनाया है, इससे अधिक व्यंग्यात्मक दावा और क्या हो सकता है ?

यहूदी क़बीलों और उनके ''क़ैदियों'' का वर्णन मैं इस कारण अलग

कर रहा हूँ कि उस आन्तरिक ख़तरे की ओर भी पाठकों को ध्यान दिलाऊं जो हर समय मदीना में उन पर सवार था । यह तीनों क़बीले ऐसे वचन तोड़ने वाले, कमीने प्रकृति के और धोखबाज़ थे कि शांति में भी मुसलमानों को चैन नहीं लेने देते थे । और जंग के समय में तो उनकी शरारतें निसंदेह ग़द्दारी में बदल जाती थीं । अतः मुसलमानों से मित्रता के समझौते होने पर भी उस समय जबकि मुट्ठी भर मुसलमान जंग-ए-बदर में आक्रमणकारियों से जूझ रहे थे, क़बीला बनू क़ैनक़ा ने मदीना में बलवा किया और फ़साद मचाया और बिल्कुल झूठी और डरा देने वाली ख़बरे फैलाईं । आज भी इस दोष की सज़ा हर कृपालु से कृपालु सरकार के निकट मृत्यूदण्ड के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकती, विशेषकर उस समझौते को समक्ष रखते हुए जो हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने मदनी दौर के पहले वर्ष ही में यहूदियों को मिलाकर मदीना की समस्त जातियों से किया था । यह समस्त ग़द्दार मृत्युदण्ड के पात्र थे । (''सीरत-इब्ने हशाम'' भाग न. एक प्रकाशित बूलाक प्रैस मिस्र) के पृष्ठ 178 पर यह समझौता संकलित है । इस समझौते की शर्तों में से तीन यह थीं :-

1. जंग के दिनों में यहूदी मुसलमानों के कामों में शामिल होंगे ।

2. कोई व्यक्ति अपने समझौते के विरुद्ध विरोधी कार्यवाही नहीं करेगा ।

3. मदीना के अन्दर रक्तपात करना इस समझौता करने वाली समस्त जातियों पर हराम (अवैध) होगा ।

परन्तु हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने कृपा करते हुए केवल देश निकाले को सज़ा को पर्याप्त समझा मेरा ईमान (आस्था) है कि यदि यह भय न होता कि बाद के आक्रमण कारियों के साथ मिलकर यह समझौता तोड़ने वाले यहूदी मुसलमानों को इससे भी अधिक हानि पहुँचाएँगे तो हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम उनको यह सज़ा भी न देते, और बिल्कुल मुआफ़ फ़र्मा देते अतः वास्तविकता यह है कि इस क़बीले को विजय प्राप्त करके भी तलवार के ज़ोर से मुसलमान नहीं बनाया गया ।

दूसरा यहूदी क़बीला जिसे बग़ावत का दोष सिद्ध हो जाने पर और

इस दोष की सज़ा स्वरूप कि उन्होंने हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम को विष देकर मारने का प्रयत्न किया, देश निकाला दिया, क़बीला बनू नज़ीर था । क्योंकि मुसलमानों के विरुद्ध शरारतों और वचनबद्ध न रहने में सारा क़बीला सम्मिलित था और हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम को मारने का प्रयत्न एक संगठित साज़िश का परिणाम था, इसी लिए वास्तव में यह द्वेषी भी संधि के भंग करने के कारण और हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम को क़त्ल करने के प्रयत्नों के दोष में न्याय और स्वयं बाईबल के क़ानून के अनुसार भी जो यहूदियों का क़ानून था, अपने जीवन के अधिकार से वंचित हो चुके थे परन्तु उनके साथ भी अत्यन्त नम्रता का व्यवहार किया गया और केवल देश निकाला देने को पर्याप्त समझा गया और यह बात विश्वसनीय रूप से प्रमाणित है कि वह तलवार के बल पर मुसलमान नहीं बनाए गए ।

तीसरा अभागा क़बीला बनू क़ुरैज़ा है । इस क़बीले की ग़द्दारी शेष सभी क़बीलों से अधिक घोर थी क्योंकि उस समय जब जंग-ए-अहज़ाब के अवसर पर दिल हिला देने वाले आंतक ने मुसलमानों को चारों ओर से घेर रखा था और मदीना में क़ैद अल्पसंख्यक मुसलमानों और काफ़िरों की महान आक्रमणकारी सेना के मध्य केवल एक तंग ख़ंदक (खाई) रोक स्वरूप थी, उन्होंने अत्यन्त नीचता दिखाते हुए भयंकर रूप से समझौता भंग किया और शत्रुओं के साथ गुप्त साज़िशें करने लगे ।

यदि कोई व्यक्ति आज इस ख़तरे की कल्पना करना चाहे तो उसका केवल एक ही साधन है कि क़ुर्आन-ए-करीम की उन आयतों का अध्ययन करे जिनमें ख़ुदा तआला स्वयं अपने शब्दों में इसका चित्रण करता है :-

اِذْ جَآءُوْكُمْ مِّنْ فَوْقِكُمْ وَمِنْ اَسْفَلَ مِنْكُمْ وَاِذْ زَاغَتِ الْاَبْصَارُ وَ بَلَغَتِ الْقُلُوْبُ الْحَنَاجِرَ وَتَظُنُّوْنَ بِاللّٰهِ الظُّنُوْنَا ۝ هُنَالِكَ ابْتُلِيَ الْمُؤْمِنُوْنَ وَزُلْزِلُوْا زِلْزَالًا شَدِيْدًا ۝ (الاحزاب:۱۱:۱۲)

(सूरत अलअहज़ाब : 11-12)

अर्थात्:- "जब वह (दुश्मन) तुम्हारे ऊपर से भी

(आक्रमण करते हुए) आए और नीचे से भी (अर्थात् ऊंचाई की ओर से भी और तराई की ओर से भी, या दूसरे शब्दों में जब तुम्हारी नजात (मुक्ति) के सभी द्वार बंद हो गए । धरती भी तंग हो गई और आकाश भी) और जब आंखें फिर गईं और दिल (भय के कारण) गलों तक पहुँच गए, और तुम ख़ुदा के सम्बन्ध में भांति-भांति के कुविचार की भ्रान्तियों में पड़ गए । यह था वह स्थान और वह समय जबकि मोमिनों की परीक्षा ली गई और सख़्त भूकम्प (जैसे) झटकों में डाले गए ।

अर्थात् जिस प्रकार भयंकर भूकम्पों के झटकों के समय भवनों की मज़बूती का परीक्षण किया जाता है और उन भवनों के अतिरिक्त जिनकी दीवारों में सीसा पिघलाया गया हो या लोहे के बंधनों से मज़बूत किया गया हो और वह गहरी नीवों पर मज़बूत चट्टानों की भांति स्थापित हों शेष सभी इमारतें उन झटकों का शिकार हो कर धरती में लुप्त हो जाती हैं । इसी प्रकार मोमिनीन की इस इमारत के लिए एक दिल हिला देने वाली परीक्षा का दिन था । यह वह समय था कि ख़ुदा तआला मदीना वासियों को सम्बोधित करते हुए फ़र्माता है :-

"तुम (इस भयंकर ख़तरे के देखकर) अल्लाह तआला पर भांति-भांति के भ्रम करने लग गए थे ।"

अत: एक ओर तो क़ुर्आनी ब्यौरे के अनुसार बाहरी ख़तरा अत्यन्त घोर था, दूसरी ओर आन्त्रिक ख़तरे की यह दशा थी कि मुनाफ़िक़ (मिथ्याचारी) खुले रूप में मोमिनों के साहस को दुर्बल करने में व्यस्त थे। इसी आन्त्रिक ख़तरे का वर्णन करते हुए अल्लाह तआला अगली आयत में फ़र्माता है :-

وَاِذْ يَقُوْلُ الْمُنٰفِقُوْنَ وَالَّذِيْنَ فِيْ قُلُوْبِهِمْ مَّرَضٌ مَّا وَعَدَنَا اللّٰهُ وَرَسُوْلُهٗٓ اِلَّا غُرُوْرًا ○ وَاِذْ قَالَتْ طَّآئِفَةٌ مِّنْهُمْ يٰٓاَهْلَ يَثْرِبَ لَا مُقَامَ لَكُمْ فَارْجِعُوْا... الآية

(سورۃ الاحزاب:۱۳:۱۴)

(सूरत अलऐहज़ाब 13-14)

अर्थात्:- और जब मुनाफ़िक (बहु मुखी-ढोंगी) और दिलों के बीमार यह कह रहे थे कि ख़ुदा और उसके रसूल सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने हमें धोखा के सिवा और कोई वचन नहीं दिया और जब उनमें से एक गिरोह यह कहता था कि यसरब निवासियो ! (भागने का तो प्रश्न क्या) तुम्हारे लिए ठहरने तक का कोई स्थान नहीं, इसलिए (अपने पहले धर्म) की ओर मुड़ जाओ ।

अत: उन भयंकर मुसीबतों के समय जबकि मुसलमानों को ख़तरों ने ऊपर से भी घेर लिया था और नीचे से भी, अन्दर से भी और बाहिर से भी । बनू क़ुरैज़ा जिन को समझौते के अनुसार मुसलमानों का साथ देना चाहिए था, उनकी कमीनगी और ग़द्दारी की यह दशा थी कि आक्रमणकारियों के साथ मुसलमानों के विरुद्ध, समझौते करने लगे । अत: इस ग़द्दारी के परिणाम स्वरूप जंगे अहज़ाब के पश्चात् जब मुसलमानों ने उनपर विजय पाई और दंड निर्धारित करने का समय आया तो उन अभागों ने अपनी क़िसमत का निर्णय رَحْمَةً لِّلْعَالَمِيْنَ (अर्थात् समस्त ब्राह्मांड के लिए दया करने वाला) के हाथ में छोड़ने के स्थान पर हज़रत सअद बिन मुआज़(र) के हाथ में दे दिया, जिनके आदेश से सारे पुरुषों का वध कर दिया गया । यहां यह प्रश्न बहस के अन्तर्गत है कि क्या उनको भी तलवार के बल पर मुसलमान बनाया गया ? नहीं ! कदापि नहीं ! फिर क्या मैं मौलाना से यह पूछने का हक़ नहीं रखता हूँ कि अन्तत: वह कौन लोग थे जो इस्लाम के तलवार के प्रभाव से मुसलमान हुए ?

मुझे याद है कि एक बार इतिहास के पाठ के समय यूनीवर्सिटी ऑफ़ लन्दन के इतिहास के एक कट्टरवादी प्रोफ़ैसर ने इसी घटना का वर्णन करते हुए हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम पर हिंसा का आरोप लगाया । मैं और मेरे एक मित्र मीर महमूद अहमद साहिब नासिर इसे सहन न कर सके और उत्तर देने के लिए उठ खड़े हुए । इस पर उस प्रौफ़ेसर ने कहा कि यहां बहस का समय नहीं तुम को जो कुछ कहना हो मेरे कमरे में आकर कहना । परन्तु हमने उसे यह उत्तर दिया कि यह

किस तरह हो सकता है कि हमारे आक़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम पर आक्रमण तुम सब के सामने करो और उत्तर हम एकांत में दें ? अतः जब हमने इस विषय में अपने दृष्टिकोण की व्याख्या की तो एक यहूदी विद्यार्थी उठ खड़ा हुआ और उसने यह घोषणा की कि "यद्यपि मैं यहूदी हूँ और सबसे अधिक मुझे इस बात पर क्रोधित होने चाहिए था, परन्तु बहस सुनने के पश्चात् मैं इस बात की गवाही देता हूँ कि मुहम्मद (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) पर इस घटना से कदापि कोई लांछन नहीं लगता क्योंकि प्रथम तो यह निर्णय उनका नहीं था दूसरे सअद बिन मुआज़(र) का निर्णय भी मेरे निकट सही था और वह ग़द्दार इसी योग्य थे कि उनका वध किया जाता ।"

आज तक उस सज्जन यहूदी के शब्द मेरे कानों में गूँज रहे हैं और मैं मरने तक उसका आभारी रहूँगा और प्रायः दिल से उसके लिए दुआ निकलती रहेगी कि उसने न्याय को हाथ से न छोड़ा और असाधारण कुलीनता और साहस का प्रकटन करते हुए मेरे प्रिय आक़ा(स) को निर्दोष बताया । परन्तु जब मेरी दृष्टि उन लोगों की तरफ़ वापिस आती है जिनके निकट इस्लाम के संस्थापक के एक हाथ में तलवार थी और दूसरे में क़ुर्आन था तो सीने में दिल ख़ून होने लगता है ।

मक्का की विजय

सुलह हुदैबिया तक का दौर समाप्त हुआ और मक्का की विजय का दिन आ गया, जो वास्तव में हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के व्यक्तित्व से प्रत्येक प्रकार की हिंसा के आरोप को दूर करने का दिन था । उस दिन हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने मक्का के काफ़िरों पर एक भव्य विजय प्राप्त की, परन्तु किसी एक व्यक्ति को भी तलवार के बलपूर्वक मुसलमान न बनाया । अतः मैं उसी दिन के माध्यम से आरोप लगाने वालों से पूछता हूँ कि जब वह नबियों का सरदार (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) दस हज़ार पवित्र लोगों के साथ फ़ारान की चोटियों से प्रकट हुआ और मक्के को उसके वैभव और तेज ने ढांप लिया तो वह हिंसा की तलवार क्यों न्याम में चली गई । क्यों मक्का की विजय के दिन जब मक्का के मुशरिकों की गर्दनें उस रसूल सल्लल्लाहो

अलैहि वसल्लम के हाथ में दी गई । जब तलवारों की छांव तले अराजकतावादियों के सिर झुकाने का समय आया और ख़ंजर की पैनी धार पर ईमान को हृदयों में उतारने की पवित्र घड़ी आ पहुँची, वह घड़ी जबकि विजयी मुसलमानों के भय से अरब सरदारों के शरीर, और सीनों में दिल कांप रहे थे । जब मक्का की बस्ती एक धड़कता हुआ दिल बन गई थी तो क्यों उन विजयों के सरदार ने तलवार के बल पर उनको मुसलमान नहीं बना लिया ? यदि ऐसा नहीं किया और विश्वसनीय रूप से ऐसा नहीं किया तो फिर आश्चर्य है कि किस दिल के साथ यह लोग उस सब प्रेमियों के प्रेमी और उस दिलों को फ़तह करने वाले के सम्बन्ध में यह दावा करते हैं कि उसकी हर प्रकार की आकर्षण शक्ति की असफ़लता के पश्चात् तलवार की शक्ति प्रभावकारी प्रमाणित हुई । मौलाना के दिल की दशा मैं नहीं जानता कि यह लिखते हुए उसपर क्या बीती या क्या बीत सकती थी परन्तु ऐ काश ! कि उनका क़ल्म फ़ट जाता और स्याही ख़ून हो जाती ।

मक्का के विजय का दिन तो वह दिन है कि जो सदैव के लिए हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के पवित्र अस्तित्व से हिंसा व अत्याचार के आरोप को नकारता रहेगा । उस दिन की गवाही एक ऐसी भव्य और घोषणात्मक गवाही है कि कितनी ही सदियां बीत गईं परन्तु आज भी इतिहासकारों के कान उस को सुनते और उनके दिल उस पर ईमान लाते हैं । यह गवाही तो ईसाईयों ने भी सुनी और हिन्दुओं ने भी उसे स्वीकार किया । फिर आश्चर्य है कि मौलाना के कान इस असाधारण दिन (अर्थात मक्का की विजय के दिन) की आवाज़ सुनने से क्यों वंचित रह गए ? उसी दिन की गवाही का वर्णन करते हुए एक ईसाई मुस्तशरिक़ (एश्याई देशों के ज्ञान के विशेषग्य) मिस्टर स्टैन्ले लेन पोल लिखते हैं :-

"अब समय था कि पैग़म्बर (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम-लेखक) ख़ूंख़ार स्वभाव का प्रकटन करते । आप के पुरातन विरोधी आपके पैरों में आ पड़े हैं । क्या आप इस समय अपने क्रूरतापूर्ण ढंग से उनको रौंद डालेंगे ? अत्यन्त यातनाएँ देंगे या उनसे प्रतिशोध लेगें ?

यह समय उस व्यक्ति के अपने वास्तविक रूप में प्रकट होने का है। इस समय हम ऐसे अत्यचारों के बारे में सुनने की आशा करते हैं, जिन के सुनने से रौंगटे खड़े हों, और जिनका ध्यान करके यदि हम पहले से घृणा व नफ़रत का शोर मचाऐं तो उचित है ।

परन्तु यह क्या घटित हुआ है ?— क्या बाज़ारों में कोई क़त्ल-ख़ून नहीं हुए ।— हज़ारों वध किए जाने वालों की लाशें कहां है ? घटनाऐं हिंसक और निर्दयी होती हैं (किसी से पक्षपात नहीं करतीं) और यह एक स्वातविक बात है जिस दिन हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम – लेखक) को अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त हुई वही दिन आपको अपनी आत्मा पर सबसे अधिक भव्य विजय प्राप्त करने का भी दिन था । क़ुरैश ने वर्षों तक जो कुछ दुःख व यातनाएं दी थीं और निर्दयतापूर्ण अपमान व तिरस्कार की मुसीबत आप पर डाली थी, आपने खुले हृदय से उन समस्त बातों को क्षमा करते हुए समस्त मक्का निवासियों को एक आम मुआफ़ी नामा (क्षमा पत्र) दे दिया ।'' (इन्तिख़ाबे क़ुर्आन मुकद्दमा पृ. 67)

अथवा हो सकता है हमारे कुछ विद्वानों के दिल की आवाज़ यह कहे कि मक्का के समस्त निवासियों को एक आम क्षमा-पत्र दे दिया और मक्का निवासियों को बल-पूर्वक मुसलमान बनाने का एक महान अवसर स्वयं अपने हाथों से खो दिया—

परन्तु घटनाएं हिंसक और निर्दयी होती हैं और किसी का पक्ष नहीं लेतीं। हां यदि घटनाओं से आंखें फ़ेर ली जाएं तो.....?

और वास्तविक्ताओं से आंखें फेरी जा रही हैं, हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की बिल्कुल आत्मरक्षा हेतु जंगों को हिंसक और अत्याचारों की जंगें समझा जा रहा है और हद यह है कि यह निराधार आरोप स्पष्ट इतिहासिक प्रमाणों के होने पर भी लगाया जाता है ।

मक्का की विजय से लेकर नबी(स) की मृत्यु तक

संभव है कि कोई यहां तक पहुँच कर इस भ्रांति में पड़ जाए कि

बलपूर्वक मुसलमान कहीं मक्का की विजय उपरांत न बनाए गए हों.....
परन्तु मक्का की विजय के पश्चात् की जंगों पर एक दृष्टि डालने से ही इस भ्रम की वास्तविकता प्रकट हो जाती है जो ग़ालिब की इन पंक्तियों के अनुसार है कि :-

थी ख़बर गरम कि ग़ालिब के उड़ेंगें पुरज़े,
देखने हम भी गए थे, पै तमाशा न हुआ ।

अत: मक्का की विजय के पश्चात् के ग़ज़वात व सराया की संख्या इस प्रकार हैं ।

मक्का विजय के पश्चात् ऐसा सराया जिनमें न कोई लड़ाई हुई, न कोई क़ैदी हाथ आया, न कोई धन सम्पत्ति प्राप्त हुई 3 । ऐसे ग़ज़वात या सराया जिनमें जंगी क़ैदी हाथ आए 4 ।

जंगी क़ैदियों की कुल संख्या 6000 + 62 + बनू तै के क़ैदी + 1

इस युग में क़ैदियों की संख्या पिछले सभी दौरों से असाधारणत्या तौर पर अधिक है जिसका कारण यह है कि केवल एक जंगें हुनैन ही में 6000 की संख्या में दुश्मन क़ैद होकर आए । आइए हम देखें कि इन क़ैदियों से رَحْمَةً لِّلْعَالَمِيْن (समस्त ब्राह्मांड के लिए दया करने वाला) ने क्या व्यवहार किया । क्या सब का वध कर दिया गया था ? या खंजर की नोक पर मुसलमान बना लिए गए ? नहीं ! एक भी नहीं ! बल्कि बिना किसी भेद-भाव एवं शर्त के सारे के सारे रिहा कर दिए गए । जंगे हुनैन के 6000 क़ैदियों को رَحْمَةً لِّلْعَالَمِيْن (समस्त ब्राह्मांड के लिए दया रखने वाला) न केवल बिना किसी शर्त के मुक्त फ़र्मा दिया, बल्कि उनमें से कुछ को सम्मानजनक वस्त्र और धन, सम्पत्ति से भी सुशोभित किया । दयालुता व कृपालुता की हद यह है कि उनमें से कुछ कैदियों का फ़िदया (मुक्ति कर) भी अपनी जेब से अदा फ़र्माया । इसी प्रकार की दया व कृपा का व्यवहार बनी तेय के कैदियों से किया और हातिम की बेटी को तो असाधारण सम्मान के साथ विदा फ़र्माया ।

इसके अतिरिक्त इस दौर में सरिय्या ''औयैनह बिन हुसैन'' में क़बीला बनू तमीम के 62 क़ैदी मदीना लाए गए, परन्तु इस क़बीला के सरदार हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की सेवा में उपस्थित

हुए और दया की प्रार्थना की, जिसपर उस साक्षात दया ने उन सब को आज़ाद कर दिया ।

हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने प्राय: जो व्यवहार जंगी क़ैदियों से किया वह अत्यन्त दयालुता पूर्ण तथा उदारतापूर्ण था । अत्याचारी तो अत्याचार के बहाने ढूँढा करता है, परन्तु आप दया व कृपा का बहाना ढूंढते दिखाई पड़ते हैं । बनू हवाज़िन के क़ैदियों को क्षमा करने की घटना भी अद्‌भुत है और इसी एक घटना ही से पराजित लोगों के बारे में आपकी भावनाओं और सोचने की शैली के बारे में पूर्णत्या अनुमान हो जाता है । इन क़ैदियों के बारे में दया की प्रार्थना के उद्देश्य से बनू हवाज़िन का एक दूत आप(स) की सेवा में उपस्थित हुआ और हज़रत दाई हलीमा को माध्यम बना कर जो इसी क़बीला की थीं । आप से क्षमा याचना की । उस समय आपने उन से यह नहीं पूछा कि अब पराजित होने के पश्चात् तुमको अपने क़बीला की वह दाई याद आ गई जिसने मुझे दूध पिलाया था, परन्तु जब तुम मक्का पर आक्रमण की तैयारी कर रहे थे या जब जंगें हुनैन की घाटी में मुझ पर और मेरे कुछ घेरे में आए हुए साथियों पर तीरों की वर्षा कर रहे थे तो उससमय क्या तुमको याद नहीं आया कि यह तो वही अबोध बालक है, जिसका हमारे क़बीले में पालन पोषण हुआ था ? नहीं ! आपने ऐसा कोई प्रश्न नहीं किया बल्कि फ़र्माया कि जितने क़ैदी मेरे और बनू अबदल-मुत्तलिब के हिस्से के हैं उनको ले जाओ, वह आज़ाद हैं । यह कुछ वाक्य आप(स) के अद्बितिय शिष्टाचार गहरे विवेक को विस्तारपूर्वक प्रकाशित करते हैं। प्रथम तो एक दूर की रज़ाई (दूध पिलाने वाली खिलाई) मां की याद में उसके क़बीले के बाद में आने वाले अत्याचारियों को जो अपनी ओर से तो आप(स) का वध करने का पूरा प्रयत्न कर चुके थे, इस प्रकार क्षमा फ़र्मा देना एक अत्यन्त प्रिय और दयालुता पूर्ण कार्य है । दूसरे आपका यह फ़र्मान कि केवल बनू अब्दुल मुत्तलिब के हिस्से के कैदी आज़ाद हैं आप(स) के विवेक और शिष्टाचार के कुछ और पहलुओं पर भी प्रकाश डालता है । प्रतीत होता है कि यद्यपि हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का दिल तो यही चाहता था कि सब को क्षमा करके आज़ाद

कर दूँ परन्तु क्योंकि हज़रत हलीमा के दूध पिलाने का सम्बन्ध केवल आप(स) के व्यक्तिगत से अथवा अधिक से अधिक इस माध्यम से आप(स) के खानदान के साथ हो सकता था इसी कारण आप(स) ने यह पसन्द न फ़र्माया कि एक व्यक्तिगत सम्बन्ध के आधार पर शेष मुसलमानों को भी इस उपकार के लिए बाध्य कर दूँ । इससे प्रतीत होता है कि यद्यपि आप(स) की दया व कृपा करने का गुण समस्त मानवों में अपने विस्तार और गहराई के हिसाब से अद्वित्तिय था, परन्तु असंतुलित न था । आप(स) एक ऐसे दयालू व्यक्ति व कृपा के जोश में दूसरों के अधिकार भी लोगों में बांट देता है, अतः आपने ऐसा न किया बल्कि वह ढंग अपनाया जो दया व कृपा के आकाश पर प्रायः चांद, सितारों की भांति चमकता रहेगा । आप(स) जानते थे कि यदि इस बारे में लोगों से परामर्श लेने के स्थान पर मैंने क़ैदियों को आज़ाद करने का उदाहरण प्रस्तुत कर दिया तो किसी मुसलमान घर में कोई क़ैदी न रहेगा । अतः आप(स) ने ऐसा ही किया और जब आपके इस आदेश का समाचार आपके प्रेमियों के कानों तक पहुँचा कि ''मेरे और बनू अब्दुल मुत्त लिब के हिस्से के सब क़ैदी आज़ाद हैं'' तो उन्होंने सहसा यह याचना की कि हे हमारे प्रिय !

مَا كَانَ لَنَا فَهُوَ لِرَسُوْلِ اللّٰهِ

''जो कुछ हमारा है वह तो सब अल्लाह के रसूल ही का है ।'' और यह कहते हुए उन क़ैदियों को आज़ाद करने में वह एक दूसरे से आगे बढ़ने लगे, और वातावरण जंगी नारों और ज़ख़्मियों की चीत्कार के स्थान पर आज़ादी के तरानों से गूंज उठा ।

हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम अत्यन्त दयालु व कृपालु थे । बनु तै के क़ैदियों की आज़ादी भी आप के सदगुण के एक विशेष पहलू पर प्रकाश डालती है । इन क़ैदियों को केवल इस कारण बिना किसी कर के आज़ाद कर दिया गया कि अरब के एक प्रसिद्ध दानी हातिम ताई की बेटी जो स्वयं इन क़ैदियों में सम्मिलित थी, अपनी आज़ादी केवल इस शर्त पर स्वीकार करने के लिए तैयार थी कि शेष

क़ैदियों को भी साथ रिहा किया जाए । अतः एक गुज़रे हुए हातिम की दानशीलता के नाम पर उस जाति के शरीरों को रिहा कर दिया गया । और इस अवसर पर बनू अब्दुल मुत्तलिब के कैदियोंकी कोई शर्त न रखी, क्योंकि यहां जिस आधार पर क़ैदियों को रिहा किया जा रहा था वह सारे अरब का सांझा था । हातिम की दानशीलता एक समस्त जाति की सम्पत्ति थी जिस पर गर्व करने में सारा अरब सम्मिलित था ।

इन हालात पर जब नज़र पड़ती है तो दिल सहसा आप(स) पर दरूद भेजने लगता है और किसी प्रकार विश्वास नहीं होता कि ऐसा साक्षात दया व कृपा और सब कृपालुओं से अधिक कृपा करने वाले नबी(स) पर भी कोई यह आरोप लगा सकता है कि आप की कोई एक जंग भी इस्लाम के फैलाने के उद्देश्य से थी या इस उद्देष्य से थी कि तलवार के फल से दिलों की धरती पर हल चला कर इस्लाम का बीज बोया जाए । दृष्टिकोणों के प्रचार की यह कल्पनाएं तो कार्ल मार्कस, लेनिन और सटालिन की कल्पनाएं थीं । फ़िर मौलाना क्यों नहीं सोचते कि इस समाजवादी के समतल से बहुत ऊंचे थे वह मानव जाति के सरदार सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम जिन के विचार, और उड़ान सिदरतुल-मुनतहा की ऊंचाईयों तक थे और जो समस्त प्राणियों में सबसे ऊंचे तथा वरिष्ठ स्थान तक जा पहुँचा था ।

मौलाना की सोची हुई पॉलीसी (कूटनीति) की उस आध्यात्मिक पॉलीसी से कोई तुलना नहीं है जो आप(स) की पवित्र और साफ़ प्रकृति पर इलाही रौशनी के रूप में उतरी थी हां उस रसूल की पालीसी से, जिसकी प्रतिभा ख़ुदा की प्रतिभा थी, और जिसे उस ख़ुदा ने जो कि अत्यन्त पुनीत और ख़बर रखने वाला है, की ओर से अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि मिली थी, भला मौलाना की धुंधलाई हुई भूमिगत सोच की इस से क्या तुलना हो सकती थी ? वह एक पवित्र संसार है तो यह अपवित्र संसार । मौलाना ने जो कुछ कहा बहुत बुरा कहा और बिना किसी अधिकार के कहा । उनको कब यह अधिकार मिला था कि अपनी घिनौनी कल्पनाओं को उस सम्पूर्ण व्यक्ति से सम्बन्धित बताते, सत्ता प्राप्त करने का क्या केवल यह एक ही बहाना रह गया था ।

فَذَكِّرْ اِنَّمَآ اَنْتَ مُذَكِّرٌ ○ لَسْتَ عَلَيْهِمْ بِمُصَيْطِرٍ ○ (الغاشیہ:۲۳)

(अलग़ाशिया : 23)

अतः (हे मुहम्मद(स)) नसीहत कर । तू केवल एक उपदेशक है । उनका दारोग़ा नहीं ।

(ख़ुदा तआला का फ़र्मान)

पहले युग के उपदेशक
एवं
इस समय के ख़ुदाई फ़ौजदार

''यह कोई धार्मिक प्रचार करने वाले उपदेशकों और शुभ समाचार सुनाने वालों का संगठन नहीं है बल्कि यह ख़ुदाई फ़ौजदारों का संगठन है ।''

(मौलाना मौदूदी का कथन)

पहले युग के उपदेशक और इस समय के ख़ुदाई फ़ौजदारों का एक गुट

मानव रीति के अनुसार प्रत्येक प्रेमी अपने प्रिय का मुख सुन्दर देखता है, और सच्चा सेवक अपने आक़ा की ओर सद्गुण सम्बन्धित करता है । यह प्रवृत्ति मानवीय प्रकृति में अत्यन्त पाई जाती है कि कई बार एक प्रेमी की आंख अपने प्रिय में वह सुन्दरता भी देखने लगती है जिसका वहां कोई अस्तित्व नहीं होता । प्रेम हो तो काली लैला भी सुन्दर दिखाई देने लगती है, और लैला के कुत्ते में भी सुन्दरता के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं पड़ता । इसके विपरीत घृणा की आंख से प्रत्येक सुन्दरता लुप्त हो जाती है और प्रत्येक अवगुण बड़ा दिखाई देने लगता है । किसी अरब कवि ने इस सार को बड़े आम शैली से इन शब्दों में वर्णित किया है कि :-

وَعَيْنُ الرِّضَا عَنْ كُلِّ عَيْبٍ كَلِيْلَةٌ
كَمَا اَنَّ عَيْنَ السُّخْطِ تُبْدِی الْمَسَاوِيَا

"सहमती की आंख प्रत्येक अवगुण को देखने से तंग पड़ती है, उसी प्रकार जैसे असहमती की आंख बुराईयों को बड़ा करके दिखाती है ।"

मानव प्रकृति की इस रीति को समक्ष रख कर जब हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की इस्लाम के प्रचार के विषय में मौदूदी साहिब के भयंकर दृष्टिकोणों पर नज़र पड़ती है तो प्रकृतिक रूप से यह विचार उत्पन्न होता है कि मौलाना तो हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि

वसल्लम के सेवक होने का दावा करते हैं फिर मानव प्रकृति के बिल्कुल विरुद्ध ऐसा अनोखा मार्ग क्यों अपनाया कि उस सुन्दर चेहरे में दोष देखने लगे, जिसमें बहुत से दूसरों को भी सुन्दरता के अतिरिक्त कुछ नज़र नहीं आया ?

इस समस्या के तीन ही हल मेरी समझ में आते हैं :-

प्रथमः- यह कि यह दासतां के सब दावे ग़ल्त हों और वास्तव में मौलाना को हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम से दूर का भी सम्बन्ध न हो । पिछले अध्याय में जो कुछ गुज़र चुका है यदि उसे देख कर कोई सज्जन यह परिणाम निकाल भी लें तो ग़ल्त न होगा । परन्तु मैं समझता हूँ कि इतनी दूर जाने की आवश्यकता नहीं, किसी भी मुसलमान कहलाने वाले पर हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के साथ जान बूझ कर दुश्मनी का आरोप एक बहुत ही घोर आरोप है । और चाहे कैसे ही तथ्य मौजूद क्यों न हो कम से कम मेरी तबीयत किसी शत्रु पर भी यह आरोप लगाने के लिए तैयार नहीं । मैं स्वयं उस नृशंसित जाति से सम्बन्ध रखता हूँ जिसके दिलों में यद्यपि उस अत्यन्त प्रेमी रसूल (अवतार) के लिए अथाह और असीमित प्रेम के अतिरिक्त कुछ नहीं परन्तु फिर भी अत्याचारियों की ओर से उस पर हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की शत्रुता का आरोप लगाया जाता है । इस लिए मैं यह जानते हुए कि इस आरोप का ज़ख़्म कितना गहरा और पीड़ा जनक होता है मौदूदी साहिब पर यह आरोप लगाने से बचाव करता हूँ।

द्वित्य :- दूसरा हल यह हो सकता है कि मौदूदी साहिब की दृष्टि में अवगुण व सद्‌गुण को पहचानने का सामर्थ्य ही न हो, और जिस प्रकार कुछ लोग Colour Blind होते हैं और कुछ रंगों में अंतर नहीं कर सकते । मौदूदी साहिब भी शिष्टाचार की सुन्दरता व कुरूपता में अंतर करने का सामर्थ्य न रखते हों । यह बात उचित है बल्कि संभव है कि जहां तक शिष्टाचार का सम्बन्ध है मौलाना की पहचानने की शक्ति में विघ्न हो, परन्तु मैं समझता हूँ कि वास्तव में उनकी इस अनोखी कार्य प्रणाली का राज़, निम्नलिखित तीसरे संभावित हल में छिपा है :-

तृतीय :- एक मुहावरा है ''धुन सवार होना'' जिसको अंग्रेज़ी में

ओबसेशन (Obsession) कहा जाता है, अर्थात् मन व बुद्धि पर एक विचार का इस भांति छा जाना कि दाऐं, बाऐं, आगे, पीछे की सुध न रहे । मानवीय बुद्धि एवं विवेक की यह एक अत्यन्त भीषण बीमारी है जो टी.बी. की भांति उसकी शक्तियों को खोखला कर देती है, और अपने साथ और बहुत सी बीमारियां ले आती है । दुर्भाग्यवश मौदूदी साहिब भी इसी रोग का शिकार हो चुके हैं, और धुन उन पर यह सवार है कि समस्त मानव जाति की गर्दनें अपने हाथ में लेकर डंडे के ज़ोर से मानव सुधार के वह काम कर दिखाऐं कि जो उनसे पहले कभी किसी सच्चे मार्ग दर्शक नबी से भी संभव न हो पाए थे । यही वह धुन है जिसके परिणाम स्वरूप वह ठोकर पर ठोकर खाते हैं और धुंध की भांति यह उनके मार्ग में रोक बन कर उनको घाटी-घाटी भटकाती फिरती है । बल्कि अधिकतर तो विनाश के उन मार्गों तक जा पहुँचाती है जिन पर आदम(अ) से लेकर आज तक सत्य के शत्रु प्राय: चलते रहे हैं । इसी धुन के प्रभावाधीन कभी तो वह क़त्ले-मुरतद (धर्म परिवर्तन करने वालों का वध) के सिद्धान्त के समर्थक हो कर उन हमेशा के अत्याचारियों की आस्था का समर्थन करते हैं जिन्होंने समस्त नबियों (अलैहिस्सलाम) और उनकी जातियों का केवल इस कारण विरोध किया था कि वह अपने पहले धर्म से फिर चुके थे, और कभी वह हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के हाथ में तलवार पकड़ा कर इस्लाम के प्रचार को نعوذ بالله (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) इसी तलवार के बल का परिणाम घोषित करते हैं, और क्योंकि तलवार की आवश्यकता, उपदेशों के लाभों को झूठा प्रमाणित करती है या यूँ कह लीजिए कि यदि उपदेशों के लाभ को स्वीकार कर लिया जाए तो तलवार की आवश्यकता शेष नहीं रहती, इसी कारण मौदूदी साहिब तलवार शेष रखने के लिए, उपदेशों के लाभ से इनकार करने पर विवश हैं ।

दृष्टिगोचर अध्याय में मौदूदी साहिब के यही दृष्टिकोण पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किए जाते हैं, जो उपदेशों को व्यर्थ और बेकार चीज़ घोषित करके धर्म में तलवार के प्रयोग के लिए एक कारण बनाते हैं । अत: मौदूदी साहिब फ़र्माते हैं :-

"उनको आप केवल उपदेशों द्वारा यह चाहें कि वह अपने लाभों से हाथ धो लें तो यह किसी प्रकार संभव नहीं। हां सत्ता हाथ में लेकर आप बलपूर्वक उनकी शरारतों का समापन कर दें।" (हक़ीकते जिहाद पृष्ठ 10)

प्रत्यक्ष रूप से यह सुधार का अत्यन्त लाभदायक ढंग दिखाई पड़ता है। विशेषकर उपदेश व नसीहत के कठिन मार्गों की तुलना में इस ढंग की सरलता अपने अन्दर एक छिपा हुआ आर्कषण रखती है। कहां तो जन सुधार हेतु साधू पुरुषों की भांति नसीहत करते हुए द्वार-द्वार की ठोकरें खाना, और प्रत्येक द्वार से धिक्कारे जाना, परन्तु फिर भी एक ऐसे दीवाने प्रेमी की भांति अद्वितीय धैर्य और हिम्मत के साथ अपनी आस्था पर अटल रहना, जिसका नारा प्रत्येक परीक्षा के समय यही होता है कि :-

यह तूने क्या कहा नासिह न जाना कूए जानाँ में,
हमें तो राहरवों की ठोकरें खाना मगर जाना।

और कहां तलवार के बल पर एक क्षण में जन समूह के समूह को नेक मुसलमान बना देना? पहले वर्णित ढंग की कठिनाइयों से अन्तिम ढंग की सरलता के साथ कोई तुलना भी है?

प्रथम ढंग अर्थात् उपदेश का मार्ग, कोई जानते बूझते हुए क्यों वह कठिन मार्ग अपनाए जिन पर पग धरने का परिणाम केवल उस अपमान व तिरस्कार के कुछ नहीं होता जो इससे पूर्व उपदेशकों के दुखते भाग्यों में लिखा जाता रहा और जिसका वर्णन क़ुर्आन-ए-करीम इन शब्दों में फ़र्माता है :-

اِنَّ الَّذِيْنَ اَجْرَمُوْا كَانُوْا مِنَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا يَضْحَكُوْنَ ۝ وَاِذَا مَرُّوْا بِهِمْ يَتَغَامَزُوْنَ ۝ وَاِذَا انْقَلَبُوْا اِلٰى اَهْلِهِمُ انْقَلَبُوْا فَكِهِيْنَ ۝ وَاِذَا رَاَوْهُمْ قَالُوْا اِنَّ هٰٓؤُلَآءِ لَضَآلُّوْنَ ۝ وَمَا اُرْسِلُوْا عَلَيْهِمْ حٰفِظِيْنَ ۝ (المطففين ٣٠:٣٤)

(अलमुतफ़्फ़िफ़ीन 30-34)

अनुवाद :- विश्वसनी¯ रूप से दोषी, मोमिनों पर व्यंग्य

करते थे और जब उन के पास से गुज़रते थे तो, अपमान जनक इशारे करते थे और अपने परिवार की ओर गर्व से लौटते थे, और जब उनको देखते थे तो कहते थे कि विश्वसनीय रूप से यही लोग हैं जो पूर्णत्या पथभ्रष्ट हैं, जबकि वह उन पर दारोग़ा नियुक्त नहीं किए गए थे ।

संभवत यही कारण है कि मौदूदी साहिब कदापि इस वास्तविक्ता के समथर्क नहीं कि जन सुधार हेतु बिना किसी कारण ऐसा कठिनतापूर्ण जीवन व्यतीत किया जाए जिसका परिणाम जग हंसाई और अपमान के अतिरिक्त कुछ न हो । लोग व्यंग्य का निशाना बनाऐं सिर मटकाऐं और आंखों से इशारे करें कि इन संसार के सुधारकों को तो देखो जिनके पास उपदेश के अतिरिक्त कोई हथियार नहीं, और दुर्बलता की यह दशा है कि हम जब चाहें इन को अपने पांव तले रौंद डालें और दावे यह हैं कि हम केवल उपदेश द्वारा संसार का दिल जीत लेंगे । अर्थात् यह व्यंग्य और तिरस्कार करते हुए लोग अपनी शक्ति के गर्व में इतराते हुए अपने घरों को लौट जाया करें और जब कभी भी इन उपदेशकों की बात हो वह उनको अत्यन्त दूषित एवं पथभ्रष्ट निर्धारित करें । फिर ऐसे उपदेशों का भला क्या लाभ ? फोकट का अपमान और तिरस्कार के अतिरिक्त परिणाम कुछ भी तो नहीं । इसके विपरीत एक ढंग ऐसा है जिसे अपनाने से मानवजाति का ख़ूब-ख़ूब सुधार हो सकता है और वह ढंग मौदूदी साहिब के शब्दों में यह है :-

"जो कोई वास्तव में ख़ुदा तआला की धरती से झगड़े व लड़ाई को मिटाना चाहता हो और वास्तव में यह चाहता हो कि मानव जाति का सुधार हो तो उसके लिए केवल उपदेशक और नसीहत करने वाला बन कर कार्य करना व्यर्थ है । उसे उठना चाहिए और ग़ल्त सिद्धान्तों की सरकार का समापन करके ग़ल्त कार्य करने वाले लोगों से सत्ता छीन कर सही सिद्धान्तों और ढंगों की सरकार स्थापित करनी चाहिए ।" (हक़ीक़ते जिहाद पृष्ठ 11)

यह है वह समाज सुधार का मौदूदी दृष्टिकोण जो बिल्कुल

समाजवादी दृष्टिकोण के समान है और दिखने में बहुत ही प्रभावशाली और लाभदायक दिखाई देता है परन्तु इससे प्रभावित होने के पश्चात् प्राकृतिक रूप से दिल में यह प्रश्न उठता है कि यदि यह दृष्टिकोण मानव प्रकृति के अनुरूप है और दूर तक प्रभाव डालने वाले परिणाम के हेतु मानव जाति के लिए वैभवशाली लाभों का वाहक है तो आवश्य ही मानव जाति के जन्म दाता ने समस्त नबियों को सुधार का यही प्रभावशाली ढंग सिखाया होगा और पवित्र पुस्तकें "उठ बन्दे उठ, तलवार उठा" के जंगी नारों से भरपूर होंगीं, यहां तक कि हर दूसरे तीसरे इलाही फ़र्मान के पश्चात् बड़े ज़ोर से यह मांग की जाती होगी कि ऐ ख़ुदाई फ़ौजदारो ! उपदेश एक व्यर्थ चीज़ है इसका विचार तक मन में न आने दो और यदि तुम मानव जाति के सुधार की छोटी सी कल्पना भी रखते हो तो उस समय की सरकार का तख़्ता उलट दो और बलपूर्वक उनकी शरारतों का समापन कर दो । परन्तु अफ़सोस है इस दृष्टिकोण के समर्थकों पर कि ऐसा कदापि नहीं । खेद कि मामला बिल्कुल विपरीत है और इस समस्या पर प्रकृति के जन्म दाता का निर्णय ऊपरलिखित समाजवादी और मौदूदी निर्णय के बिल्कुल विरुद्ध नज़र आता है । ख़ुदा तआला की दृष्टि में तो उपदेश एक ऐसी लाभकारी चीज़ है कि उस विश्वव्यापी नुक़सान के युग में भी जबकि मानव जाति सामूहिक रूप से घाटे की ओर जा रही होगी, केवल वही नेक कार्य करने वाले मोमिन सफ़ल होंगे जिनकी शान यह होगी कि :-

وَتَوَاصَوْا بِالْحَقِّ وَتَوَاصَوْا بِالصَّبْرِ ٥ (العصر)

(सूरत अलअसर)

"वह सच्चाई और धैर्य के साथ नसीहत करेंगे ।"

प्रकृति पर एक दृष्टि डालने ही से मनुष्य इस वास्तविकता को जान जाता है कि आध्यात्मिक और शिष्टाचारिक क्रांति लाने के लिए ख़ुदा तआला अपने बंदों को जो मार्ग अपनाने का उपदेश देता है वह केवल सच्ची बात की नसीहत करना है, दुआ के साथ, और धैर्य के साथ, धीरज के साथ और दुआ के साथ, यहां तक कि ख़ुदा तआला के इस

वचन के पूरा होने का दिन आ जाए कि :-

وَالْعَاقِبَةُ لِلْمُتَّقِيْنَO

(अलअअ्राफ़ : 129)

अन्ततः मुत्तक़ियों (अल्लाह से डरने वाले) की ही विजय होगी ।

ख़ुदा तआला के समस्त भेजे गए नबी इसी दृष्टिकोण के समर्थक थे और उनकी समाज सुधार की कल्पना हिंसापूर्वक सुधार की समाज वादी कल्पना के बिल्कुल विपरीत थी । क़ुर्आन-ए-करीम समस्त नबियों के इस पवित्र वर्ग को धार्मिक प्रचार करने वाले उपदेशकों और शुभ समाचार सुनाने वाली एक जमाअत के रूप में प्रस्तुत करता है जिनकी कार्यप्रणाली का वर्णन मानवजाति के मार्गदर्शन हेतु सदैव के लिए इस पवित्र पुस्तक में सुरक्षित कर दिया गया है । अतः इस इलाही ब्यान के अनुसार हज़रत नूह(अ) का क्रांतिकारी हथियार भी नसीहत था और हज़रत ईब्राहीम(अ) का भी । हज़रत शुऐब(अ) का भी और हज़रत सालिह(अ) का भी । हज़रत लूत(अ) भी उपदेशक ही बन कर आए थे और हज़रत मूसा(अ) और हज़रत ईसा(अ) भी । और सबसे अन्त पर, परन्तु इन सब से कहीं बढ़ कर सय्यदे वुल्दे आदम (आदम की संतान के सरदार) हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम भी केवल एक उपदेशक के रूप में ही एक महानतम आध्यात्मिक क्रांति लाने के लिए इस संसार में पधारे थे । फिर मैं इस पवित्र नबियों के वर्ग की सामूहिक सुन्नत (रीति) को कैसे एकदम नकार डालूँ, और मौदूदी साहिब के इस समाजवादी दावे को स्वीकार कर लूँ कि :-

''जो वास्तव में ख़ुदा तआला की धरती से लड़ाई-झगड़े को मिटाना चाहता है और वास्तविक रूप से यह चाहता हो कि मानवजाति का सुधार हो तो उस के लिए केवल उपदेशक और नसीहत करने वाला बन कर काम करना व्यर्थ है ।''

देखिए हज़रत नूह(अ) की जाति ने जब आप पर खुला-खुला

पथभ्रष्ट करने का आरोप लगाया तो आपने क़ुर्आन-ए-करीम के ब्यान अनुसार उनको यही उत्तर दिया कि :-

يٰقَوْمِ لَيْسَ بِيْ ضَلٰلَةٌ وَّلٰكِنِّيْ رَسُوْلٌ مِّنْ رَّبِّ الْعٰلَمِيْنَ ○ اُبَلِّغُكُمْ رِسٰلٰتِ رَبِّيْ وَاَنْصَحُ لَكُمْ وَاَعْلَمُ مِنَ اللّٰهِ مَالَا تَعْلَمُوْنَ ○ (الاعراف:٦٢:٦٣)

(सूरत अलअ्राफ़ 62-63)

हे मेरी कौम ! मैं पथभ्रष्ट नहीं हूँ बल्कि समस्त ब्रह्मांड के रब्ब (पालनहार) की ओर से पैग़म्बर (संदेशवाहक) बन कर आया हूँ और (मेरा कार्य यह है कि) तुमको अपने रब्ब का संदेश पहुँचाता हूँ और नसीहत करता हूँ और अपने रब्ब की ओर से मुझे उन बातों का ज्ञान दिया गया है जिनको तुम नहीं जानते ।"

यह है वह भाषण जो अल्लाह तआला के वर्णन के अनुसार हज़रत नूह(अ) ने अपनी जाति के सामने दिया परन्तु मौदूदी दृष्टिकोण के अनुसार उनको यह कहना चाहिए था कि "मैं तो ख़ुदा का रसूल (सन्देश वाहक) हूँ और तलवार के बल पर अपने नेक लोगों के संगठन को तुम्हारे ऊपर ठोंस दूंगा और चाहे तुम हाथ उठाओ अथवा न उठाओ वह हर दशा में तुम्हारे दूषित हाथों से सत्ता छीन लेगें ।"

फिर देखिए हज़रत हूद(अ) पर जब आद जाति ने मूर्ख होने का आरोप लगाया तो उत्तरपूर्वक आपने यह नहीं फ़र्माया कि तुम मेरी नसीहत के अहानिकारक ढंग देख कर मुझे मूर्ख न समझते रहना, यह तो एक अस्थायी रूप है , वास्तव में तो मैं एक हिंसक अत्याचारी मनुष्य हूँ और एक दिन ख़ुदा के विद्रोहियों से सत्ता की बागडोर छीन कर अपनी नेक जाति को सौंप दूंगा बल्कि नबियों के तरीके के अनुसार आप का उत्तर भी अत्यन्त पवित्र था और उसमें क्रूर हृदयता और हिंसा व अत्याचार के इरादों की शंका तक न थी । क़ुर्आन-ए-करीम वह उत्तर इन शब्दों में व्यक्त करता है कि :-

يٰقَوْمِ لَيْسَ بِيْ سَفَاهَةٌ وَّلٰكِنِّيْ رَسُوْلٌ مِّنْ رَّبِّ الْعٰلَمِيْنَ ٥ اُبَلِّغُكُمْ رِسٰلٰتِ رَبِّيْ وَاَنَا لَكُمْ نَاصِحٌ اَمِيْنٌ ٥ (الاعراف:٦٨:٦٩)

(अल अअ्राफ़ : 68-69)

हे मेरी कौम ! मुझ में मूर्खता की तो कोई बात नहीं मैं तो समस्त ब्रह्मांड के रब्ब (पालनहार) की ओर से रसूल (अवतार) बन कर आया हूँ । अपने रब्ब के संदेश तुम तक पहुँचाता हूँ और तुम्हारे लिए एक उपदेशक के रूप में हूँ और विशवस्त हूँ ।

फिर हज़रत हूद(अ) के पश्चात् हज़रत सालिह(अ) को भी जाति ने ठुकरा दिया और नाना प्रकार के आरोप लगाए, परन्तु आप का उत्तर भी यही था कि :-

يٰقَوْمِ لَقَدْ اَبْلَغْتُكُمْ رِسَالَةَ رَبِّيْ وَنَصَحْتُ لَكُمْ وَلٰكِنْ لَّا تُحِبُّوْنَ النّٰصِحِيْنَ ٥ (الاعراف:٨٠)

(अल अअ्राफ़ : 80)

हे मेरी जाति देखो मैं तुमको अपने रब्ब (पालनहार) का संदेश पहुँचा चुका और नसीहत कर चुका, परन्तु तुम उपदेशकों से प्रेम करने वाले लोग नहीं हो ।

फ़िर हज़रत लूत(अ) की जमाअत ने भी हज़रत लूत(अ) की जाति की सत्ता बलपूर्वक नहीं छीनी बल्कि नसीहत करते चले गए यहां तक कि इस जाति के पकड़े जाने का समय आ पहुँचा, तब इससे पूर्व कि अज़ाब (प्रकोप) अत्याचारियों की इस बस्ती को घेर लेता अल्लाह की आज्ञा से हज़रत लूत(अ) और आपके साथी प्राय: के लिए इस बस्ती को छोड़ कर चले गए, तब वह भयानक सुबह उदय हुई जिस से प्राय: अत्याचारियों को डराया जाता है ।

فَسَآءَ صَبَاحُ الْمُنْذَرِيْنَ ٥ (الصّافات:١٧٨)

(अस्साफ़ात : 178)

"देखो ! कैसी बुरी सुबह होती है उनकी जिनको इलाही प्रकोप से डराया जाता है ।"

और हज़रत शुऐब(अ) ने भी शत्रुओं के दु:ख देने पर भी नसीहत से ही काम लिया और जब विरोधी अत्याचार से नहीं रुके

فَتَوَلّٰى عَنْهُمْ وَقَالَ يٰقَوْمِ لَقَدْ اَبْلَغْتُكُمْ رِسٰلٰتِ رَبِّيْ وَنَصَحْتُ لَكُمْ ۚ فَكَيْفَ اٰسٰى عَلٰى قَوْمٍ كٰفِرِيْنَ۝ (الاعراف:٩٤)

(अलएराफ़ : 94)

तो वह उन लोगों से अलग हो गए और कहा कि हे मेरी जाति मैं तुमको अपने रब्ब (पालनहार) के संदेश पहुँचा चुका हूँ, अत: किस प्रकार एक काफ़िर जाति पर (जो निरंतर इनकार पर डटी है) अपनी पीड़ा व्यक्त करूं ।

अत: समस्त नबियों का पद, उपदेशकों का पद था, और जब उनका इनकार किया जाता था तो वह अपने रब्ब (पालनहार) के समक्ष झुकते और रोते चिल्लाते और तलवार के बल पर विरोधियों से सत्ता छीनने के स्थान पर वह विश्वास रखते थे कि उनका कर्त्तव्य केवल प्रेम और नर्मी और नम्रता के साथ सुधार करना है, शेष ख़ुदा का काम है । वह वास्तविक स्वामी है जिसको चाहता है हकूमतों का उत्तराधिकारी बना देता है, हज़रत मूसा(अ) की भांति उनका नारा भी यही था कि :-

رَبَّنَا اَفْرِغْ عَلَيْنَا صَبْرًا وَّتَوَفَّنَا مُسْلِمِيْنَ۝ (الاعراف:١٢٧)

(अल अअ्राफ़ : 127)

और अपनी जाति को यह नसीहत किया करते थे कि :-

اِسْتَعِيْنُوْا بِاللّٰهِ وَاصْبِرُوْا (الاعراف:١٢٩)

(अल अअ्राफ़ : 129)

अल्लाह तआला से सहायता मांगो और धीरज रखो ।

اِنَّ الْاَرْضَ لِلّٰهِ يُوْرِثُهَا مَنْ يَّشَآءُ مِنْ عِبَادِهٖ وَالْعَاقِبَةُ لِلْمُتَّقِيْنَ۝

(الاعراف:۱۲۹)

(अल अअ्राफ़ : 129)

विश्वसनीय रूप से समस्त भूमि ख़ुदा तआला की सम्पत्ति है, अपने प्राणियों में से जिसको चाहता है उसको उत्तराधिकारी बना देता है। (यह हमारा काम नहीं कि हम अपने घमण्ड में अपने आपको नेक कह कर तलवार के बल पर सत्ता प्राप्त कर लें।) हां हम इतना अवश्य जानते हैं कि وَالْعَاقِبَةُ لِلْمُتَّقِيْنَ कि अन्ततः विजय प्रत्येक दशा में ख़ुदा से डरने वालों को प्राप्त होगी।

हज़रत मूसा(अ) के पश्चात् हज़रत ईसा(अ) ने भी अपना समस्त जीवन नसीहत करने में लगा दिया और कभी सत्ता पर अधिकार करने की योजनाएं नहीं बनाई और अन्ततः सब नबियों का सरदार (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) भी उपदेशक बन कर ही लोगों को नेकी की ओर बुलाने के लिए आया, दारोग़े अथवा ख़ुदाई फ़ौजदार का रूप कभी नहीं धारा। अल्लाह तआला ने भी आपको उपदेशक ही का नाम दिया और फ़र्माया :-

فَذَكِّرْ اِنَّمَآ اَنْتَ مُذَكِّرٌ۝ لَسْتَ عَلَيْهِمْ بِمُصَيْطِرٍ۝ (الغاشیہ:۲۳)

(अलग़ाशिया : 23)

अतः (हे मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) नसीहत कर तू केवल एक उपदेशक है और उन (लोगों) पर दारोग़ा नियुक्त नहीं।"

परन्तु मौदूदी साहिब इस दावे पर डटे हैं कि वह और उनका संगठन :-

"धार्मिक प्रचार करने वाले उपदेशकों और शुभ समाचार सुनाने वालों की जमाअत (संगठन) नहीं है बल्कि यह ख़ुदाई फ़ौजदारों का संगठन है। لِتَكُوْنُوْا شُهَدَآءَ عَلَى النَّاسِ और इसका काम यह है कि संसार से अत्याचार, लड़ाई-झगड़े, विद्रोह और अवैध लाभ प्राप्त करने

को बलपूर्वक मिटादे ।''(हक़ीक़ते जिहाद पृष्ठ 58)

ख़ुदा तआला अपने सबसे वरिष्ठ रसूल(स) को भी यही नसीहत फ़र्माता रहा है कि :-

وَمَا جَعَلْنٰکَ عَلَيْهِمْ حَفِيْظًا ۚ وَمَآ اَنْتَ عَلَيْهِمْ بِوَكِيْلٍ ○ (الانعام:١٠٨)

(अल अन्आम : 108)

न तो हमने तुझे उन पर दारोग़ा नियुक्त किया है आर न तू उनके कर्मों का उत्तरदायी है ।

परन्तु मौदूदी साहिब दारोग़गी ही के नहीं बल्कि फ़ौजदारी के अधिकार अपने लिए और अपने संगठन के लिए सुरक्षित करवा रहे हैं । कितना आश्चर्यजनक है कि ख़ुदा तआला ने उस महानतम सुधारक(स) को तो फ़ौजदारी अधिकार न सौंपे जिसके कारण इस ब्रह्मांड को उत्पन्न किया था परन्तु मौदूदी साहिब और उनके नेक संगठन को इस विशेष वरदान के लिए चुन लिया । हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के करूणापूर्ण और कृपालु हृदय से जब पीड़ाजनक दुआऐं उठतीं थीं कि हे मेरे स्वामी मुझे सामर्थ्य दे कि मैं समस्त संसार की निदेश का कारण बन जाऊं तो आप(स) को ख़ुदा तआला यही उत्तर देता रहा कि :-

اَفَاَنْتَ تُكْرِهُ النَّاسَ حَتّٰى يَكُوْنُوْا مُؤْمِنِيْنَ ○ (يونس:١٠٠) (यूनुस : 100)

क्या तू लोगों को विवश कर सकता है कि वह ईमान ले आऐं ।

और आप(स) के इनकार करने वालों के सम्बन्ध में यही सूचना देता रहा कि :-

وَلَوْشَآءَ اللّٰهُ مَا اَشْرَكُوْا ؕ وَمَا جَعَلْنٰکَ عَلَيْهِمْ حَفِيْظًا ۚ وَمَآ اَنْتَ عَلَيْهِمْ بِوَكِيْلٍ ○ (الانعام:١٠٨)

(अल अन्आम : 108)

यदि अल्लाह तआला चाहता तो वह कभी शिर्क (अनेकेश्वरवाद) न करते । और तुझे हमने उन पर

दारोग़ा नियुक्त नहीं किया न ही तू उनका उत्तरदायी है ।

परन्तु मौदूदी साहिब ने जब समाज सुधार का संकल्प लिया तो अचानक हिंसा व अत्याचार की समस्त शक्तियां उनको सौंपी गईं और समस्त फ़ौजदारी अधिकार उनको दिए गए ताकि :-

"संसार से अत्याचार लड़ाई-झगड़े अवैध लाभ उठाने और विद्रोह को बलपूर्वक मिटा डालें ।

कितने खेद और आश्चर्य की बात है कि लड़ाई-झगड़ा मिटाने और मानव जाति के सुधार करने का यह ढंग समस्त पुराने नबियों की दृष्टि से ओझल रहा और किसी ने भी इस अनमोल राज़ को न जाना या फिर संभवतः نَعُوذُ بِاللهِ (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) ख़ुदा तआला से चूक हुई । एक लाख चौबीस हज़ार बार उसने मानव जाति के सुधार का संकल्प किया और एक लाख चौबीस हज़ार बार वह यह भूल जाता रहा कि "केवल उपदेशक और नसीहत करने वाला बन कर कार्य करना व्यर्थ है" यहां तक कि अन्तिम युग का नबी(स), सब नबियों का सरदार(स) भी आया और गुज़र गया, परन्तु फिर भी ख़ुदा तआला को नसीहत की व्यर्थता याद न आई । यदि कुछ याद आया तो मानव जाति के सुधार का वही सदैव का प्राथमिक व अन्तिम गुर कि :-

فَذَكِّرْ إِنْ نَّفَعَتِ الذِّكْرٰى (अलआला : 10)

नसीहत कर । विश्वसनीय रूप से नसीहत ही लाभ देती है ।

यदि मौदूदी साहिब ही सही हैं तो भी ख़ुदा की सौगन्ध मुझे इस मौदूदी सच्चाई की कुछ भी परवाह (चिंता) नहीं क्योंकि मानव जाति के सुधार का वह राज़ जो मेरे आक़ा हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) के दिल पर नहीं उतरा, यदि दस करोड़ बार भी किसी मौदूदी दिल पर उतरे तो दस करोड़ बार ही मैं घोषणापूर्वक इसको नकारता चला जाऊंगा । मैं तो वही ढंग अपनाऊंगा जो महानतम सुधारक, हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम को वरदित किया गया और प्रत्येक दूसरे ढंग को पाँव की एक ठोकर से नकार दूंगा ।

सत्ता की तड़प

मौदूदी साहिब की विभिन्न पुस्तकों के अध्यन के पश्चात् मैं इस विश्वसनीय परिणाम तक पहुँचा हूँ कि उन की मानसिकता के विश्लेषण का सारांश इन तीन शब्तों में समाया हुआ है - ''सत्ता की तड़प''

यह सत्ता की तड़प ऐसी असीमित और अत्यन्त है कि उनके सामूहिक जीवन के प्रत्येक दृष्टिकोण पर छा चुकी है ।

उनके निकट ख़ुदा तआला की इबादत का अर्थ भी इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कि ख़ुदा के कुछ प्राणियों को नेक बनाकर दूसरे ख़ुदा के बंदों पर सत्ता करने के योग्य बनाया जाए और इबादतों के आध्यात्मिक पहलू की ओर ज़रा भी उनकी दृष्टि नहीं उठती । वह भूल जाते हैं कि इबादत का मौलिक उद्देश्य बन्दे का ख़ुदा तआला से मेल कराना है अर्थात् उस उद्देश्य का पूरा करना है जिसके लिए मानव जाति को पैदा किया गया । वह भूल जाते हैं कि इबादत ब्रह्मांड की उत्पत्ति का मूल है, किसी दूसरे उद्देश्य के प्राप्त करने का साधन नहीं । वह भूल जाते हैं कि इबादत जिन्न[1] व मानव जाति हेतु उत्पन्न नहीं की गई बल्कि जिन्न व मानव जाति इबादत के लिए उत्पन्न किए गए हैं । ख़ुदा तआला फ़र्माता है :-

---

1 जिन्न : जिन्न से अभिप्राय धनवान लोग हैं जो बाहर कम नज़र आते हैं वैसे जिन्न हर छिपी हुई मख़लूक को भी कहते हैं ।

مَا خَلَقْتُ الْجِنَّ وَالْإِنْسَ إِلَّا لِيَعْبُدُوْنِ ○ (الذاريات:۵۷)

(अज़्ज़ारियात : 57)

हमने इबादत के लिए ही जिन्न व मानव जाति उत्पन्न किए हैं। परन्तु मौलाना का हठ है कि :-

''यह नमाज़ और रोज़ा यह ज़कात और हज वास्तव में इसी तैयारी और प्रशिक्षण के लिए हैं। जिस प्रकार समस्त संसार की सरकारें अपनी अपनी सेना, पुलिस और सिविल सर्विस के लिए व्यक्तियों को पहले विशेष प्रकार का प्रशिक्षण देती हैं, फिर उनसे काम लेती हैं इसी प्रकार इस्लाम भी उन समस्त व्यक्तियों को जो इस नौकरी में भर्ती हों, पहले विशेष ढंग से प्रशिक्षण देता है, फिर उनसे जिहाद (धर्म युद्ध) और इलाही हकूमत की सेवा लेना चाहता है।'' (हक़ीक़ते जिहाद पृ. 16)

इबादत का इस भयंकर सीमा तक भौतिक दृष्टिकोण विश्वसनीय रूप से संसार के किसी धर्म ने कभी प्रस्तुत नहीं किया। परन्तु जब सत्ता की असीमित इच्छा जीवन के प्रत्येक दृष्टिकोण पर छा चुकी हो तो असंभव नहीं कि ख़ुदा की इबादत भी सेना पुलिस और सिविल सर्विस के प्रशिक्षण की भांति दिखाई देने लगे।

और यह सत्ता की इच्छा इतनी उतावली और व्याकुल है कि किसी कठिन व लम्बे (परन्तु सही) मार्ग को अपनाकर इस उद्देश्य की प्राप्ति की आज्ञा नहीं देती। समाजवाद का भी यही दावा था कि परिवर्तन (क्रांति) के लिए लम्बे लोकतान्त्रिक ढंग को अपनाना व्यर्थ है बल्कि कम्यूनिस्ट पार्टी अपने ''नेक उद्देश्य'' की प्राप्ति हेतु जब भी अवसर मिले उस समय की सरकार का तख़्ता उलट कर सत्ता की बागडोर अपने हाथ में ले सकती है। मौलाना का भी बिल्कुल ऐसा ही दावा है, बाल बराबर भी अंतर नहीं। अतः मौदूदी फ़र्मान अपने अनुयाइयों को इस प्रकार पाबंद करता है कि :-

''जिस धरती पर भी तुम्हारी सरकार हो, वहां मानव-सुधार के लिए उठो। सरकार के ग़ल्त सिद्धान्तों को सही सिद्धान्तों से परिवर्तित करने का प्रयत्न करो और ख़ुदा से न डरने वाले, और कानून की पालना

न करने वाले लोगों से क़ानून बनाने और सरकार चलाने का अधिकार छीन लो।" (हक़ीक़ते जिहाद पृ. 15)

आश्चर्य की बात है कि मौलाना सत्ता की लालसा में हज़ारों वर्षों के परीक्षित एक साधारण आचरण के नुक्ता को समझने से भी वंचित रह जाते हैं, और वह नुक्ता यह है कि दावे चाहे कितने ही उच्च हों और संकल्प चाहे दिखने में कैसे ही नेक क्यों न हो, देश की किसी पार्टी को लड़ कर सरकार पर अधिकार जमाने की आज्ञा नहीं दी जा सकती वरन् संसार में एक भयंकर विकार उत्पन्न हो जाएगा कि क़यामत तक मिट न सकेगा और गृह युद्ध की ऐसी आग भड़केगी कि बुझाए न बुझेगी।

प्रथम तो इस बात का निर्णय कि जिस उद्देश्य के लिए कोई पार्टी खड़ी हुई है। वह नेक है भी अथवा नहीं, स्वयं उसी पार्टी पर नहीं छोड़ा जा सकता। दूसरे यदि उसे नेक मान भी लिया जाए तो इस निर्णय का अधिकार भी उसी पार्टी को नहीं दिया जा सकता और न यह स्वीकार किया जा सकता है कि उनके विरुद्ध खड़े हुए सभी लोग तो अवश्य दुराचारी, अवज्ञाकारी, ईश्वर से न डरने वाले और अत्याचारी और हिंसक हैं परन्तु ख़ुदाई फ़ौजदारों की इस पार्टी का प्रत्येक मेंबर नेक और ईश्वर से डरने वाला और मानवीय लालच व इच्छा से पूर्णत्या पवित्र है और सामूहिक रूप से यह पार्टी शुद्धतापूर्ण मानव जाति के सुधार के सत्संकल्प को लेकर ही कार्य के मैदान में कूदी है।

परन्तु इस शंका को कोई कहां ले जाए कि कई बार ऐसी पार्टियां जो सत्संकल्प के ऊंचे-ऊंचे दावे लेकर उठती हैं बहुत जल्दी ही सत्ता की लालसा उन पवित्र संकल्पों को डगमगा देती है और पवित्र संकल्पों को भसम कर देती है। स्वयं मौदूदी साहिब ही के शब्दों में ज़रा मानव प्रकृति की इस मजबूरी का वृत्तांत सुनीए :-

"परन्तु हकूमत और सत्ता कुछ ऐसी बुरी बला है, प्रत्येक व्यक्ति उसको जानता है। उसके प्राप्त होने का विचार आते ही इनसान के भीतर लालच के तूफ़ान उठने लगते हैं। अन्तरआत्मा की इच्छा यह चाहती है कि धरती के ख़ज़ाने और मानवजाति की गर्दनें अपने हाथ में आऐं तो दिल खोल

कर ख़ुदाई की जाए ।'' (हक़ीक़ते जिहाद, पृ. 15)

अत: जब स्वयं मौलाना भी यह स्वीकार करते हैं कि सत्ता की लालसा तो ख़ैर एक ओर रही, उसके प्राप्त होने का विचार ही एक अत्यन्त भयानक परिवर्तन दिल में उत्पन्न कर सकता है तो फिर इस बात की क्या ज़मानत (गारंटी) है कि उनके तैयार हुए ''सालिहीन'' (नेक लोग) इस भयानक स्थान से सुरक्षित गुज़र जाऐंगे । यदि कहें कि उन के नेक इरादे की ज़मानत (गारंटी) इस कारण ली जा सकती है कि वह इस ट्रेनिंग में से गुज़र चुके होंगे जो इस ''सिविलसर्विस'' के लिए अल्लाह तआला ने निश्चित फ़र्माई है । अर्थात् समस्त प्रकार की इस्लामी इबादत करने वाले होंगे । तो फिर प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि मौलाना ने यह कैसे समझ लिया कि केवल उनकी ''इस्लामी जमाअत'' के मेंबर ही नमाज़, रोज़ा, हज, ज़कात आदि के कर्त्तव्य निभाते हैं ? यदि अहमदियों की इबादतें आपके निकट इबादतें न भी हों तो क्या बरेलवी पूर्णत्या इन इबादतों को छोड़ चुके हैं या देवबन्दी इनसे तंग पड़ चुके हैं ? क्या शिय्या मत वाले मुसलमानों की इबादतें, इबादतें नहीं और अहले क़ुर्आन इन को पूर्णत्या छोड़ बैठे फिर इन सब को क्यों अधिकार नहीं पहुँचता कि वह भी अपने अपने रंग में तलवार के बल पर उस समय की सरकार का तख़्ता उलटने का प्रयत्न करते रहें जो उनके दृष्टिकोण के अनुसार ग़ल्त दृष्टिकोणों पर आधारित हों । फिर ग़ैर मुस्लिम भी तो अपने अपने स्थान पर अपने आप को सच्चाई पर समझते हैं । यदि वह ऐसा न समझते तो क्या वह सभी इस्लाम में विलीन न हो जाते ? इसी कारण उनको भी नियमानुसार यह अधिकार मिलेगा कि सरकार का तख़्ता उलटने के लिए हर समय कूटनीतियों (साज़िशों) में व्यस्त रहें ।

नेक इरादों या मानव जाति के सुधार के बहाने ''नेक लोगों'' की विभिन्न पार्टियों को उस समय की सरकार का तख़्ता उलटने की कदापि आज्ञा नहीं दी जा सकती । किसी की नेकी के बारे में उनके विरोध ऐसे जटिल और भयानक हो सकते हैं कि यदि दोनों को स्वीकार कर लिया जाए तो कोई पार्टी भी नेक न रहे । इसी उदाहरण पर विचार कीजिए कि मौलाना के समक्ष अहमदिय्यत का इस्लाम से कोई भी सम्बन्ध नहीं,

यह उम्मते मुहम्मदिय्या (हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के अनुयाई) में द्वेष उत्पन्न करने के लिए अंग्रेज़ों द्वारा लगाया गया पौधा है, जो उन्होंने इस उद्देश्य से लगाया था कि मुसलमानों को जिहाद (धर्मयुद्ध) से घृणित किया जाए और उनकी कार्य शक्ति को समाप्त कर दिया जाए। अहमदिय्यत का बीज इस कारण बोया गया है कि मुसलमानों में परस्पर मतभेद उत्पन्न कर दिए जाऐं और आस्तीन के सांप की भांति यह जमाअत इस्लाम में सम्मिलित हो कर एक गुप्त मगर अत्यन्त भयंकर आक्रमण द्वारा इस्लाम को जड़ से उखाड़ फैंके।

परन्तु मेरे निकट जमाअते अहमदिय्या पूर्णत्या इस्लाम की विजय और नवजीवन प्रदान करने के लिए स्थापित की गई है । इसका बीज अंग्रेज़ ने नहीं बल्कि स्वयं उस ख़ुदा ने अपने हाथ से बोया है जिस ने उम्मते मुहम्मदिय्या(स) (हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के अनुयायियों) से यह वादा किया था कि वह उन के सुधार के लिए एक महदी वरदान स्वरूप देगा और एक ऐसा मसीह उतारेगा जो (अपने न नकारे जा सकने वाले प्रमाणों द्वारा) सलीब (सूली) को तोड़ देगा । अतः मेरे निकट यह जमाअत उसी महदी(अ) और मसीह(अ) की जमाअत है । अतः एक ओर तो यह मानव जाति के सुधार के उद्देश्य से बिना किसी लालसा के और दरवेशों के रूप में नसीहत व उपदेश के कार्यों में व्यस्त है और दूसरी ओर ज़मीन के किनारों तक ईसाइयत से जूझ रही है और प्रत्येक मैदान में उसे पराजित कर रही है । मैं भला किस प्रकार विश्वास करूँ कि यह अंग्रेज़ों द्वारा लगाया गया पौधा है । क्या अंग्रेज़ों द्वारा लगाए गए पौधे का यही कार्य था कि वह अंग्रेज़ के धर्म अर्थात् ईसाइयत के पौधे को जड़ से उखाड़ फैंके और प्रत्येक देश से उसकी जड़ें उखाड़ फैंके, जहां जहां यह पहुँचे तसलीस[1] के पौधे सूखने लगें और एकेश्वरवाद के बीज बोए जाऐं, यह बीज हरे-भरे और ताज़ा

---

1 तसलीस : इसाइयों का सिद्धांत कि बाप (खुदा) बेटा (यसूह मसीह) और रुहुलकुदुस (आकाशवाणी लाने वाला फरिश्ता) तीनों मिल कर भी ख़ुदा हैं और अलग अलग भी ख़ुदा हैं ।

लहलहाते हुए अंकुरों के रूप में फूटें और शीघ्र-शीघ्र बढ़ने लगें । बलिष्ठ और जवान हों और फूलें, फलें । उनके फूल सुन्दर एवं सुगन्धित हों । फल लुभावने और मीठे । और हरी-भरी डालियों की छांव शांतिमय हो। नेक आत्माऐं पक्षियों की भांति उनकी डाली-डाली पर एकेऐश्वरवाद के गीत गाऐं । यदि अंग्रेज़ के स्वयं लगाए हुए पौधों ने यही कार्य करने थे तो काश— अंग्रेज़ अपनी सत्ता के समय में ऐसे सद्‌गुणों वाले और भी पौधे स्वयं लगा जाते ताकि इस्लाम कल जीवित होने के स्थान पर आज जीवित हो जाता और ईसाइयत कल मरने के स्थान पर आज मर जाती ।

अब देखिये कि अहमदिय्यत के बारे में मेरा विश्वास और आस्था उस फ़त्वे से कितना भिन्न है जो मौलाना मौदूदी इस जमाअत (अहमदिय्या) के बारे में निश्चित फ़र्माते हैं । मैं तो इस जमाअत की इमारत को उस घनिष्ट प्रेम पर स्थापित देखता हूँ जो अटल रूप से इस जमाअत के संस्थापक(अ) के हृदय में ख़ुदा और उसके रसूल(स) के लिए था, और जिसका वर्णन आप अपने एक (फ़ारसी) पद्य में इस प्रकार फ़र्माते हैं कि :-

बाद अज़ ख़ुदा बइश्क़े मुहम्मद(स) मुख़म्मरम्,
गर कुफ़र ईं बवद बख़ुदा सख़्त काफ़िरम ।

अर्थात् ''मैं तो ख़ुदा के पश्चात् मुहम्मद (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) के प्रेम में लीन हूँ । यदि कुफ़र यही है तो ख़ुदा की सौगन्ध मैं अत्यन्त क़ाफ़िर हूँ ।''

परन्तु मौलाना के निकट इस जमाअत की जड़ें इंग्लैंड की भूमि में गड़ी हुई हैं । क्या कोई भी सम्बन्ध है इन दोनों आस्थाओं में ?

फिर इस उदाहरण को उल्टा करके इस प्रकार भी देख लीजिए कि मौलाना के निकट ''जमाअते इस्लामी'' इस लिए स्थापित की गई है कि ''सालिहीन'' (नेक लोगों) की एक पार्टी तैयार की जाए जो इस्लामी इबादात को लम्बे समय तक अत्यन्त सख़्ती के साथ अदा करने के पश्चात् इस योग्य हो जाए कि इस्लाम उनसे कह सके कि :-

''हां अब तुम समस्त धरती पर ख़ुदा के सबसे नेक बन्दे हो । अतः आगे बड़ो, लड़ कर ख़ुदा के विद्रोहियों को

सत्ता से वंचित कर दो और सत्ता के अधिकार अपने हाथ में ले लो।''

अतः मौलाना के प्रयत्नों से भूमि पर ख़ुदा के सबसे अधिक नेक बंदों की पार्टी तैयार हो चुकी है और अब केवल इस बात की प्रतीक्षा है कि कब इतनी शक्ति उत्पन्न हो कि ''लड़ कर ख़ुदा के विद्रोहियों को सत्ता से वंचित'' करके ''सत्ता के अधिकार अपने हाथ में'' ले लिए जायें।

मौलाना समझते हैं कि यह पार्टी पूर्णत्या संसार के सुधार और इस्लाम का बोल बाला करने के उद्देश्य से स्थापित की गई है ताकि अल्लाह के अतिरिक्त किसी और का ख़्याल मिटा दिया जाए और तलवार की नोक से अल्लाह का ख़्याल दिलों पर अंकित कर दिया जाए ।

परन्तु मैं यह विश्वास रखता हूँ कि यह बिल्कुल ग़ल्त और निराधार बात है कि मौदूदी पार्टी के मेंबर ''समस्त भूमि पर ख़ुदा के सबसे अधिक नेक बन्दे'' हैं । मेरा यह ईमान (आस्था) है कि यद्यपि हमें यह अधिकार तो प्राप्त है कि हम सिद्धान्तों के अनुसार किसी पार्टी या धर्म से सम्बन्धित यह निर्णय लें कि वह सच्चाई पर आधारित हैं परन्तु हमें यह अधिकार कदापि नहीं पहुँचता कि इस संसार में अपने सम्बन्ध में यह फ़त्वा दें कि हम नेक और सदाचारी हैं, अतिरिक्त इसके कि सदाचार के निसंदेह लक्षण प्रकट हों और अल्लाह तआला के प्रेम की निशानियां दिखाई देने लगें । जिस प्रकार वह पहले अपने प्यारे सदाचारियों से वार्तालाप करता रहा है अब भी वार्तालाप करे । जिस प्रकार वह पहले उम्मत (हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के अनुयायियों) के सूफ़ियों और वरिष्ठों पर प्रकट होता रहा है अब भी सदाचारी का दावा करने वालों पर प्रकट हो । उनकी सहायता फ़र्माए और अपने कथन और कर्म के प्रमाण से यह बात प्रमाणित फ़र्मा दे कि सदाचारी का दावा करने वाले वास्तव में सदाचारी हैं, वरन् इन्सान दिखावे और आत्म प्रशंसा के चक्कर में ऐसा फंसा हुआ है कि उसे स्वयं अपनी आत्मा ही की सुध नहीं। वह ख़ुदा ही अत्यधिक जानता है जो दिलों के प्रत्येक राज़ से परिचित है और मानव, प्रकृति की पाताल तक ख़बर रखता है कि कौन

सदाचारी है और कौन नहीं ।

अत: मेरे निकट मौदूदी साहिब का यह दावा बिल्कुल निराधार है और यह भी बिल्कुल ग़ल्त है कि ''जमाअते इस्लामी'' इस्लाम का बोल बाला करने के लिए स्थापित की गई है । क्योंकि यदि इस पार्टी के वही सिद्धान्त हैं जो मौलाना मौदूदी के हैं तो यह इस्लाम का बोल बाला नहीं कर रही बल्कि इस्लाम को संसार की दृष्टि में अपमानित कर रही है, और मानव प्रकृति को इस पवित्र धर्म से अत्यन्त घृणित कर रही है । पाकिस्तान की मुसलमान बहुमत के वातावरण में बैठे हुए मौलाना मौदूदी साहिब इस्लाम के बोल बाला होने के जितने चाहें नारे लगा लें परन्तु कुछ हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की ''इस्लाम के प्रचार'' और आपकी ''पॉलीसी'' (नीति) के बारे में अपने दृष्टिकोण ले कर ग़ैर इस्लामी देशों में प्रचार के लिए तो निकल कर देखें । ख़ूब खुल जाएगा कि इन दृष्टिकोणों से इस्लाम का कितना बोल-बाला हो रहा है । ज़रा इस सिद्धान्त को हाथ में लेकर कि हज़रत ईसा अलैहिस्सलाम अभी तक आसमान पर जीवित विद्यमान हैं किसी ईसाई देश को इस्लाम की ओर बुला कर तो देखें और इस हथियार से सलीब तोड़ने का प्रयत्न तो करें, फिर मैं उनसे पूछूंगा कि बताइए यह मौदूदी दृष्टिकोण इस्लाम और उसके पवित्र रसूल सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के नाम का बोल बाला कर रहे हैं या दशा प्रतिकूल है ?

सच यही है और इसी पर मेरा ईमान (आस्था) है कि इन दृष्टिकोणों से अवश्य ही हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का अपमान होता है, इस कारण में मौदूदी पार्टी को कदापि इस्लाम का मित्र नहीं समझता । केवल यही नहीं बल्कि मुझे इस पार्टी में और इसकी कार्यविधि में से समाजवाद की दुर्गन्ध आती है और इसका बीज रूस की धरती में बोया हुआ दिखाई पड़ता है और आध्यात्मिकता पूर्णत्या लुप्त दिखाई देती है ।

अब देख लें कि हमारी घोषणाऐं हमें अपनी दृष्टि में कितनी अबोध और नेक दिखाई देती हैं परन्तु जब एक दूसरे की दृष्टि से इनको देखें तो...

अलअमानो-वल-हफ़ीज़ !...

अर्थात् इन बातों से (ख़ुदा की पनाह व रक्षा चाहते हैं ।)

इस उदाहरण को यदि उम्मत (हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के अनुयायी) की शेष पार्टियों पर फैला दिया जाए और प्रत्येक की प्रत्येक से इसी प्रकार तुलना की जाए तो इस दृष्टिकोण की वास्तविकता खुल जाएगी कि मानव सुधार हेतु और झगड़े और अत्याचार और विद्रोह को संसार से दूर करने के लिए लड़ कर सत्ता पर अधिकार करना वैध है ।

मैं जब इस मौदूदी दृष्टिकोण को देखता हूँ तो मुझे वह प्रसिद्ध कथन याद आ जाता है कि :-

''नर्क का मार्ग 'सत्संकल्प' की ईंटों से बना हुआ है ।''

और अन्तिम निर्णायिक निर्णय मांगते हुए जब मैं क़ुर्आन-ए-करीम पर दृष्टि डालता हूँ तो इस आयत पर दृष्टि ठहर जाती है कि :-

وَإِذَا قِيلَ لَهُمْ لَا تُفْسِدُوا فِي الْأَرْضِ قَالُوا إِنَّمَا نَحْنُ مُصْلِحُونَ ۝ أَلَا إِنَّهُمْ هُمُ الْمُفْسِدُونَ وَلَٰكِن لَّا يَشْعُرُونَ ۝ (البقرہ:۱۲-۱۳)

(अलबक़रह: : 12, 13)

''जब उनसे कहा जाता है कि धरती पर झगड़ा न करो तो कहते हैं हम तो सदाचारियों की पार्टी हैं । होशियार ! यही झगड़ालू हैं परन्तु जानते नहीं ।''

अल्लाह, अल्लाह ! कितना प्यारा कलाम (कथन) है और इस छोटे से वाक्य में कैसी कैसी सदैवी सच्चाइयां भरी हुई हैं । इस आयत का एक एक अंश अपने अन्दर मानव प्रकृति के गहरे राज़ लिए हुए है ।

जब उनसे कहा जाता है कि धरती में झगड़ा न करो तो कहते हैं हम तो सदाचारियों की पार्टी हैं । ख़बरदार ! यही झगड़ालू हैं परन्तु जानते नहीं !

क़त्ले मुर्तद
(धर्म परिवर्तन करने वाले का वध)
मौदूदी की दृष्टि में

मौलाना की सत्ता प्राप्ति की लालसा प्रत्येक कैद व बंधन से स्वतन्त्र है और प्रत्येक मैदान में उनकी हिंसक प्रकृति के साथ साथ जोश मारती है। उनका क़त्ले मुर्तद (धर्म परिवर्तन करने वाले का वध) का सिद्धान्त भी इसी का खिलाया हुआ एक फूल है। और अपने विशिष्ट ढंग के अनुसार यह इस सिद्धान्त को भी हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम से सम्बन्धित करते हैं। अत: इस विषय पर एक पुस्तक "मुर्तद (धर्म परिवर्तन) की सज़ा इस्लामी क़ानून में" रची है जिसमें अत्यन्त बहादुरी से हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की ओर इस दृष्टिकोण को सम्बन्धित किया है, और हज़रत अबुबकर(र) की उस सैनिक कार्यवाही से उदाहरण लिया है जो आप ने ज़कात का इनकार करने वालों का विद्रोह समाप्त करने के लिए फ़र्माई थी। जहाँ तक मौलाना के प्रस्तुत किए अनुलेखकृत व बौद्धिक प्रमाणों पर वर्णात्मक विवाद का सम्बन्ध है, यह बात एक अलग पुस्तक की मांग करती है। अत: मैं यहां उसके कुछ एक पहलुओं के वर्णन को ही पर्याप्त समझूंगा।

यद्यपि यह ठीक है कि और भी इस्लामी विद्वानों ने जो विश्वसनीय रूप से नेक दिल और सत्संकल्पी थे, इस समस्या पर ठोकर खाई है परन्तु उनकी ठोकर और मौलाना मौदूदी की ठोकर में एक भारी अंतर है और मैं पहले उसी अंतर की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित

कराना चाहता हूँ । उन विद्वानों की ग़ल्ती एक फ़िक़ही ग़ल्ती थी और उनकी आत्मा की हिंसा का उसमें कोई हाथ न था । अत: यह होते हुए भी कि वह ईमानदारी से इस बात के समर्थक थे कि इस्लाम में धर्म परिवर्तन की सज़ा वध है उनके समक्ष मुसलमान की परिभाषा इतनी विस्तृत थी कि उससे मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के अनुयायियों में किसी क़त्ले आम का प्रश्न ही उत्पन्न न होता था । और इस आदेश का पालन उसी दशा में हो सकता था कि जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे धर्म से आकर इस्लाम में शामिल हो, फिर धर्म परिवर्तन कर ले और स्पष्ट रूप से कहे कि मैं मुसलमान नहीं हूँ । इस पर भी स्वयं इस दृष्टिकोण के समर्थक विद्वानों में से कुछ का यह फ़तवा था कि ऐसे व्यक्ति को पश्चाताप के लिए असीमित समय देना चाहिए । इससे विश्वसनीय रूप से यह प्रमाणित होता है कि उनकी यह भ्रांति इस इच्छा पर आधारित न थी कि मानव जाति की गर्दनें उनके हाथ में आ जाएँ और वह दिल खोल कर ख़ुदाई करें । कदापि उनको यह शौक़ व रुचि नहीं थी कि वह ज़बरदस्ती पहले कल्मा पढ़ने वाले मुसलमानों पर कुफ़्र का निषेध लगा कर उनको क़ाफ़िर घोषित कर दें फिर धर्म परिवर्तन करने वाले के वध का सिद्धान्त गोद में लेकर घात लगाकर बैठे रहें कि कब सत्ता प्राप्त हो और कब हम धर्म परिवर्तन करने वालों के ख़ून की नदियां बहा दें ।

परन्तु युरोप की अन्धकारमय शताब्दियों के धार्मिक सुधारकों की भांति जिनके निकट ईसाई धर्म परिवर्तन करने की सज़ा वध थी, और ईसाइयत से भावार्थ वह ईसाइयत थी जो उनके दृष्टिकोण के अनुसार हो। मौदूदी साहिब के निकट भी इस्लाम धर्म से परिवर्तन की सज़ा वध है और इस्लाम से भावार्थ वह इस्लाम है जिसे मौदूदी साहिब या उनके कोई उत्तराधिकारी इस्लाम निर्धारित कर दें । अत: मौदूदी "सत्ता के समय" में इस बात का अन्तिम निर्णय प्रत्येक दशा में किसी मौदूदी शासक ही के हाथ में होगा कि कौन मुसलमान और कौन इस्लाम धर्म को छोड़ने के अधीन आता है । यह निर्णय क्या होगा ? इस प्रश्न का उत्तर नि:संदेह रूप में मौलाना की पुस्तकों (रचनाओं) में दिया जा चुका है ।

परन्तु इस बारे में मौलाना के विचार संकलित करने से पहले मैं ज़रूरी समझता हूँ कि संभवतः संक्षेप से हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की इस आरोप से मुक्ति प्रमाणित करूँ कि نعوذ باللہ (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) आप(स) भी इस सिद्धान्त के समर्थक थे कि इस्लाम को छोड़ कर कोई दूसरा धर्म अपनाने की सज़ा इस्लामी क़ानून में वध है ।

यदि किसी व्यक्ति से कोई विचार या कार्य सम्बन्धित किया जाए तो प्राकृतिक रूप से दिल में प्रश्न उठता है कि क्या वह दावा या कार्य उस व्यक्ति के उन सदाचारों या शिष्टाचारों के अनुसार है या नहीं, जिनकी जानकारी है । इस कसौटी पर हम बहुत सी बातों को दैनिक जीवन में परखते हैं, और केवल इन्सान पर ही यह चीज़ नहीं लागू होती, बल्कि संसार की प्रत्येक चीज़ पर होती है । उदाहरणार्थ यदि कोई आपसे कहे कि मैंने जंगल में एक घोड़ा देखा जो शेर को चीर फाड़ कर खा रहा था या हिरण का एक बच्चा देखा जिसने देखते ही देखते एक चीते पर हमला करके उसके टुकड़े उड़ा दिए तो आप एक क्षण के लिए भी यह विश्वास नहीं कर सकते कि ऐसा ही हुआ होगा, क्योंकि यह दावा घोड़े और हिरण की प्रकृति के पूर्णतया विरुद्ध है । इसी प्रकार धर्म परिवर्तन करने वाले के वध का सिद्धान्त प्रत्यक्ष रूप से एक ऐसा अप्राकृतिक और अन्यायपूर्ण कार्य है कि हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की ओर इस दृष्टिकोण को किसी भी प्रकार से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता । आप का तो संदेश ही यही था कि संसार वाले अपने धर्मों को छोड़ कर आप(स) का धर्म स्वीकार कर लें फिर आप स्वयं किस प्रकार धर्म परिवर्तन पर किसी प्रकार की हिंसा की आज्ञा दे सकते थे । जब लोग कोई दूसरा धर्म छोड़ कर आप(स) के धर्म में सम्मिलित होते थे, और इस दोष की सज़ा स्वरूप उन को मारा या सताया जाता था तो आप(स) इसको खुला-खुला अत्याचार निर्धारित करते थे और इन्सान के ज़मीर (अन्तर आत्मा) की स्वतन्त्रता के विरुद्ध एक अत्यन्त अन्यायपूर्ण पग समझते थे फिर यह कैसे सम्भव था कि वह सब न्यायप्रिय व्यक्तियों से बढ़ कर न्याय करने वाला और सब न्याय प्रेमियों से अधिक न्याय

प्रेमी अपने बारे में इस कसौटी को पूर्णत्या भुला दे । जब लोग किसी को धर्म परिवर्तन करने पर मारें तो उनको अत्यन्त अत्याचारी कहे और जब अपना धर्म छोड़ कर कोई दूसरी ओर जाए तो उसके वध का धर्म आदेश जारी करे । इस प्रकार की कूटनीति तो किसी संसारिक राजनीतिज्ञ से सम्बन्धित करना भी उसका अत्यन्त अपमान समझा जाता है, कहां यह कि इसे सब नबियों के सरदार हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम से सम्बन्धित किया जाए । इसके अतिरिक्त यदि आप(स) के साधारण शिष्टाचार की ओर भी जिसकी कुछ झलकियां पहले गुज़र चुकी हैं, दृष्टि डाली जाए तो इस सिद्धान्त को आपसे सम्बंधित करने का सामर्थ्य नहीं रहती । जिस प्रकार सूर्य के बारे में चाहे हज़ार दलीलें दी जाएँ, कोई यह मान नहीं सकता कि वह प्रकाश के स्थान पर अन्धकार की वर्षा करता है । इसी प्रकार उस सम्पूर्ण इनसान (सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम) की ओर यह अप्राकृतिक कार्य सम्बन्धित करने की कोई गुंजाईश नहीं । परन्तु यदि कोई कहे कि यह पूर्णत्या अन्याय है ही नहीं तो इसका उत्तर मेरे पास एक अत्यन्त आश्चर्य जनक ख़ामोशी के और कुछ नहीं ।

दूसरी बात विचारने योग्य यह है कि क़ुर्आन-ए-करीम जो धार्मिक इतिहास प्रस्तुत करता है, उस पर एक दृष्टि डालने से ही पता चल जाता है कि पिछले नबियों में से किसी एक ने भी कभी धर्म परिवर्तन की सज़ा मृत्यु या देश निकाला निर्धारित नहीं की । इसके विपरीत उनके समस्त विरोधियों ने धर्म परिवर्तन की सज़ा मृत्यु या देश निकाला निर्धारित की और इसी के अनुसार कार्य करने का प्रयत्न करते रहे । ख़ुदा तआला क़ुर्आन-ए-करीम में उनके इस ढंग को अत्यन्त घृणित और सज़ा योग्य निर्धारित करता है और इसकी सज़ा विश्वसनीय रूप से हलाकत और ईश्वरीय प्रकोप प्रस्तावित फ़र्माता है । फिर मैं यह किस प्रकार मान लूँ कि मेरे पवित्र आक़ा(स) (स्वामी) ने उन समस्त अबोध नबियों की सुन्नत (कार्यविधि) को छोड़ कर के نعوذ با لله (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) उनके विरोधियों की घृणित और अवैध सुन्नत (कार्यविधि) को अपना लिया और उसी को सही निर्धारित कर दिया । यह मेरे निकट

सूर्य को अन्धकार से सम्बन्धित करने से भी अधिक असम्भव है । परन्तु इस पहलू पर क्योंकि पुस्तक के पहले अध्याय ही में अत्यन्त वर्णात्मक ढंग से प्रकाश डाला गया है, इस कारण कुछ और कहने की आवश्यकता नहीं समझता ।

तीसरी निर्णायक बात यह है कि क़ुर्आन-ए-करीम हज़ूर सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के युग का जो इतिहास प्रस्तुत करता है वह स्पष्टतापूर्ण इस विचार को झूठा एवं निराधार घोषित कर रहा है और हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के युग के प्रस्तुत किए गए इतिहास से सम्बन्धित मुसलमान विद्वान तो क्या समस्त यूरोपियन मुसतशरिक़ीन भी चाहे कैसे ही कट्टर क्यों न हों, यह माने बिना नहीं रह सके कि यह निःसंदेह माननीय है । क़ुर्आन-ए-करीम के प्रस्तुत किए हुए जिन इतिहासिक प्रमाणों की ओर मैंने संकेत किया है उनका वर्णनात्मक ब्यौरा انشآء الله (यनि अल्लाह ने चाहा तो) इस अध्याय के अन्त में दिया जाएगा । फिर भी यह तीनों प्रमाण अकेले-अकेले भी ऐसे सुदृढ़ और ठोस और स्पष्ट हैं कि उनके मुक़ाबले पर प्रत्येक दूसरे प्रमाण ठुकराए जाने योग्य है । और बातों को छोड़ कर केवल हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की न्यायप्रियता पर ही दृष्टि डाली जाए तो धर्म परिवर्तन करने वाले के वध के दृष्टिकोण का यह भवन रेत के क़िले की भांति स्वयं ढय जाता है । मौदूदी साहिब यदि इसके मुक़ाबले पर यह दलील प्रस्तुत फर्माएँ कि बहुत से बड़े-बड़े इस्लामी विद्वान इस दृष्टिकोण के समर्थक थे तो मौलाना के इस तर्क को मैं ऐसा ही समझता हूँ जैसे कोई शाख़ा को पहले और जड़ को आख़िर में कर दे । यह विद्वान चाहे कितने ही बड़े स्थान पर क्यों न हों फिर भी शरई बातों (धार्मिक बातों) में ग़ल्ती से पवित्र नहीं थे । परन्तु हमारे आक़ा (स्वामी) हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ग़ल्ती से पवित्र थे, इस कारण यदि 1400 वर्षों में विभिन्न समय में पैदा होने वाले समस्त धार्मिक विद्वान एक आवाज़ में कोई ऐसी बात कहें जिसे मान लेने से हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की सच्चाई, अमानत, विश्वास और न्यायप्रियता पर कोई आपत्ति आती हो तो मैं उसे मानने के लिए कदापि

तैय्यार न हूँगा, क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह विद्वान अपने उच्चतम पदों पर विद्यमान होने पर भी ठोकर खा सकते हैं और खाते रहे हैं, परन्तु हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के सद्गुण शंका रहित हैं। इन विद्वानों के पारस्परिक मतभेद ही इस बात को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं कि यह ग़ल्तियों से रिक्त न थे। यदि दस टिप्पणियां एक दूसरे से विभिन्न हों तो प्रत्येक दशा में एक ही ठीक होगी और शेष नौ ग़ल्त होगी, बल्कि यह भी सम्भव है कि एक भी सही न हो। अत: इस प्रश्न को छोड़ कर कि विद्वान कहीं व्यक्तिगत अथवा सामूहिक ठोकर खा सकते हैं या नहीं, एक बात जो प्रत्येक शंका से रहित और विश्वसनीय रूप से ठीक है वह यही है कि शाख़ों की जड़ पर बलि दी जा सकती है, जड़ की शाख़ों पर नहीं। कोई हदीस जिसके रावी (हदीस ब्यान करने वाले) चाहे कितने ही सच्चे हों, यदि क़ुर्आन-ए-करीम की किसी आयत के विश्वसनीय रूप से विरुद्ध हो तो क़ुर्आन-ए-करीम के मुकाबले पर उसे किसी दशा में प्रार्थमिकता नहीं दी जा सकती। इसी प्रकार हर वह बहुमत जो क़ुर्आन-ए-करीम के किसी वर्णन के विश्वसनीय रूप से विरुद्ध हो या हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के सद्गुणों पर बुरे रंग में प्रकाश डाले, बिना किसी हिचकिचाहट के तुरन्त ठुकरा देने के योग्य है।

इस व्याख्या के पश्चात् अब हम लेख के उस भाग की ओर वापिस आते हैं जहां हमने उसे छोड़ा था। प्रश्न यह था कि मौदूदी साहिब के निकट मुसलमान कहलाने वालों के इस जन-समूह में कौन-कौन से सम्प्रदाय मुरतद (धर्म परिवर्तन करने वाले) गिने जायेंगे ताकि इस बात का कुछ अनुमान लगाया जा सके कि यदि कभी उनको सत्ता प्राप्त हो तो मानव जाति में से कितनों की गर्दनें उन के हाथ में आजाएँगी।

मौलाना के निकट अहमदी तो ख़ैर "मुरतद" हैं ही और प्रत्येक दशा में एक "ग़ैर मुस्लिम अल्प संख्यक" हैं परन्तु यह धर्म परिवर्तन और कुफ़्र केवल उन तक ही सीमित नहीं उनके अतिरिक्त अहले क़ुर्आन अर्थात परवैज़ साहिब के दृष्टिकोण के समर्थक भी नि:संदेह रूप से काफ़िर, और इस्लाम के घेरे से बाहर या दूसरे शब्दों में मुरतद (धर्म

बदलने वाले) कल्पित होंगे, बल्कि उससे भी बढ़ कर । उनका कुफ़र "क़ादियानियों" से भी अधिक घोर गिना जाएगा (इस अनुसार संभव है उनको तुलनात्मक रूप से अधिक तकलीफ़ें देकर मारा जाए) अतः जमाअते इस्लामी के अनुवादक "तसनीम" में प्रकाशित होने वाले मौलाना अमीन अहसन साहिब इस्लाही के एक फ़त्वा (धर्म आदेश) का अध्ययन कीजिए । यह फ़त्वा (धर्म-आदेश) उन दिनों का है जब अभी मौलाना अमीन अहसन साहिब इसलाही मौदूदी साहिब से विमुख नहीं हुए थे और उनका दायां बाज़ू गिने जाते थे । मौलाना इसलाही साहिब फ़र्माते हैं :-

"कुछ लोग इस्लामी शरीअत के विरोध का प्रसंग देकर मुसलमानों को यह परामर्श देते हैं कि इस देश में इस्लामी शरीअत के लागू होने की तो कोई संभावना नहीं, परन्तु क़ुर्आनि-ए-करीम के सिद्धान्तों पर इस देश में सरकार स्थापित करो । यदि यह परामर्श देने वालों का अर्थ यह है कि शरीअत केवल इतनी ही है जितनी क़ुर्आन में है, शेष उसके अतिरिक्त जो है शरीअत नहीं है तो यह स्पष्ट रूप से कुफ़र है और बिल्कुल उसी प्रकार का कुफ़र है जिस प्रकार का कुफ़र क़ादियानियों का है, बल्कि कुछ उससे भी सख़्त और घोर है ।"

(पुस्तक "मिज़ाज शनासे रसूल" से लिया गया, सुप्रसंग पत्रिका "तस्नीम" 15-8, 1952)

चलिऐ अहमदियों और अहले क़ुर्आन का झगड़ा तो निपटा लिया गया । अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या कुफ़र और धर्म परिवर्तन बस इन ही दो सम्प्रदायों पर समाप्त हो जाता है ? तो इस प्रश्न की जांच पड़ताल में हम जैसे जैसे मौदूदी लिटरैचर का अध्ययन करते हैं यह वास्तविकता खुलती चली जाती है कि मौदूदियत के अतिरिक्त मौदूदी दृष्टि में प्रत्येक दूसरी चीज़ कुफ़र ही कुफ़र है । आइए ! "मुसलमानों" के "मुसलमान सम्प्रदायों" का हाल देखते हैं कि मौदूदी साहिब के निकट उनका इस्लाम कितने पानी में है । इस जनसमूह पर एक उचटती

हुई दृष्टि डालते हुए मौदूदी साहिब फ़र्माते हैं :-

"यह जनसमूह जिसको मुसलमान जाति कहा जाता है इसकी दशा यह है कि इसके 999 प्रति हज़ार व्यक्ति न तो इस्लाम का ज्ञान रखते हैं न सच और झूठ की पहचान से परिचित हैं। न उनका शिष्टाचारिक दृष्टिकोण और बौद्धिक व्यवहार इस्लाम के अनुसार परिवर्तित हुआ है । बाप से बेटे और बेटे से पोते को बस मुसलमान का नाम मिलता चला आ रहा है । इसलिए यह मुसलमान हैं । न उन्होंने सच्चाई को सच्चाई समझ कर उसे माना है और न झूठ को झूठ जान कर उसे छोड़ा है । उनके बहुमत के हाथ में बागें देकर यदि कोई आशा रखता है कि गाड़ी इस्लाम के मार्ग पर चलेगी तो उसकी प्रसन्नता प्रशंसनीय नहीं है ।"

(मुसलमान और मौजूदा सियासी कश्म-कश, तृतीय भाग पृ. 130)

फिर फ़र्माते हैं :-

"लोकतन्त्रीय चुनावों का उदाहरण बिल्कुल ऐसा है जैसे दूध को बिलो कर मक्खन निकाला जाता है । यदि दूध विषैला हो तो उससे जो मक्खन निकलेगा । प्राकृतिक बात है वह दूध से अधिक विषैला होगा... अतः जिन लोगों का यह विचार है कि यदि मुस्लिम बहुमत के क्षेत्र हिन्दु जन-समूह की सत्ता से स्वतन्त्र हो जाएँ और यहां लोकतन्त्र स्थापित हो जाए तो इस प्रकार ईश्वरीय सत्ता स्थापित हो जाएगी तो उनका विचार ग़ल्त है । वास्तव में इसके परिणामस्वरूप जो कुछ प्राप्त होगा वह केवल मुसलमानों की काफ़िराना सरकार होगी ।"

(मुसलमान और मौजूदा सियासी कश्म-कश, तृतीय भाग, पृ. 136)

यदि अभी तक मौदूदियों के अतिरिक्त दूसरे "मुसलमानों" के सम्बन्ध में मौलाना ने फ़त्वे (धर्म-आदेश) की व्याख्या न हुई हो तो और व्याख्या हेतु एक और उदाहरण प्रस्तुत है :-

"यहां जिस जाति का नाम मुसलमान है वह प्रत्येक प्रकार की अचछी बुरी बातों से भरी हुई है । कैरेक्टर के अनुसार जितने टाईप (प्रकार) काफ़िरों में पाए जाते हैं इतने ही इस जाति में भी उपस्थित हैं । अदालतों में झूठी गवाहियां देने वालों को जितना ग़ैर कौमें एकत्र करती हैं, लगभग उसी अनुपात से यह भी एकत्र करते हैं । रिश्वत, चोरी, व्यभाचार, झूठ और दूसरे समस्त अश्लील आचरणों (अवगुणों) में यह काफ़िरों से कुछ कम नहीं हैं ।"

(मुसलमान और मौजूदा सियासी कश्म-कश, तृतीय भाग, पृ. 166)

क्या इन फ़त्वों के पश्चात भी किसी और कुफ़र के फ़त्वे की आवश्यकता शेष रह जाती है । यदि रहती है तो संभवत: इस विचार से कि यह फ़त्वा साधारण जनता अर्थात 999, प्रति हज़ार से सम्बन्धित होगा । मुसलमान विद्वानों और दूसरे नेताओं पर लागू नहीं हो सकता । परन्तु यह विचार ठीक नहीं, क्योंकि मौदूदी साहिब की दृष्टि में प्रत्येक वह जो मौदूदी नहीं एक ही लाठी से हांके जाने के योग्य हैं :-

"चाहे पश्चिमी शिक्षा व प्रशिक्षण प्राप्त राजनैतिक लीडर हों या धार्मिक विद्वान व धर्म आज्ञा देने वाले हों दोनों प्रकार के सुधारक अपने दृष्टिकोण और अपनी कूटनीति के अनुसार समान रूप से पथ भ्रष्ट हैं । दोनों सत्य के मार्ग से हट कर अन्धकारों में भटक रहे हैं, उनमें से किसी की दृष्टि भी मुसलमानों की दृष्टि नहीं ।"

(मुसलमान और मौजूदा सियासी कश्म-कश, तृतीय भाग, पृ. 95)

पाठक स्वयं निर्णय फ़र्माएं कि यदि सत्य मार्ग से हट जाने का नाम इरतिदाद (धर्म परिवर्तन) नहीं तो और क्या है ?

मौदूदी साहिब के ऊपरलिखित दोनों फ़त्वे (धर्म आज्ञा) पढ़ कर मुझे वह कथा याद आ जाती है कि किसी बादशाह को एक घोड़ा अत्यन्त प्रिय था । वह बहुत बीमार हो गया । बादशाह को यह कब सहन हो सकता था कि उसकी मृत्यु का समाचार सुने । आदेश दे दिया कि जो भी यह अशुभ समाचार सुनाएगा, मारा जाएगा परन्तु साथ ही इस का

भी पाबन्द कर दिया कि प्रत्येक आधे घंटे के बाद स्वास्थय का संदेश भिजवाते रहो । परन्तु भाग्य के समक्ष भला बादशाह बेचारे की क्या चलती थी ? अभी अधिक देर न गुज़री थी कि उस घोड़े ने तड़प-तड़प कर जान दे दी । तब शाही दरबार के अफ़सर बहुत चिंतित और परेशान हुए कि कौन बादशाह के समक्ष प्रस्तुत हो कर इस घोड़े की मृत्यु का समाचार सुनाए और स्वयं अपनी मृत्यु का आज्ञा पत्र ले कर आए।

अन्ततः उन्होंने एक निर्धन और असहाय व्यक्ति को पकड़ कर मजबूर किया कि वह बादशाह को जाकर यह अशुभ समाचार सुनाए । अब यदि वह उनकी बात का इनकार करता तो इन शाही अफ़सरों के हाथ मारा जाता यदि मान जाता तो बादशाह के प्रकोप का निशाना बनता । अतः ग़रीब अत्यन्त दुविधा में फंस गया । अर्थात अब इसके लिए एक कहावत के अनुसार दो ही मार्ग थे या तो किनारे पर खड़ा रहे और पीछा करने वाले शैतान के हाथों मारा जाए या फिर गहरे नीले समुद्र में कूद कर उसकी लहरों की गोद में सो जाए । वह ग़रीब और निर्बल तो था । परन्तु था बहुत होशियार । अन्ततः उसने इस फंदे से रिहाई का एक मार्ग सोच लिया और घोड़े की मृत्यु का समाचार बादशाह तक पहुँचाने के लिए तैय्यार हो गया । परन्तु उसने यह समाचार कुछ इस प्रकार सुनाया कि हे महाराजा धिराज ! बादशाह सलामत ! बधाई हो सौ बार बधाई हो, अब तो आप का घोड़ा बहुत आराम में है । बादशाह ने प्रसन्न हो कर पूछा कि इस शुभ समाचार की व्याख्या भी तो करो । उसने हाथ बांध कर निवेदन किया कि हज़ूर ! पहले तो वह अत्यन्त पीड़ा से तड़प रहा था अब शांति से लेटा हुआ है, पहले तो उसका अंग-अंग फड़क रहा था, अब तो वह आंख तक नहीं झपकाता । पहले तो दूर-दूर तक उसके दिल की धड़कनों की ध्वनि सुनाई देती थी अब तो छाती पर कान लगा कर भी सुनो तो आवाज़ नहीं आती । पहले तो सांस धौंकनी की भांति चल रहा था अब तो ऐसी शांति है कि सांसों का झंझट ही समाप्त हुआ ।

बादशाह ने जब यह सुना तो तिलमिला कर बोला कि ओ कमबख़्त ! यह क्यों नहीं कहता कि वह मर गया । तब उसने निवेदन

किया कि हज़ूर ! यह मैं नहीं कहता । यह तो आप कह रहे हैं, भला मेरा साहस कहां कि ऐसा अशुभ शब्द अपनी जीभ पर लाऊं ।

अत: यदि कोई जाति पथ भ्रष्ट हो, सत्य के मार्ग से हट चुकी हो, अन्धकार में भटक रही हो, उसकी दृष्टि मुसलमान की दृष्टि न रही हो, जितने टाईप काफ़िरों में पाए जाते हों, उस में पाए जाते हों तो उस जाति को क़ाफ़िर नहीं तो और क्या कहा जाएगा ? परन्तु सम्भवत: मौदूदी साहिब कह दें कि देखो तुम ही कह रहे हो मैं तो नहीं कहता ।

इसी कारण अब भी यदि किसी को विश्वास न हो कि ऐसा होना संभव है तो जमाअते इस्लामी से अलग हो जाने वालों से सम्बन्धित इरतिदाद (धर्म परिवर्तन) का फ़त्वा (धर्म आज्ञा) उसकी संतुष्टि के लिए पर्याप्त होगा :-

"यह वह मार्ग नहीं है जिसमें आगे बढ़ना और पीछे हट जाना दोनों एक हों । नहीं, यहां पीछे हट जाने का अर्थ इरतिदाद (धर्म परिवर्तन) के हैं ।"

(रोयेदाद जमाती इस्लामी, भाग पहला, पृ. 8)

अत: यदि जमाअते इस्लामी से अलग हो कर किसी दूसरी जाति में सम्मिलित हो जाने का नाम इरतिदाद (धर्म परिवर्तन) है तो दूसरी जमाअत का नाम कुफ़र नहीं तो और क्या हो सकता है ?

परन्तु यदि मैं ग़लत कह रहा हूँ तो मौदूदी साहिब ही ठीक (सही) फ़र्माएँ कि वह उन मुसलमानों को क्या समझते है जो हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम को अंतर्यामी समझते हैं और आपके भौतिक शरीर से इनकार करते हैं । और उन मुसलमानों को क्या समझते हैं जिनके निकट अल्लाह के वरिष्ठ व्यक्तियों की क़बरों पर जाकर अपनी मुरादें मांगना वैध है और वह उन मुसलमानों को क्या समझते हैं जो हज़रत अली रज़ियल्लाहो अन्हो के अतिरिक्त शेष सभी ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन(र) (हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के उत्तराधिकारी) को अपभोगी कहते हैं और उन पर और दूसरे सहाबा(र) पर हज़रत आइशा रज़ियल्लाहो अन्हा को सम्मिलित करके अपशब्द कहते और लानतें डालते हैं । वैसा उत्तर न दें जैसे घोड़े के मरने का समाचार

दिया गया है बल्कि बादशाह के शब्दों में बताइऐ कि उनको क्या कहते हैं।

पैदाईशी मुसलमान

यहां पहुँच कर एक बहुत ही आवश्यक प्रश्न उठता है कि यदि मान भी लिया जाए कि मुरतद (धर्म परिवर्तन करने वाले) की सज़ा क़त्ल है और यह भी मान लिया जाए कि मौदूदी साहिब के निकट उनकी पार्टी के अतिरिक्त सभी मुसलमान कहलाने वाले काफ़िर हैं तो इस कारण कि उन्होंने यह कुफ़र अपने माता-पिता से विरसा में लिया है, स्वयं मौलाना के निकट भी इनको मुरतद (धर्म परिवर्तन करने वाला) निर्धारित नहीं किया जा सकेगा बल्कि ''पैदाइशी काफ़िर'' गिने जाएँगे। इस प्रकार से मौलाना पर यह बड़ी ज़्यादती दिखती है कि उनकी ओर यह अक़ीदा (आस्था, सिद्धान्त) सम्बन्धित किया जाए कि वह समस्त पैदाइशी ''मुसलमानों'' को जिन के माता-पिता भी उनके निकट काफ़िर हैं, एक समय में काफ़िर भी समझते हैं और मुरतद (धर्म परिवर्तन करने वाला) भी। यह किस प्रकार संभव है ? मुझे स्वयं यह स्वीकार है कि यथार्थ के संसार में ऐसा होना असंभव नज़र आता है, परन्तु यदि यथार्थ की दुनिया ही न हो, यदि हिंसा की बादशाही हो और आम मानवीय बुद्धि की हिम्मत न हो कि वहां पर मार सके तो क्या तब भी ऐसा होना संभव नहीं है ? यहां तो हिंसा की बादशाही है और देश के काम इसी रीति के अनुसार तय पाते हैं कि :-

ख़िरद का नाम जुनूं रख दिया, जुनूं का ख़िरद,
जो चाहे आपका हुस्ने, करिश्मा साज़ करे।''

अत: इस रीति के अनुसार प्रत्येक वह ''काफ़िर'' जो ''मुसलमान'' कहलाता है और अपने प्रकार के ही मुसलमान काफ़िरों के घर में पैदा हुआ ''मुरतद'' कहलाएगा, और उसका वध आवश्यक होगा। क्योंकि यदि उनकी जान व सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त करना है तो इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहता कि प्रथम इन्हें पैदाइशी मुसलमान घोषित किया जाए, फिर यह आग्रह किया जाए कि वह

बालिग़ होने के पश्चात स्वयं ही काफ़िर हुए हैं, क्योंकि उनके माता-पिता ने उनका एक काफ़िराना वातावरण में प्रशिक्षण किया था । इसी कारण यह सारे पैदाइशी मुसलमान ''काफ़िर'' मुरतद हैं और उनका वध करना आवश्यक है ।

देखिए ! कैसी अद्‌भुत बादशाही रीति है कि जहां तक मौदूदियत और ग़ैर मौदूदियत का सम्बन्ध है, ग़ैर मौदूदियत कुफ़र है परन्तु जहां तक उस अधिकार का सम्बन्ध है कि एक पैदाइशी काफ़िर मौदूदियत के अतिरिक्त कोई और धर्म अपना ले वह पैदाइशी ''काफ़िर'' ''पैदाइशी मुसलमान'' के अन्तर्गत आ जाता है ।

यह चमत्कार केवल यहीं पर आकर समाप्त नहीं हो जाता, बल्कि यदि एक ओर एक ऐसे ''मुरतद'' के क़त्ल का उचित कारण जो पहले अपनी इच्छा से कुफ़र छोड़ कर मुसलमान हुआ था, यह प्रस्तुत किया जाता है कि जब उसे ज्ञान था कि यह एक एक तरफ़ा मार्ग है और इस से वापसी संभव नहीं तो पहले मुसलमान ही क्यों हुआ था तो दूसरी ओर एक ''पैदाईशी मुसलमान'' से धर्म परिवर्तन का अधिकार यह कह कर छीन लिया जाता है कि यद्यपि यह ठीक है कि उस विवश व्यक्ति का अपने जन्म के हालात पर कुछ अधिकार नहीं था और भाग्यवश बंधा-बंधाया एक मुसलमान घर में पैदा हो गया था, परन्तु फिर भी उसे धर्म परिवर्तन की आज्ञा नहीं दी जा सकती क्योंकि इससे तो बड़ी कठिनाइयां खड़ी हो जाएँगी । अतः इन्हीं न हल होने वाली समस्याओं की गुत्थियां सुलझाते हुए, मौलाना फ़र्माते हैं :-

''لَآ اِكْرَاهَ فِي الدِّيْنِ (ला इकराह फ़िद्दीने) का अर्थ यह है कि हम किसी को अपने दीन में आने के लिए विवश नहीं करते, और वास्तव में हमारा मार्ग यही है । परन्तु जिसे आकर वापिस जाना हो उसे हम पहले से चेतावनी दे देते हैं कि यह द्वार आने और जाने के लिए खुला हुआ नहीं है, अतः यदि आते हो तो यह फ़ैसला करके आओ कि वापिस नहीं जाना है, वरन् कृपा करके आओ ही नहीं ।''

मुझे لَآ اِكْرَاهَ فِي الدِّيْنِ की यह तफ़सीर (व्याख्या) पढ़ कर अहले

क़ुर्आन के लीडर परवैज़ साहिब का वह वाक्य याद आ जाता है जिसमें उन्होंने दूसरे शब्दों में मौदूदी साहिब के इस दृष्टिकोण को यूँ ब्यान किया है :-

"मौदूदी साहिब का इस्लाम भी मानो एक चूहेदान है 'आ तो सकता है चूहा परन्तु जा नहीं सकता ।" (संभवत: परवैज़ साहिब के यही व्यंग्य हैं जो उनको मौदूदी दृष्टि में इतना अत्यधिक रोष पात्र एवं प्रकोप भाजन बना रही हैं ।)

परन्तु इस बात से हट कर कि इस तफ़सीर (व्याख्या) में मौलाना ने इस आयते करीम: का वास्तव में मज़ाक़ उड़ाया है यदि कोई नादान अथवा मजबूर इस फ़ैसले के समक्ष शीष झुकाते हुए यह प्रश्न कर बैठे कि ठीक है जो आपने फ़र्माया मगर हज़रत - मैं स्वयं आया नहीं लाया गया हूँ – मैं तो पैदा ही मुसलमानों में हुआ था, मुझे क्या पता था कि यह एक तरफ़ा मार्ग है । और मुझ ग़रीब को क्या पता था कि मौदूदी सत्ता के दौर में पैदा हुँगा । तो इस प्रश्न के अर्थ (सारांश) को अपने शब्दों में दौहराते हुए मौलाना एक अजीबो-ग़रीब उत्तर देते हैं । मौलाना की सारी पंक्तियां निम्नलिखित हैं :-

"पैदाइशी मुसलमान"

इस क्रम में एक अन्तिम प्रश्न और शेष रह जाता है जो क़त्ले मुरतद (धर्म परिवर्तन करने वालों के वध) के आदेश पर बहुत से दिमाग़ों में दुविधा उत्पन्न करता है वह यह कि जो व्यक्ति पहले ग़ैर मुस्लिम था, फिर उसने अपने अधिकारवश इस्लाम स्वीकार किया और उसके पश्चात दोबारा कुफ़र अपना लिया उसके सम्बन्ध में तो आप कह सकते हैं कि उसने जान बूझ कर ग़ल्ती की । क्यों न ज़िम्मी[1] बन कर रहा और क्यों ऐसे इजतमाई दीन में प्रविष्ठ हुआ जिससे निकलने का द्वार उसे पता था कि बंद है, परन्तु उस व्यक्ति का मामला ज़रा भिन्न है जिसने इस्लाम

---

1 ज़िम्मी : इस्लामी शासन में रहने वाली ग़ैर मुस्लिम प्रजा ।

वयं न स्वीकार किया हो, बल्कि मुसलमान माता पिता के घर में पैदा होने के कारण इस्लाम अपने आप उसका दीन बन गया हो । ऐसा व्यक्ति यदि होश संभालने के पश्चात् इस्लाम से संतुष्ट न हो और उस से निकल जाना चाहे तो यह बड़ा अत्याचार है कि आप उसे भी सज़ा-ए-मौत की धमकी देकर इस्लाम के अन्दर रहने पर मजबूर करते हैं । यह न केवल एक ज़्यादती प्रतीत होती है बल्कि इसका एक आवश्यक परिणाम यह भी है कि पैदाइशी मुसलमानों की एक अच्छी ख़ासी संख्या इस्लाम की सम्मिलित व्यवस्था के अन्दर पलती रहे । इस संदेह का एक उत्तर सिद्धान्तिक है और एक व्यवहारिक है । सिद्धान्तिक उत्तर यह है कि पैदाइशी और इख़तियारी अनुयाईयों के मध्य आदेशों में न भिन्नता की जा सकती है और न किसी दीन ने कभी उनके मध्य भेद किया है । प्रत्येक धर्म अपने अनुयाइयों की संतान को प्राकृतिक रूप से अपना अनुयाई निर्धारित करता है और उन पर वह सभी आदेश जारी करता है जो इख़तियारी (इच्छुक) अनुयाइयों पर जारी किए जा सकते हैं । यह बात व्यवहारिक रूप से बिल्कुल असंभव है और विवेकानुसार बिल्कुल निरर्थक है कि दीन के अनुयाई या राजनैतिक परिभाषा के अनुसार जनता तथा शहर निवासियों की संतान का आरम्भिक काफ़िरों या ग़ैरों की भांति पालन-पोषण किया जाए और वह बालिग़ हो जाएँ तो इस बात का निर्णय उनके अधिकार पर छोड़ दिया जाए कि वह इस दीन की पैरवी या इस स्टेट की वफ़ादारी स्वीकार करते हैं या नहीं जिसमें वह पैदा हुए हैं । इस भांति तो कोई सामूहिक व्यवस्था कभी संसार में चल नहीं सकती ।'' (मुरतद की सज़ा इस्लामी क़ानून में पृ. 76-77)

मैं इस प्रश्न का निर्णय पाठकों पर छोड़ देता हूँ कि मौलाना के इस विशिष्ट तर्क शैली से मानवीय बुद्धि संतुष्ट हो सकती है या नहीं । मैं निजि रूप से इस परिणाम तक पहुँचा हूँ कि जब भी वह किसी सूक्ष्म समस्या के वातावरण में पग रखते हैं तो उनकी दृष्टि दयनीय सीमा तक धुंधला जाती है और विभिन्न शक्लों और चित्रों में भेद नहीं कर सकती । उनके इस्लामी रियासत के दृष्टिकोण पर जो धुंध छाई है और जिसके आधार पर उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से मौलिक ग़ल्तियां की हैं इस समय उनके

वर्णन का यहां अवसर नहीं वरन् एक किताब के अन्दर किताब बन जाए। फिर भी इस तर्क के संबन्ध में जो अभी पाठकों की दृष्टि से गुज़रा है मैं मौलाना का ध्यान एक छोटी सी ग़लती की ओर केन्द्रित कराना चाहता हूँ जिसको ठीक करना उनके हिंसक दृष्टिकोण में और विस्तार पैदा करने का कारण होगा ।

इस दलील का केन्द्र बिन्दु यह है कि "प्रत्येक दीन अपने अनुयाइयों की संतान को प्राकृतिक रूप से अपना अनुयाई निर्धारित करता है ।" इस लिए मुसलमान कहलाने वालों की संतान (चाहे उस संतान के माता-पिता मौदूदी साहिब की दृष्टि में व्यवहारिक रूप से काफ़िर ही हों) प्रत्येक दशा में इस्लाम की सम्पत्ति कहलाएगी । अत: जब इस्लाम का स्वामित्व उन पर प्रमाणित हो गया तो व्यस्क होने के पश्चात् उन्हें किस प्रकार आज्ञा दी जा सकती है कि वह जो चाहें बन जाएँ । यह दृष्टिकोण निर्धारित फ़र्माते समय संभवत: मौलाना की दृष्टि से वह इरशाद-ए-नब्वी सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम गुप्त रह गया था कि :-

مَامِنْ مَّوْلُوْدٍ اِلَّا يُوْلَدُ عَلَى الْفِطْرَةِ فَاَبَوَاهُ يُهَوِّدَانِهٖ اَوْ يُنَصِّرَانِهٖ اَوْ يُمَجِّسَانِهٖ. (البخاری)

(अलबुख़ारी)

प्रत्येक बच्चा इस्लामी फ़ितरत (प्रकृति) पर पैदा होता है, यह उसके माता पिता का हस्तक्षेप होता है जो उसे यहूदी या नसरानी अथवा मजूसी बना देते हैं ।"

यदि मौलाना का उपरोक्त तर्क ठीक है तो फिर इसके नतीजे को मुसलमान कहलाने वालों की संतान तक ही क्यों सीमित रखा जाए । समस्त संसार के बच्चे इस्लाम की सम्पत्ति हैं उनको क्यों इस सौभाग्य से वंचित रहने दें और क्यों उनके माता-पिता को यह अधिकार दे दें कि व्यस्क होने से पहले पहले उन्हें "आरम्भ में काफ़िरों अथवा ग़ैरों की भांति प्रशिक्षित" करें । आश्चर्य है कि यह हदीस उनकी दृष्टि से किस प्रकार रह गई ? यह दलील तो نعوذ بالله (हम अल्लाह की पनाह चाहते

हैं) हिंसकों (आतंकवादियों) की मौलिक दलील होनी चाहिए थी क्योंकि इसकी पहुँच केवल मुसलमानों तक सीमित नहीं बल्कि काफ़िरों तक भी विस्तृत है और विश्व के कोने-कोने में प्रत्येक धर्म व जाति, प्रत्येक काले गोरे पर इसका वार बराबर पड़ता है । यदि نعوذ بالله (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) इसके वही अर्थ लिए जाएँ जो मौदूदी तर्कानुसार निकलते हैं तो फिर तो एक भी काफ़िर का बच्चा हाथ से निकल कर नहीं जा सकता ।

अत: मेरा काम केवल ध्यान दिलाना था, आगे मौलाना को अधिकार है मैं तो न उन्हें ज़बरदस्ती कोई बात मनवा सकता हूँ न स्वंय यह बात मानता हूँ कि आस्थाओं और विचारों के सम्बन्ध में कोई ज़बरदस्ती की जा सकती हैं।

मेरे निकट तो यह असंभव है कि कोई सच्चा धर्म सच्चाई की शिक्षा देते हुए किसी को झूठ बोलने पर विवश करे । क्या कभी सच के बीज से झूठ के अंकुर फूट सकते हैं । या झूठ की गुठली से सच्चाई का वृक्ष उगा है ? क्या कभी गेहूँ के दानों से कुचले के पौधे निकलते देखे हैं ? यदि ऐसा होना संभव नहीं तो फिर कैसे संभव है कि इस्लाम जो कि एक साक्षात सच्चाई है स्वयं मानव जाति को झूठ बोलने पर विवश करने लगे। और यह कैसे संभव है कि एक ऐसा व्यक्ति जिसका हृदय इस्लाम की सच्चाई का समर्थक न रहा हो और ख़ुदा की लाशरीक वहदानियत (ऐसा एकऐश्वरवाद जिसमें कोई सांझी न हो) को मानता न हो और अपनी मूर्खता से इस आस्था पर संतुष्ट हो गया हो कि मसीह(अ) ख़ुदा का बेटा था और उसकी ख़ुदाई में शरीक (सांझीदार) था तो ऐसे व्यक्ति के सामने इस्लाम तलवार लेकर खड़ा हो जाए कि पहले कहा क्यों था कि ख़ुदा एक है । अब तो चाहे तुम मानो न मानो तुम्हें यही कहना पड़ेगा कि वह एक है । एक है । यदि वह यह प्रश्न कर बैठे कि हज़ूर जब मेरा दिल यह गवाही देता है कि वह एक नहीं तो मैं किस प्रकार गवाही दे दूँ कि वह एक है । तो यह उत्तर सुनकर यह कहती हुई इस्लाम की तलवार उसकी गर्दन पर गिरेगी और उसका सिर क़लम कर देगी कि सत्यवादी कहीं का । झूठ नहीं बोलता ।

यद्यपि यह ठीक है कि ख़ुदा एक है और इसमें भी कदापि कोई संदेह नहीं कि मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम उसके रसूल(स) हैं। परन्तु जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के समय में मुनाफ़िक़ीन ने यही सच्ची ग्वाही दी तो केवल इस कारण कि उनके दिल यह गवाही नहीं देते थे, अल्लाह तआला ने फ़र्माया कि वह झूठ बोलते हैं।

क़ुर्आन-ए-करीम में सूरत मुनाफ़िक़ून की पहली आयत में इसी घटना का वर्णन करते हुए अल्लाह तआला फ़र्माता है :-

اِذَا جَآءَکَ الْمُنٰفِقُوْنَ قَالُوْا نَشْهَدُ اِنَّکَ لَرَسُوْلُ اللّٰهِ ۘ وَاللّٰهُ یَعْلَمُ اِنَّکَ لَرَسُوْلُهٗ ؕ وَاللّٰهُ یَشْهَدُ اِنَّ الْمُنٰفِقِیْنَ لَکٰذِبُوْنَ ۚ (المنافقون: ٢)

(अलमुनाफ़िक़ून : 2)

"जब तेरे पास मुनाफ़िक आते हैं तो कहते हैं कि हम गवाही देते हैं कि तू ख़ुदा का रसूल है जब्कि अल्लाह (तआला) जानता है कि तू उस का रसूल है किन्तु साथ ही यह गवाही देता है कि यह मुनाफ़िक़ विश्वसनीय रूप से झूठ बोलते हैं ।

अतः ख़ुदा तआला तो चाहता है कि मुनाफ़िक़ यह झूठ बोलना छोड़ दे, परन्तु मौलाना मौदूदी इस बात के समर्थक हैं कि सच्चाई के नाम पर तलवार के बल पर लोगों को झूठ बोलने की प्रेरणा दी जाए । मैं क्योंकि इस दृष्टिकोण का समर्थक नहीं इस कारण मौलाना को विवश नहीं कर सकता कि मेरी बात मान लें, मेरा धर्म तो सीधा सादा यही है कि لَكُمْ دِيْنُكُمْ وَلِيَ دِيْنِ ۝ तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन है और मेरे लिए मेरा दीन ।

इसके अन्तर्गत मैं यहां इस शंका का भी वर्णन कर दूँ कि हो सकता है मौलाना यह फ़र्माएँ कि इस आयत में जिन मुनाफ़िक़ीन का वर्णन है वह तो सिरे से ईमान ही नहीं लाए थे और मौलाना जिन लोगों को झूठ बोलने पर विवश करना चाहते हैं वह केवल उन मुनाफ़िक़ीन की प्रकार है जिन्हों ने एक बार यह जान बूझ कर कि यह मार्ग आने-जाने के लिए

खुला हुआ नहीं, फिर भी इस्लाम को स्वीकार किया तो मैं मौलाना से प्रार्थना करूँगा कि उपरोक्त क़ुर्आनी आयत से मिली हुई अगली दो आयात पर भी दृष्टि डाल लें तो सारी समस्या हल हो जाती है :-

اِتَّخَذُوْٓا اَيْمَانَهُمْ جُنَّةً فَصَدُّوْا عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۚ اِنَّهُمْ سَآءَ مَا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ o ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ اٰمَنُوْا ثُمَّ كَفَرُوْا فَطُبِعَ عَلٰى قُلُوْبِهِمْ فَهُمْ لَا يَفْقَهُوْنَ o (المنافقون:٣-٤)

(अलमुनाफ़िक़ून : 3-4)

"उन्होंने अपनी सौगन्धों को ढाल बना रखा है और (इसके द्वारा लोगों को) ख़ुदा के मार्ग से रोक रहे हैं । विश्वसनीय रूप से बहुत ही बुरा है जो वह कहते हैं । यह इस कारण से है कि (पहले तो) वह ईमान लाए, फिर काफ़िर हुए, उसके परिणामस्वरूप उनके दिलों पर मुहर लगा दी गई । अत: वह समझते नहीं ।

इन हर दो आयतों के विषय से यह विश्वसनीय रूप से प्रमाणित हो जाता है कि :-

प्रथम - यह मुनाफ़िक़ीन जिनका वर्णन किया गया है मुरतद (धर्म परिवर्तन करने वाले) थे । पहले ईमान लाए और फिर काफ़िर हो गए ।

द्वित्तीय - उनका यह क्रम कि, जबकि वह इस्लाम से फिर गए थे, फिर भी गवाही देते थे कि आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ख़ुदा के रसूल हैं, ख़ुदा तआला ने अत्यन्त ना पसंद फ़र्माया । उनको "झूठा" कहा और फ़र्माया कि "बहुत ही बुरा है जो वह करते हैं ।"

तीसरे - ख़ुदा तआला ने इनकी इस मुनाफ़िक़ाना गवाही को इस्लाम के लिए लाभदायक नहीं, बल्कि अत्यन्त विनाशकारी घोषित किया और फ़र्माया कि इस ढंग से यह लोगों को ख़ुदा के मार्ग से रोक रहे हैं ।

परन्तु मौदूदी साहिब की आस्था (सिद्धान्त) इसके बिल्कुल विपरीत है । ख़ुदा तआला तो फ़र्माता है झूठे हैं बहुत बुरा करते हैं । मौदूदी

साहिब का आग्रह है कि ऐसा ही करो । दिल से चाहे न मानो, परन्तु मुँह से यही गवाही देते रहो कि मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ख़ुदा तआला के रसूल हैं वरन् क़त्ल कर दिए जाओगे । अत: सच्चाई पसंदी पर व्यंग्य कसते हुए ऐसे मुरतद के समबन्ध में यह फ़र्माते हैं कि :-

"यदि वह ऐसा ही सच्चाई को पसंद (सत्यवादी) करने वाला है कि मुनाफ़िक़ बन कर रहना नहीं चाहता बल्कि जिस चीज़ पर ईमान लाया है उसकी पैरवी में सच्चा होना चाहता है तो अपने आप को सज़ा-ए-मौत के लिए क्यों प्रस्तुत नहीं करता ?" (मुरतद की सज़ा पृ. 53)

यह सत्यवादिता का ताना देकर मुनाफ़िक़त का उपदेश देना भी मौलाना का शहकार है । अत: ख़ुदा तआला तो फ़र्माता है कि झूठो मुनाफ़िक़ न बनो ! और मौलाना का इरशाद है कि सत्यवादी आए कहीं के, मुनाफ़िक़ बनकर जान क्यों नहीं बचाते ? और ख़ुदा तो फ़र्माता है कि इस प्रकार की मुनाफ़िक़त लोगों को ख़ुदा के मार्ग से रोकती है (और इस्लाम के लिए अत्यन्त विनाशकारी है) परन्तु मौलाना का आग्रह है कि यदि ऐसे मुरतदीन (धर्म परिवर्तन करने वाले) को सच बोलने की आज्ञा दे दी जाए तो इस्लाम स्थापित ही नहीं रह सकता "इस प्रकार तो कोई सामूहिक व्यवस्था कभी संसार में चल नहीं सकती ।"

क्या इस विरोध के बारे में किसी टिप्पणी की आवश्यकता रहती है ?

मैंने इस अध्याय के आरम्भ में यह बहस उठाई थी कि आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम कदापि "क़त्ले मुरतद" के अप्राकृतिक और अन्यायपूर्ण दृष्टिकोण के समर्थक न थे और इस बात का प्रकटन किया था कि क़ुर्आन-ए-करीम इस बारे में आप(स) के आचरण पर नि:संदेह प्रकाश डालता है । अत: आइए अब हम इस समस्या पर क़ुर्आन करीम से फ़ैसला मांगे । क्योंकि क़ुर्आनी फ़ैसले से अच्छा और निश्चित और कोई फ़ैसला नहीं । सूरत "अलमुनाफ़िक़ून" (जिसकी कुछ आयतें ऊपर नक़ल की गई हैं) ही वास्तव में वह सूरत है जिसकी ओर मैंने संकेत किया था । यह सूरत क़त्ले मुरतद की समस्या को समस्या के रूप ही में

स्पष्ट नहीं करती बल्कि इस बारे में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के आचरण को भी प्रस्तुत करती है और समस्या के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डालते हुए प्रत्येक शंका को दूर करती है । इस सूरत में निश्चित रूप से आँहज़रत सल्लल्लाहो को ऐसे मुरतद्दीन की सूचना दी गई थी जो मुनाफ़िक़ बन कर आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के सच्चा होने की ग्वाही देते थे, परन्तु ख़ुदा ने उनके सारे पोल खोल दिए । परन्तु इतना होने पर भी उनके क़त्ल के विषय में न तो ख़ुदा तआला की ओर से कोई आज्ञा उतरी न आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने स्वयं उनको इस आरोप में क़त्ल करवाया । संभव है मौलाना यह संदेह पैदा करें कि अल्लाह तआला यह फ़र्मा कर कि ''मुनाफ़िक़ीन झूठे हैं'' दूसरी आयत को इस प्रकार आरम्भ फ़र्माता है :-

اِتَّخَذُوْا اَيْمَانَهُمْ جُنَّةً...

उन्होंने अपनी क़समों को ढाल बना रखा है । यह ढाल वास्तव में इरतदाद (धर्म परिवर्तन) की सज़ा अर्थात् क़त्ल से बचने के लिए थी और वह मुसलमानों को धोखा इस लिए दे रहे थे कि कहीं हमारे इरतदाद (धर्म परिवर्तन) का ज्ञान हो गया तो हमें क़त्ल ही न कर दें । प्रत्यक्ष रूप से तो यह एक भागने का मार्ग निकल आया है, परन्तु मौलाना ज़रा कुछ आगे चल कर तो देखें इस सूरत ने ऐसी नाकाबंदी कर रखी है कि शंका तक को गुज़रने का साहस नहीं । अत: इन्हीं मुरतदीन (धर्म परिवर्तकों) का वर्णन करते हुए कुछ आगे चल कर अल्लाह तआला फ़र्माता है :-

وَاِذَا قِيْلَ لَهُمْ تَعَالَوْا يَسْتَغْفِرْ لَكُمْ رَسُوْلُ اللّٰهِ لَوَّوْا رُءُوْسَهُمْ وَرَاَيْتَهُمْ يَصُدُّوْنَ وَهُمْ مُّسْتَكْبِرُوْنَ ۝ (المنافقون:٦)

(अलमुनाफ़िक़ून : 6)

और जब उनसे कहा जाता है कि आओ रसूले ख़ुदा तुम्हारे लिए (ख़ुदा से) बख़्शिश मांगेगे तो सिर मटकाने लगते हैं और गर्व करते हुए

मुँह फेर लेते हैं । इस आयत के होते हुए

اِتَّخَذُوْٓا اَيْمَانَهُمْ جُنَّةً

से यह भावार्थ लेना कि वह क़समें इस भय से खाते थे कि क़त्ल न कर दिए जाएँ ऐसी स्पष्ट ज़्यादती है कि इससे बढ़कर और क्या ज़्यादती होगी । इस आयत से जो स्पष्ट शंका रहित परिणाम निकलते हैं वह यह हैं कि :-

1. उन मुरतद्दीन (धर्म परिवर्तन करने वालों) के लिए किसी प्रकार के भय का प्रश्न ही पैदा न होता था बल्कि जब उन्हें कहा जाता था कि आओ पश्चाताप कर लो तो सिर मटकाते हुए, मुँह फेर लेते थे और अत्यन्त घमंड से व्यवहार करते थे । क्या मौत से भयभीत व्यक्ति यह प्रदर्शन किया करता है ? यदि उन्होंने किसी भय के कारण यह झूठ बोला होता तो फिर तो यहां यह होना चाहिए था कि यह सुनकर भय के मारे वे भ्रांतमत हो जाते और वह फिर बड़े बलपूर्वक क़समें खाते हैं कि

استغفر الله! والله! بالله! تالله

अल्लाह हमें क्षमा कर दे, ख़ुदा की क़सम ।

हम तो मोमिन हैं और यदि तुम नहीं मानते तो हम अब तौबा कर लेते हैं ।

2. यह लोग कोई अनजाने लोग नहीं थे बल्कि मुसलमान जानते थे कि यह मुरतद्दीन कौन हैं तभी तो जाकर उनको नसीहत करते थे कि तौबा कर लो और यदि मान भी लिया जाए कि पहले अनजाने भी थे तो अब इस सूरत के उतरने के पश्चात हर दशा में ज्ञात हो चुके थे ।

3. ख़ुदा तआला ने इस आयत में यह नहीं फ़र्माया कि आओ तौबा करो वरन् क़त्ल कर दिए जाओगे, बल्कि यह फ़र्माया कि आओ (मेरा) रसूल तुम्हारे लिए बख़शिश मांगेगा । यदि इरतदाद (धर्म परिवर्तन) की सज़ा क़त्ल थी तो क्या यह आयत इसी प्रकार होनी चाहिए थी ?

परन्तु अब तो इरतदाद (धर्म पविरर्तन) पर अतिरिक्त यह कि उन मुरतद्दीन की ओर से अत्यन्त धृष्टता भी होने लगी । मुसलमानों का

खुला खुला तिरस्कार करने लगे । सिर मटकाने लगे, मुँह फेरने लगे । घमंड (अहंकार) करने लगे यहां पहुँच कर एक हिंसक अवश्य यह संभावना रख सकता है कि अब अगली आयत में उनके क़त्ल का आदेश आजाएगा बल्कि संभवतः दुःख देकर मारे जाने की सीख हो, परन्तु खेद कि उसके लिए एक और निराशा का मुँह देखना शेष है, क्योंकि न तो अगली आयत में, न उससे अगली आयत में, न उस से अगली आयत में यहां तक कि शेष सारी सूरत ही में कहीं उनके क़त्ल का आदेश नहीं मिलता ।

क़त्ल का आदेश तो एक ओर रहा, अभी तो उन्हें और ढील दी जा रही है और आगे चल कर अल्लाह तआला उनके सम्बन्ध में फ़र्माता है कि वह मुरतद केवल मुसलमानों ही का निरादर नहीं करते बल्कि ज़ालिम सय्यद वुल्दे आदम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का भी घोर अपमान कर रहे हैं । अतः फ़र्माता है :-

يَقُولُونَ لَئِنْ رَّجَعْنَآ اِلَى الْمَدِيْنَةِ لَيُخْرِجَنَّ الْاَعَزُّ مِنْهَا الْاَذَلَّ ۚ وَلِلّٰهِ الْعِزَّةُ وَلِرَسُوْلِهٖ وَلِلْمُؤْمِنِيْنَ وَلٰكِنَّ الْمُنٰفِقِيْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ ۝ (المنافقون:٩)

(अलमुनाफ़िक़ून : 9)

कहते हैं जैसे ही हम मदीना वापिस पहुँचेंगे अत्यन्त सम्माननीय व्यक्ति (अर्थात अभागा मुनाफ़िक़ों का सरदार अब्दुल्लाह बिन उबय्या बिन सलूल) نعوذ بالله *(हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) अत्यन्त अपमानित व्यक्ति को मदीना से निकाल देगा, जबकि सम्मान ख़ुदा ही का है और उसके रसूल का और मोमिनों का, परन्तु मुनाफ़िक़ीन नहीं जानते ।*

इस आयत में जिस घटना की ओर संकेत किया गया है वह यह है कि एक ग़ज़वह के अवसर पर जिसमें कुछ मुरतद मुनफ़िक़ीन भी मुसलमानों के साथ चढ़ाई में शामिल थे । अब्दुल्लाह बिन उबय्या बिन सलूल ने अपनी सभा में आँहज़रत सल्लल्लाहो वसल्लम के सम्बन्ध में ऊपरलिखित अपवित्र शब्द प्रयुक्त किए । उस अभागे का अर्थ यह था कि

मदीना वापिस जाकर वह نعوذ بالله (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम और आप(स) के साथियों को मदीना से निकाल देगा । यह बात जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम तक पहुँची और आपने खोज फ़र्माई तो यह लोग झूठ बोल गए और कहा कि आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने एक कम उम्र लड़के की गवाही पर विश्वास कर लिया है, परन्तु ख़ुदा तआला ने अपनी वही (आकाशवाणी) के द्वारा सूरत अलमुनाफ़िक़ून में यह बात आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम पर खोल दी और इस गवाही की पुष्टि फ़र्माई ।

यह एक ऐसा दोष था कि जिसपर आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम से प्रत्येक प्रेम रखने वाले को ग़ैरत आ जाती है और दिल खौलने लगता है और प्राकृतिक रूप से इन्सान यह सोचता है कि कम से कम इस अभागे को तो अवश्य कोई सज़ा दी जाएगी, क्योंकि इसका दोष केवल धर्म परिवर्तन का दोष ही नहीं रहा बल्कि यह अत्यन्त तिरस्कृत मुरतद (धर्म परिवर्तन करने वाला) विश्व के सबसे सम्माननीय व्यक्ति के विरुद्ध अत्यन्त धृष्टता करने वाला भी है, और इस के अतिरिक्त यह कि यह वाक्य उसने एक चढ़ाई के मध्य कहे जो जातियों के जीवन में एक हंगामी दौर हुआ करता है और ऐसे समय में सेनापति के विरुद्ध ऐसे शब्द स्पष्ट ग़द्दारी के समान समझे जाते हैं जिसकी सज़ा मौत है ।

विशेष कर एक विषिष्ट पार्टी में बैठ कर ऐसी बात करना तो और भी अधिक भयानक दोष बन जाता है और एक षडयंत्र का पता देता है । परन्तु क्या इस अवसर पर एक दुःख और क्रोध से भरे हुए दिल को यह पढ़कर अत्यन्त आश्चर्य नहीं होता कि कोई ऐसी सज़ा न ख़ुदा तआला की ओर से उतारी गई न आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने स्वयं दी । यह एक ऐसी घटना है जनाब मौदूदी साहिब जिसका यह मतलब भी नहीं निकाल सकते कि उस समय दुर्बलता का युग था, और उस व्यक्ति की शक्ति बहुत अधिक थी, क्योंकि यह युग तो स्वयं मौलाना के शब्दों में वह युग था :-

"जब उपदेश व नसीहत की असफ़लता के पश्चात् इस्लाम

के प्रचारक ने तलवार हाथ में ली... तो धीरे-धीरे बुराई व शरारत का ज़ंग छूटने लगा । स्वभावों से विकृत तत्त्व स्वयं निकल गए ।''

अतः यह उसी ''तलवार'' के दौर की बात है जब ''बुराई व शरारत'' का ज़ंग छूट रहा था और ''स्वभावों से विकृत तत्त्व निकल रहे थे ।''

परन्तु ऐतिहासिक प्रमाण बता रहे हैं कि इस बात के भ्रम तक का स्थान नहीं कि आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने نعوذ بالله (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) उसके भय के कारण उसे क्षमा फ़र्मा दिया । प्रथम तो ऐसे विचार को हृदय में स्थान देना ही उस पवित्र रसूल(स) का अत्यन्त निरादर है, दूसरे उस अभागे की ताक़त का भ्रम तो इसी बात से खुल जाता है कि उसका अपना बेटा अपने बाप को छोड़ कर रसूले अकरम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के पैरों की धूल का सेवक बना हुआ था और उसकी मोहकता की यह दशा थी कि जब उसने अपने बाप से सम्बन्धित यह लज्जाजनक बात सुनी तो आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के प्रेम ने उसके दिल में एक अद्भुत तीव्रता पैदा कर दी और प्रेमी का निरादर होता देख कर ग़ैरत ऐसी भड़की कि स्वयं आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की सेवा में प्रार्थना की कि हे अल्लाह के रसूल यदि आप(स) ने मेरे अभागे बाप के क़त्ल ही का निर्णय फ़र्माया है तो मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं स्वयं उसे अपने हाथ से क़त्ल करूँ । लेकिन इस बेटे के प्रस्ताव को भी इस साक्षात कृपा ने ठुकरा दिया और कैसी असीमित कृपा थी कि संसार के सबसे सम्मानित व्यक्ति ने एक मानवता के कलंक अत्यन्त धृष्ट मुरतद को भी माफ़ फ़र्मा दिया और फिर इसके बाद भी एक अद्भुत घटना घटी जिसका उदाहरण पेश करने से संसार का इतिहास असमर्थ है । जिस मासूम (अबोध) के विरुद्ध वह दोष किया गया था उसने तो क्षमा फ़र्मा दिया, परन्तु दोषी का बेटा उसे क्षमा न कर सका और जब मदीना की सीमा में वह यात्रीगण (काफ़िला) प्रविष्ट हो रहा था और निकट था कि अब्दुल्लाह बिन उबय्या भी प्रविष्ट हो तो यह बेटा जिसकी छाती अभी तक आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम

के निरादर से धदक रही थी आगे बढ़ा और अपने पिता का मार्ग रोक कर खड़ा हो गया । अपनी तलवार मियान से निकाल ली और कहा कि ख़ुदा की क़सम मैं आज तेरा वध कर दूँगा और मदीना की गलियों में घुसने न दूँगा जब तक तू यहां घोषणा न करे कि मैं संसार का सबसे घृष्ट व्यक्ति हूँ और मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम सबसे अधिक सम्मानित व्यक्ति हैं ।

अपने बेटे के चेहरे पर एक दृष्टि डालते ही वह समझ गया कि यह जो कुछ कहता है सच कर दिखाएगा, अतः उसकी नज़रें झुक गईं और अपने किए पर क्षमा याचना करने लगा । इस पर भी संभवतः उसे छुटकारा न मिलता, परन्तु जानते हो कि उसको छुड़ाने को कौन आया ?... वही सब प्रेमियों का प्रेमी रसूल और वही सबको क्षमा करने वाला । वह जो इब्राहीम(अ) की दुआओं का फल था और जिसके प्रकटन की मूसा(अ) ने भी ख़बर दी थी । हां वही दिलों को सहसर मोह लेने वाला जिसके प्रेम के दाऊद(अ) गीत गाता रहा । वह साक्षात रहमत (कृपा) उस दोषी पिता को उसके बेटे के हाथों से बचाने के लिए आगे आया । आप(स) की ऊंटनी जब समीप पहुँची और आपने यह दशा देखी तो तुरन्त ऊंटनी को आगे बढ़ा कर उसके बेटे को मना फ़र्माते हुए, मार्ग छोड़ने की नसीहत फ़र्माई ।

यह था आप(स) का व्यवहार एक ऐसे मुरतद (धर्म परिवर्तक) के साथ जो मुरतदीन का सरदार था जिसके इरतदाद (धर्म परिवर्तन) की स्वयं ख़ुदा ने गवाही दी और जो अपनी जीभ से अपनी अत्यन्त धृष्टता पर प्रायः के लिए मुहर लगा गया... परन्तु इरतदाद के दोष की सज़ा क़त्ल निश्चित करने वालों को मैं बताता हूँ कि मेरे प्रिय आक़ा(स) की कृपा यहीं पर समाप्त नहीं होती बल्कि इसके और भी ऊंचे और उच्चतम स्थान आते हैं ।

यह समय बीत गया और न उस समय न उस के बाद किसी ने उस मुरतदों के सरदार या उसके साथियों के विरुद्ध तलवार उठाई यहां तक कि उसने प्राकृतिक मृत्यु से अपने बिस्तर पर जान दी । अतः आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने सदैव के लिए अपने व्यवहार से यह

प्रमाणित फ़र्मा दिया कि इस्लाम में इरतदाद की सज़ा क़त्ल नहीं और यह ग्वाही क़ुर्आन-ए-क़रीम में अनन्तकाल तक लिखी गई । आप(स) का यह व्यवहार ऐसे मुरतदीन के साथ था जिनके इरतदाद के विषय में संदेह की कोई शंका तक भी शेष न रही थी, क्योंकि इरतदाद का फ़त्वा (धर्म आदेश) किसी इन्सान ने नहीं लगाया था बल्कि उस अंतर्यामी ख़ुदा ने लगाया था जो दिलों के हर राज़ से परिचित है और सब गवाहों से अधिक सच्चा गवाह है । केवल यही नहीं कि आप(स) ने इस संसार में उसे इरतदाद की कोई सज़ा नहीं दी बल्कि रहमत की सीमा यह है कि उसकी मृत्यु पर आपको यह चिंता लग गई कि कहीं वह आख़रत के अज़ाब में न पड़ जाए । आश्चर्य है कि आप(स) का दिल उस द्वेषी के लिए बेचैन हो गया जो प्राय: आप(स) से शत्रुता करता रहा । जिसकी छाती आप(स) की उन्नति को देख कर ईर्ष्या व द्वेष से भर जाती थी, और जिसका दिल आप(स) की ईर्ष्या में प्राय: जलता रहा । आप(स) उसकी मृत्यु पर इस संकल्प से उसके जनाज़े के लिए निकले कि अपने ख़ुदा के समक्ष रो-रो कर और उसके असीमित रहम (कृपा) और क्षमा के माध्यम से अपने इस अभागे शत्रु के लिए बख़शिश मांगेगे । आप(स) के इस पवित्र संकल्प का इस प्रकार पता चलता है कि जब आप जनाज़े के लिए निकले तो हज़रत उमर(र) ने जनाज़ा न पढ़ने का परामर्श दिया, जब आप(स) को आग्रह करता हुआ पाया तो वह आयत-ए-क़ुर्आनी प्रस्तुत की जिसमें अल्लाह तआला फ़र्माता है :-

إِنْ تَسْتَغْفِرْ لَهُمْ سَبْعِينَ مَرَّةً فَلَنْ يَغْفِرَ اللّٰهُ لَهُمْ (التوبہ:۸۱)

(अत्तौबा: 81)

कि यदि तू उनके लिए अर्थात मुनाफ़िकों के लिए सत्तर बार भी क्षमा मांगे तो अल्लाह तआला उन्हें क्षमा नहीं करेगा । इस पर आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने जो उत्तर दिया वह ऐसा प्यारा है कि जान आप(स) पर न्यौछावर होने लगती है और आत्मा पग चुमती है । आप(स) ने फ़र्माया, उमर ! ख़ुदा तआला ने सत्तर बार फ़र्माया है मैं सत्तर से अधिक बार बख़शिश मांग लूँगा ।

अतः हे मेरे आक़ा(स) पर हिंसा व अत्याचार का आरोप लगाने वालो ! आओ तुम कहां हो । आओ कि मैं तुम्हें इस अद्वितीय दिल से परिचित करवाऊँ जिसका रहम (कृपा) इब्राहीम(अ) के रहम (कृपा) से बढ़ कर था और जिसकी बख़शिश के सामने मसीह(अ) की बख़शिश कोई हैसियत न रखती थी । वह जो धरती के नीचतम लोगों के हाथों भी सताया गया और जिसने अत्यन्त अत्याचारी हिंसकों को भी माफ़ फ़र्मा दिया । आओ उस दयालु स्वभाव का दर्शन करो और उस कृपालु दिल को देखो जिसका धीरज हज़रत अय्यूब के धीरज को शर्माता था । हां वही सम्पूर्ण सुन्दरता का सम्पूर्ण दर्शन जो अपने प्रत्येक आचरण में प्रत्येक दूसरे नबी से उच्चतम था । उसके ज्योतिमय चेहरे की ओर दृष्टि करो और बताओ कि क्या यह वही है जिसका चित्र तुमने अपने अत्याचारी क़लमों से खींच रखा है ? क्या यह वही है जिसके एक हाथ में तलवार और एक हाथ में क़ुर्आन है ? काश तुम्हारी दृष्टियां लज्जा से झुक जाएँ और लज्जा से तुम्हारी आँखें लहू टपकाने लगे ।

परन्तु तुम्हारे दिल पारा पारा नहीं होते !!!

हिंसा के कुछ और वाद विवाद

आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम और इस्लाम का जो चित्र मौलाना मौदूदी ने खींच रखा है उसे देख कर एक थोड़ी सी समझ रखने वाला व्यक्ति भी यह समझ सकता है कि यह चित्र प्रत्येक ग़ैर मुस्लिम को इस्लाम से विमुख करने के लिए पर्याप्त है । मौदूदी साहिब के इस्लाम की कल्पना सौदा (एक उर्दू कवि) के इस वाक्य में सिमट आती है कि :-

'लाना बे ग़ुनचे मेरा क़ल्मदान'

सौदा एक हजव (निंदा की कविता कहने वाले) कवि थे, और जब किसी विरोधी से अपनी इच्छा मनवाना उन का उद्देश्य होता तो सुनने में आया है कि धमकी के रूप में यह वाक्य कहा करते थे । मौलाना की इस्लामी कल्पना के टेप का पद भी कुछ इसी प्रकार का बनता है कि :-

'लाना बे ग़ुनचे मेरी तलवार'

अत: अभी इनकी तलवार की धमकी समाप्त नहीं हुई और अभी हिंसा के कुछ और विवाद शेष हैं :-

"हर चंद सुबक दस्त हुए बुत शिकनी में
हम हैं तो अभी राह में हैं संगे गिराँ और ।"

जब हिंसा का चक्कर एक बार चल पड़ा तो हिंसा के अतिरिक्त उसे कोई और वस्तु रोक नहीं सकती । अब "संगे गिराँ" (भारी पत्थर) मार्ग में यह आया है कि इस भयानक कल्पना को प्रस्तुत करने के पश्चात प्रचार के तो समस्त द्वार बंद हो गए । "चुहेदान" में तो "चुहा" उस समय फंसा करता है जब उसे चेतावनी न दी गई हो । परन्तु यहां तो उसे सचेत कर दिया गया है । और पैदाइशी मुसलमानों की दशा भी वह

देख चुका है । इबादत के नियम भी उस की दृष्टि से ओझल नहीं रहे । धर्म के नाम पर रक्तपात होता भी उस ने देख लिया और विद्रोह की आम शिक्षा से भी परिचित हो गया । फिर वह क्या ऐसा ही सिर फिरा चूहा है कि अवश्य ''चूहेदान'' के अंदर आएगा ।

''ई'' बीशा मबर गुमाँ कि ख़ाली यस्त
''बायद'' कि पलंग ख़ुफ़ता बाशद

पड़ौसी का अधिकार

परन्तु यह भारी पत्थर दिखने में कैसा ही भारी पहाड़ क्यों न दिखाई दे, मौदूदी साहिब की हिंसक पालीसी के सामने यह सब रोकें कुछ भी नहीं हैं और रास्ते के तिन्कों की भांति उड़ जाती हैं । अत: ग़ैरों के लिए आप एक तीन नुकाती (त्रिमुखी) प्रोग्राम प्रस्तावित फ़र्माते हैं । इसका पहला भाग पड़ौसी के अधिकारों के साथ सम्बन्ध रखता है और दूसरे शब्दों में इसका सारांश यह है कि चूहा यदि हमारे पास नहीं आ सकता तो हम तो चूहे के पास जा सकते हैं ।

आप पड़ौसी काफ़िर देशों पर आक्रमण करने का एक कारण यह प्रस्तुत फ़र्माते हैं जो आप ही के शब्दों में सुनने के योग्य है ।

''इस्लाम यह इन्क़िलाब (क्रांति) एक एक देश या कुछ देशों में नहीं बल्कि समस्त संसार में लाना चाहता है । यद्यपि आरम्भ में मुस्लिम पार्टी का कर्त्तव्य यही है कि जहां जहां वह रहते हों वहां के राजनीतिक व्यवस्था में इन्क़िलाब (क्रांति) उत्पन्न करें परन्तु उनका अंतिम उद्देश्य एक विश्व व्यापी इन्क़िलाब (क्रांति) के अतिरिक्त कुछ नहीं ।'' (हक़ीक़ते जिहाद पृ. 63)

यहां मुझे भी मौलाना से सहमती है कि इस्लाम का अंतिम उद्देश्य एक विश्वव्यापी इन्क़िलाब (क्रांति) के अतिरिक्त कुछ नहीं । परन्तु असहमती यह है कि इन्क़िलाब (क्रांति) से मौलाना का अर्थ बिल्कुल समाजवादी इन्क़िलाब (क्रांति) से है । यहां तक कि नारा भी वही है, परन्तु मेरे निकट इस्लाम का अंतिम मंतव्य एक रूहानी विश्वव्यापी

इन्क़िलाब (क्रांनि) लाना है ।

मौलाना का इस्लामी इन्क़िलाब (क्रांति) पग से पग मिला कर समाजवाद की डगर पर चल रहा है और जैसा कि मैंने पहले भी एक स्थान पर निवेदन किया था कि यदि आप मुस्लिम पार्टी के स्थान पर कम्यूनिस्ट पार्टी पढ़ना आरम्भ कर दें तो संभव नहीं कि कोई समाजवादी समझ सके कि लेनिन की आवाज़ है या मौदूदी साहिब की । समाजवादी इन्क़िलाब (क्रांति) की आधारशिला भी अस्तित्व पर आधारित नहीं, न्याय पर है और मौदूदी साहिब का इन्क़िलाब भी इसी केन्द्रीय कल्पना के चारों और बल्कि इसी के बहाने घूमता है और हद यह है कि उसके उचित होने का कारण दोनों का भी एक ही जैसा है और पड़ौसियों के अधिकारों की कल्पना भी बिल्कुल एक है । देखिये मौदूदी साहिब फ़र्माते हैं :-

"मानवीय सम्बन्ध कुछ ऐसी एक साथ चीज़ें अपने अन्दर इकट्ठी रखते हैं कि कोई एक सरकार भी अपने असूल व सिद्धान्त के अनुसार पूर्णत्या कार्य नहीं कर सकती जब तक कि पड़ौसी देश में भी वही सिद्धान्त व रीति प्रचलित न हो । अत: मुस्लिम पार्टी के लिए आम सुधार और आत्म सुरक्षा दोनों के हेतु यह आवश्यक है कि किसी एक भाग में इस्लामी सरकार की व्यवस्था स्थापित करने को पर्याप्त न समझे ।" (हक़ीक़ते जिहाद पृ. 64)

आपने पड़ौसी देशों के अधिकारों के बारे में मौदूदी साहिब का "इस्लामी तसव्वुर" (इस्लामी कल्पना) का अध्ययन नोट फ़र्मा लिया । क्या इसमें और समाज वादी कल्पना में कोई विभिन्नता है ?

अब आगे चलिए कि यह उद्देश्य प्राप्त किस ढंग पर होगा तो वह ढंग यह दिखाई पड़ता है कि एक ओर तो यह मुस्लिम पार्टी समस्त देशों के निवासियों को यह आमंत्रण देगी कि "इस सिद्धान्त को स्वीकार करें जिसमें उनके लिए वास्तविक सफ़लता छिपी है दूसरी ओर यदि उस में शक्ति होगी तो वह लड़ कर गैर इस्लामी सरकारों को मिटा देगी ।"

हिंसा और नीचतम कायरता का जो जोड़ इस अन्तिम वाक्य में

पाया जाता है वह अपना उदाहरण आप है । "यदि उसमें शक्ति होगी तो वह लड़ कर..." अथवा दूसरे शब्दों में जहां कोई कमज़ोर देखा उसे मार कूट कर मनवालेगी और जहां शक्तिशाली नज़र आया निमंत्रण निकाल कर प्रस्तुत कर देगी । दुर्बल नृशंसित से सम्बन्धित जिस पर हमला किया जा रहा हो तो इस पॉलीसी की कल्पना सहनीय है, क्योंकि उसके वश ही में नहीं है कि वह इस हमले को रोक सके । वह यदि अपने आपको दुर्बल देख कर इस डर से कि मुझे लड़ाई में और भी अधिक मार न पड़ जाए, चुप साध (मौन धारण कर ले) जाए तो इन्सान उसे कमज़ोरी का नाम दे सकता है, परन्तु एक आक्रमणकारी की यह पॉलीसी कि एक जेब में छुरा हो और दूसरे में निमंत्रण पत्र, उसके लिए जो नाम मेरे मन में आता है, वह यदि मैंने लिख दिया तो मौलाना अवश्य नाराज़ होंगे और बहुत नाराज़ होंगे, परन्तु वह बेचारे भी असहाय हैं । यदि सिद्धान्त बिगाड़ दिए गए हों, और तर्क और शिष्टाचार और बलिदान और दुआ और शिक्षा और धीरज के समस्त हथियारों के टुकड़े उड़ चुके हों तो इस्लाम तो प्रत्येक दशा में किसी प्रकार फैलाना ही है न !

अल्लाह तआला ने भी विभिन्न प्रकार के जानवर पैदा फ़र्माए हैं । कुछ पक्षी होते हैं जिनके वास केवल प्रेम के गीत होते हैं और अबोध सुन्दरता की आवाज़ रहित आमंत्रण और कुछ हिंसक पशु होते हैं । जिनके पास भयंकर आक्रमणों के अतिरिक्त कुछ नहीं होता । यह संमिश्रण कभी कभी ही देखने में आता है कि एक हाथ में तलवार हो और एक में निमंत्रण पत्र ।

मुझे याद है कि हाई कोर्ट के सामने लारड लारैंस का एक बुत था जिसके एक हाथ में तलवार थी और दूसरे में क़लम । अर्थात क़लम की सत्ता स्वीकार करो वरन् तलवार की सज़ा पाओगे । परन्तु अंतर यह है कि इसका संबध केवल उन लोगों से था जो पहले ही से तलवार के बल पर उसके अधीन लाए जा चुके थे और क़लम भी उन्हीं लोगों के लिए था जिनके लिए तलवार थी । परन्तु ऐसा अद्भुत बुत (मूर्ति) अभी बनने वाला है जिसके एक हाथ में एक नंगी चमकती हुई तलवार हो जिसके साथ एक छोटा सा निमंत्रण पत्र भी लटका हुआ हो और दूसरे में केवल

एक सुन्दर श्रृंगारित निमंत्रण पत्र एक चांदी की प्लेट में सजा हुआ है । तलवार वाला हाथ तो एक अत्यन्त दुर्बल, अर्धमृतक अर्धजीवित कंगाल व्यक्ति की ओर उठा हुआ हो और प्लेट वाला हाथ दूसरी ओर एक असुर रूपी, हृष्ट पुष्ट, शक्तिशाली जवान की सेवा में वह चांदी की प्लेट अर्पित कर रहा हो ।

परन्तु इस प्लेट में यदि एक छोटा सा कार्ड इस लेख का भी लिख कर रख दिया जाए कि हज़ूर अभी हम दुर्बल हैं, जब शक्तिशाली होंगे तो फिर सेवा में उपस्थित होंगे । तो इस बारे में क्या विचार है ?

परन्तु यदि कहीं अनुमान में ग़ल्ती हो गई और इन्क़िलाबी दृष्टि ने धोखा खाया । किसी शक्तिशाली पर तलवार उठ गई तो फिर ?...

अतः मौदूदी साहिब की इस्लाम के प्रचार की कल्पना यह है और इस बारे में वह स्वयं स्वतन्त्र हैं । पाबंद (पराधीन) तो हम लोग हैं जिन्हें कुछ बोलने की आज्ञा नहीं । और इस कल्पना का सारांश सीधे-सादे शब्दों में यही है कि क्योंकि तुम हमारे पड़ौसी हो और हमारा कर्त्तव्य है कि हर प्रकार से तुम्हारी भलाई का प्रबन्ध करें और हर दशा में तुम्हें मृत्यु से बचाएँ इसी कारण यह हमारा अधिकार है कि यदि हम तुम्हें अपने से दुर्बल पाएँ तो आंखें बंद करके हड़प कर जाएँ ।

दूसरे दो नुकात (मर्म, रहस्य)

इस प्रचार प्रोग्राम के दूसरे दो नुकात सावधानी के उपचार स्वरूप हैं । पहले का सम्बन्ध ग़ैर मुस्लिमों के इस अधिकार से है कि वह मुसलमानों को प्रचार कर सकें । इसका उत्तर तो स्पष्ट ही है :-

"इस समस्या का निर्णय तो बड़ी सीमा तक मुरतद के वध के क़ानून ने स्वयं ही कर दिया (अर्थात न रहे बांस न बजे बांसरी - अनुलेखक) क्योंकि जब हम अपनी सत्ता की सीमा में किसी ऐसे व्यक्ति को जो मुसलमान हो इस्लाम से निकल कर कोई दूसरा धर्म स्वीकार करने का अधिकार नहीं देते तो अवश्य इसका अर्थ यही है कि हम

दार-उल-इस्लाम की सीमाओं में इस्लाम के मुक़ाबले में किसी दूसरे आमंत्रण को उठने और फैलने को भी सहन नहीं कर सकते ।" (मुरतद की सज़ा इस्लामी क़ानून में, पृ. 32)

तर्क बड़ा स्पष्ट है और पाठक समझ ही गए होंगे । संक्षेप में अपने शब्दों में भी ब्यान कर देता हूँ । जब मौदूदी साहिब के इस्लाम ने अपने लिए निम्नलिखित अधिकार सुरक्षित करवा लिए हों ।

1. प्रचार के निमंत्रण भिजवाना ।

2. कोई स्वीकार करे न करे जिस किसी पर बस चले आक्रमण कर देना और बलपूर्वक हकूमत छीन लेना ।

3. यदि अपनों में से कोई व्यक्ति दूसरा धर्म स्वीकार करे तो उसे क़त्ल कर देना । तो फिर स्पष्ट है कि दूसरे धर्म को क्या अधिकार है कि वह भी यही तीन तरीक़े अपना ले । वह कोई सच्चा है जो उसे यह अधिकार मिलते हों । मौदूदी साहिब तो सच्चे हैं ।

काफ़िरों को काफ़िरों में प्रचार करने की मनाही

अन्तिम नुकता (मर्म) जो मौदूदी साहिब इस्लाम के प्रचार की श्रृंखला में प्रस्तुत फ़र्माते हैं वह यह है कि यदि कुछ काफ़िरों ने काफ़िरों में ही प्रचार आरम्भ कर दिया तो संभव है कि कुछ काफ़िर दूसरे क़ाफ़िरों को निरुत्तर करके उनको मृत्यु के गढ़े में धकेल दें, इस कारण उन काफ़िरों को यह अधिकार कहां से मिल गया कि काफ़िरों में प्रचार करें । यह शब्द मेरे हैं दलील मौदूदी साहिब की है । अब मौदूदी साहिब के शब्दों में भी इस दलील को सुन लीलिए :-

"अब स्पष्ट है कि जब इस्लाम का वास्तविक सिद्धान्त यह है तो उसके लिए इस बात को पसंद करना तो एक ओर, सहन करना भी अत्यन्त कठिन है कि मानव जाति के अंदर वह निमंत्रण फैलें जो उनको सदैव की तबाही की ओर ले जाने वाली हैं । वह झूठ के प्रचारकों को इस बात का

खुला-खुला लाईसैंस नहीं दे सकता कि वह जिस आग की ओर स्वयं जा रहे हैं, उसकी ओर दूसरों को भी खींचें ।

(मुरतद की सज़ा पृ. 35)

मौदूदी साहिब के शब्द भी आपने देख लिए अब में इस पर और क्या कहूँ -

हैरान हूँ दिल को रोऊं, कि पीटूं जिगर को मैं
मक़दूर हो तो साथ रखूँ, नौहा गर को मैं,

यहां प्रश्न यह नहीं था कि काफ़िरों को मुसलमानों में प्रचार की आज्ञा है या नहीं, बल्कि प्रश्न यह था कि काफ़िरों को काफ़िरों में प्रचार की आज्ञा है या नहीं । परन्तु मौदूदी साहिब के निकट "इस्लाम" झूठ के प्रचारकों को इस बात की आज्ञा भी नहीं देता । दलील कुछ इस प्रकार स्थापित की गई है कि यह किस प्रकार आज्ञा दी जा सकती है कि जिस कुफ़र की आग में वह स्वयं पड़े हुए हों उसकी ओर दूसरों को भी खींचें हालांकि सूरते हाल यह बनती है कि जिस आग में एक प्रकार के काफ़िर पड़े हुए हैं उसी आग में दूसरी प्रकार के काफ़िर भी पड़े हुए हैं । और जहां तक उनके आग में होने का सम्बन्ध है, दोनों में कोई विभिन्नता नहीं । इस लिए मौदूदी साहिब की दलील वास्तव में यह बनेगी कि "इस्लाम" यह भी सहन नहीं कर सकता कि एक विस्तृत आग में जलने वाले काफ़िर उस आग की दूसरी ओर से लोगों को अपनी ओर बुलाएँ । यदि इस बात की आज्ञा दे दी जाए तो बेचारे इस आवाज़ पर कान धरने वाले जल जाएँगे और इस्लाम यह अत्याचार किस प्रकार सहन कर सकता है ?

अतः मानव जाति से गहरी सहानुभूति की मांग यह है कि प्रथम तो कुछ पुचकार कर, कुछ डरा धमका कर लोगों को इस आग के टुकड़े से निकालने का प्रयत्न किया जाए परन्तु यदि कोई न माने तो कम से कम यह अवश्य किया जाए कि लड़ कर तलवार के ज़ोर पर उस आग के टुकड़े पर सत्ता प्राप्त कर ली जाए, और फिर जब सत्ता प्राप्त हो जाए तो तलवार ताने हुए संतरी उन जलते हुए काफ़िरों पर निगरान खड़े हो जाएँ और एक आवाज़ देने वाला यह आवाज़ दे कि... "ख़बरदार ! तुम में से

कोई दूसरे को अपनी ओर न बुलाए वरन् गर्दन मार दी जाएगी । इस प्रकार तो तुम सारे लोग जल जाओगे और यह सोच कर भी हमारी आंखों में आंसू आ जाते हैं, इस कारण जिस करवट पर जहां जल रहे हो वहीं उस करवट पर जलते रहो वरन् मार कर हम टुकड़े उड़ा देगें । लज्जा नहीं आती हमें दुःख देते हुए ? अत्याचारी कहीं के !''

यह आवाज़ सुन कर फिर किसका साहस है कि दम मारे और जगह बदले ? परन्तु यदि इस सदा की कैद से अत्यन्त घबरा कर और परिणाम से निडर हो कर कोई ''जलने वाला'' यह प्रश्न कर बैठे कि ''हे सत्ताधारी राजा ! आपने हमसे समस्त आज़ादियाँ छीन लीं और पैरों में बेड़ियां डाल दीं । केवल इस लिए कि किसी प्रकार हमें आग के उस टुकड़े से निकालें जिसको हम आग का टुकड़ा नहीं समझते और इस जलन के प्रकोप से बचा लें जिसकी जलन को हम महसूस नहीं करते । हे सत्ताधारी राजा ! हम उस आग को तो आग नहीं समझते परन्तु यह तलवार के ज़ोर से हमारे हाथों से हकूमतें छीन कर और आज़ादियों से वंचित करके जो आग आपने हमारे सीनों में भड़काई है वह हमें जला कर भस्म किए देती है । इसके बदले मैं हमने क्या पाया ?... क्या हम अभी तक उसी प्रकार उस 'आग के टुकड़े' में उपस्थित नहीं जिससे आप हमें निकालना चाहते थे ? बस अब आप यहां खड़े क्या देख रहे हैं ? आगे बढ़िए और यदि आप की सहानुभूति के दावे सच्चे हैं तो या तो हमें इस 'आग के टुकड़े' से निकाल लीजिए जो आपके निकट आग का टुकड़ा है ताकि हमें आज़ादी के सांस नसीब हों या फिर उस आग ही को ठंडा कर दीजिए जो स्वयं आपने हमारे सीनों में धधकाई हैं ।''

यह पीड़ा जनक पुकार सुन कर वह आवाज़ देने वाला यह उत्तर देगा कि इन दोनों अवस्थाओं में से एक को भी बदला नहीं जा सकता । इस्लाम हमें इस बात की आज्ञा नहीं देता ।

''अधिक से अधिक मन न चाहते हुए (इच्छा के विरुद्ध) वह जिस चीज़ को सहन करता है वह यह है कि वह व्यक्ति जो स्वयं कुफ़्र पर स्थापित रहना चाहता हो उसे अधिकार है कि अपने हित्त को छोड़ कर अपनी बर्बादी के

मार्ग पर चलता रहे और यह भी वह केवल इस कारण सहन करता है कि ज़बरदस्ती किसी के अंदर ईमान उतार देना प्रकृति के क़ानून के अनुसार संभव नहीं।''

(मुरतद की सज़ा, पृ. 35)

यह उत्तर सुनकर जो कुछ उस सवाली के दिल पर बीतेगी उसका कुछ न कुछ अनुमान प्रत्येक दिल वाला इन्सान कर सकता है । क्या वह उस अग्नि कुंड की दीवारों से सिर न पटकेगा कि जब यह बुज़ुर्ग (वरिष्ठ) जानते थे कि ''ज़बरदस्ती किसी के दिल में ईमान उतार देना प्रकृति के क़ानून के अनुसार संभव नहीं ।'' तो फिर यह अब तक मुझ से क्या व्यवहार फ़र्माते रहे हैं ?

परन्तु मैं कहता हूँ कि उस काफ़िर को अपने अग्निकुण्ड की दीवारों से सिर पटकने दीजिए । और एक ज़रा वह भी सुन लीजिए जो यह उत्तर सुन कर मेरे दिल पर गुज़री है । ग़ालिब के इस पद के अनुसार कि :-

है दिले शौरीदह-ए-ग़ालिब तिलसमे पेचो ताब

वास्तव में दिल भिन्न-भिन्न प्रकार की भावनाओं के आवेश से एक व्याकुलता का भंवर (इन्द्रजाल) बन रहा है ।

और आश्चर्य है और क्रोध है, और ग़म है और अत्यन्त बेचैनी है कि आख़िर क्यों वह अप्राकृतिक कार्य जिनके करने का स्वयं मौदूदी साहिब को भी साहस न हो सका आपने इस साहस और धड़ल्ले के साथ हमारे आक़ा हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की ओर सम्बंधित किए हैं ?

स्वयं तो अपने कल्पना के संसार में, उस संसार में जहां हिंसा का राज था और तलवारें लहरा रही थीं और गर्दनें काटी जा रही थीं जब उस स्थान पर पहुँचे जो इस कोशिश का अंतिम स्थान था और वह क़िला जब सामने आया जिसका विजयी किया जाना ही उद्देश्य था तो हाथ कांप गए और पग डगमगा गए और इस पूर्णत्या अप्राकृतिक कार्य के दावे का भी साहस न कर सके । उस समय उन्हें अपनी प्रकृति की यह आवाज़ सुनाई दी कि :-

''ज़बरदस्ती किसी के अंदर ईमान उतार देना प्रकृति के क़ानून के

अनुसार संभव नहीं ।"

मैं उनसे यह पूछता हूँ कि यह प्रकृति की आवाज़ क्यों बंद थी जब वह मेरे आक़ा हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम पर यह अपवित्र आरोप लगा रहे थे, क्यों न उन्हें उस समय यह आवाज़ सुनाई दी जब उनका क़लम यह ज़हर उगल रहा था कि :-

"...क़ौम ने आपके निमंत्रण को स्वीकार करने से इंकार कर दिया परन्तु जब नसीहत व उपदेश की असफ़लता के पश्चात इस्लाम के प्रचारक ने हाथ में तलवार ली... तो धीरे-धीरे बुराई एवं शरारत का ज़ंग छूटने लगा ।"

की मेरे क़त्ल के बाद उसने जफ़ा से तौबा,
हाए उस ज़ूद पशेमां का पशेमां होना ।

यदि वह इस दावे में सच्चे हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने तलवार के बल पर दिलों के ज़ंग को दूर किया था तो फिर यह झूठ है कि "ज़बरदस्ती किसी के अंदर ईमान उतार देना प्रकृति के क़ानून के अनुसार संभव नहीं ।" और यदि यह सच है और यही सच है तो फिर वह झूठ था कि मेरे आक़ा(स) ने तलवार की धार से दिलों के ज़ंग को खुर्चा था । परन्तु अत्याचार का अंत यह है कि अपने लिए तो प्रकृति का मापदंड है और आक़ा(स) के शिष्टाचार को प्रत्येक अप्राकृतिक मापदंड से नापा जा रहा है ।

जब आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम पर यह आरोप लगा बैठे थे तो कम से कम सदाचार और प्रतिज्ञा पालन की मांग यह थी कि फिर स्वयं भी उसी आरोप की छुरी के नीचे अपनी गर्दन रख देते । सहाबा(र) के प्रेम का तो यह हाल था कि हर उस वार को जो उनके प्रिय आक़ा(स) पर किया जाता था अपने हाथों पर अपने दिलों पर लेते थे । इतिहास से प्रमाणित है कि जंगे ऊहद के अवसर पर हज़रत तलहा(र) का हाथ उन तीरों को रोक-रोक कर जो रसूले अकरम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की ओर फैंके गए थे सदैव के लिए बेकार हो गया था परन्तु मौलाना की यह दशा है कि तीर रोकने का तो क्या प्रश्न आँहज़रत(स) के अत्यन्त दुश्मनों की आवाज़ से आवाज़ मिलाकर आप

पर भयंकर आपत्तियों के तीर बरसा रहे हैं और जब वही तीर स्वयं उनकी ओर फैंके जाते हैं तो दामन बचा कर अलग जा खड़े होते हैं ।

تِلْكَ اِذًا قِسْمَةٌ ضِيْزٰى٥

यह तो बहुत ही बुरा विभाजन है ।

क़त्ले मुरतद अत्याचार नहीं रहम है

यह बहुत ही बुरा विभाजन है, परन्तु विभाजन तो विभाजन करने वाले पर आधारित होता है और विभाजन करने वाले का विचार का ढंग अपने विचार की प्रत्येक उत्पत्ति पर अपनी मुहर लगाता चला जाता है । जिस प्रकार एक निर्माण कर्ता या एक चित्रकार या एक कवि अपने निर्माण या चित्र या शेर से पहचाना जाता है और जिस प्रकार वह निर्मित वस्तुएँ या चित्र अथवा पद्यांश विभिन्न हालात और भावनाओं का परिणाम होने पर भी एक विशेष रंग अपने बनाने वाले का अपने अंदर रखते हैं, उसी प्रकार मौदूदी साहिब की भी हर उत्पत्ति पर उनका एक विशेष रंग छाया है और यह रंग लाल है । हर देखने वाला इस रंग को लाल ही देखता है । और यही वह रंग है जिसमें मौदूदी आंख इस्लाम को रंगीन देखने की आदी बन चुकी है । परन्तु ख़ुदा जाने क्यों कभी कभी मौलाना इस रंग का नाम हरा रख देते हैं और तमाशाइयों को यह विश्वास दिलाते हैं कि जिसे तुम लाल देख रहे हो वास्तव में यह हरा है।

क़त्ले मुरतद के विषय में मौलाना के विचारों से तो पाठक परिचित हो ही चुके हैं और इन के इस सिद्धान्त पर भी अभी अभी सूचना पा चुके हैं कि ज़बरदस्ती किसी को मुसलमान नहीं बनाया जा सकता । अंत में वर्णित इस सिद्धान्त का आवश्यक परिणाम यह निकलता है कि जब ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया ही नहीं जा सकता तो फिर इस बारे में ज़बरदस्ती करना भी बुद्धि के विरुद्ध और अनुचित होगा परन्तु मौलाना इस परिणाम को स्वीकार करने पर किसी प्रकार सहमत नहीं होते और अपने विशेष तर्क के ढंग द्वारा अपने दिल को मनवा लेते हैं कि ईमान के प्रचार के लिए हर प्रकार की हिंसा वैध है और प्रचार के लिए नहीं तो

इसी कारण पर यह हिंसा वैध है कि मोमिनों का ईमान सुरक्षित रहे अतः इस स्वयं सुरक्षा के बहाने पड़ौसी देशों पर आक्रमण करना भी न केवल वैध बल्कि बस चले तो अति आवश्यक है । हां एक स्थान पर जाकर इस बौद्धिक मांग के सामने हथियार डाल देते हैं और वह स्थान क़त्ले काफ़िर का स्थान है । और स्वयं मौलाना को भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि ईमान न लाने के दोष में काफ़िर को क़त्ल नहीं किया जा सकता।

परन्तु आकाश से गिरा खजूर में अटका वाली घटना है । एक बौद्धिक आपत्ति से निकलो तो दूसरी आ पड़ी । कठिनाई अब यह सम्मुख है कि कुफ़र के दोष में यदि एक काफ़िर को क़त्ल की सज़ा नहीं दी जा सकती तो फिर मुरतद को इसी दोष की सज़ा में क्यों मारा जा रहा है ? क्या उसे ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया जा सकता है ? यदि केवल यह कहा जाए कि ऐसे व्यक्ति का समाज में रहना समाज के लिए हानिकारक है तो उत्तर स्वरूप यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार दूसरे काफ़िरों का समाज में रहना समाज पर बुरे रंग में प्रभाव नहीं डालता उसी प्रकार उस नए काफ़िर का हाल होगा । और यदि वहां सहन किया जा सकता है तो यहां भी सहन कर लें । जो रोकें आप दूसरे काफ़िरों पर लगाते हैं इस नए काफ़िर पर भी लगा दीजिए । अधिक से अधिक घर से निकाल दीजिए, बल्कि देश निकाला दे दीजिए । आजीवन कारावास की सज़ा दे दीजिए । यह क़त्ल का भला क्या औचित्य हुआ यह तो स्पष्ट रूप से अन्याय और अत्याचार है । तो यह उत्तर सुनकर मौलाना हमें ख़बर देते हैं कि नादानो ! आंख के अंधों ! यह अत्याचार नहीं यह तो रहम है । दिखाई नहीं देता तो पूछ ही लिया करो । अपने शब्दों में इस रहम का विवरण मौलाना यूँ ब्यान फ़र्माते हैं :-

> *"उसके लिए दो ही इलाज संभव हैं या तो उसे स्टेट में समस्त शहरी अधिकारों से वंचित करके जीवित रहने दिया जाए या फिर उसके जीवन का अंत कर दिया जाए । प्रथम दशा वास्तव में दूसरी दशा से अधिक सज़ा है क्योंकि इसका अर्थ यह है कि वह* لَا يَمُوْتُ فِيْهَا وَلَا يَحْيٰى *(न ज़िंदा और न न मुर्दा) की दशा में ग्रस्त रहे... इसी कारण*

उचित यह है कि उसको मौत की सज़ा देकर उसकी और समाज की मुसीबत का एक ही समय में ख़ात्मा कर दिया जाए ।'' (मुरतद की सज़ा, पृ. 51)

क्या यह बिल्कुल उस लाल कपड़े धारी की आवाज़ जैसी नहीं है कि जो जनसमूह में खड़ा होकर श्रोतागणों को विश्वास दिला रहा हो कि ''अंधों-नेत्रहीनों मान लो कि मेरे कपड़ों का रंग हरा है... ।''

परन्तु यदि रंग वास्तव में हरा है और हमने ग़ल्ती खाई है तो मौलाना को मेरा परामर्श यही है कि ज़रा धीमी आवाज़ में बात करें । यदि उस अग्नि कुंड के बसने वाले काफ़िरों तक यह आवाज़ जा पहुँची जिनका अभी कुछ समय पहले वर्णन हुआ है तो क्या उन्हें इस विचार से धक्का नहीं लगेगा कि ''दावे तो यह थे कि जो कुछ किया जा रहा है तुम्हारी ही सहानुभूति और उन्नति हेतु है परन्तु जब भाग्य के विभाजन का समय आया तो रहम तो अपनों की झोली में डाल दिया और ज़ुल्म हमारे दामन में, जबकि दोष दोनों का एक ही प्रकार का था ।'' वह काफ़िर मौलाना से सम्बन्धित क्या क्या न विचार दिल में लाएँगे और कैसे कैसे भ्रम उन पर न करेंगे ? इसी कारण उचित यही है कि यह अपनी आवाज़ को धीमा करें और क्यों न बस इसी बात को पर्याप्त समझा जाये कि क़त्ल से कुछ देर पहले केवल मुरतदीन के कानों ही में धीरे से कह दिया जाए कि मियां भ्रांति में ग्रस्त न रहना । वास्तव में तुम सस्ते छुटे हो और तुम से अपवाद के रूप में रहम का व्यवहार किया गया है । और जाते जाते और सहानुभूति दिखाते हुए उनका हाथ भी दबा दिया जाए और रहस्मय रंग में नज़रें मिला कर मुस्कराते हुए, और यदि संयोग वश कोई काफ़िर वहां उपस्थित हो तो उसकी ओर सिर का संकेत करते हुए यह शब्द भी बढ़ा दिए जाएँ कि देखते नहीं इन लोगों का क्या हाल है ? لَا يَمُوْتُ فِيْهَا وَلَا يَحْيٰى न तो मरता है न जीवित रहता है ।

परन्तु मौदूदी साहिब यह सहानुभूति पूर्ण व्यवहार प्रस्तावित फ़र्माते हुए संभवत: एक बात भूल गए कि इस्लाम के निकट मौत वस्तुत: अंत नहीं है बल्कि इसके बाद फिर एक जीवन होगा जिसका नाम इस्लाम हयाते आख़रत (आख़रत का जीवन) रखता है । इस लिए वास्तव में यह

उस मुरतद की मुसीबत का अंत नहीं फ़र्मा रहे होंगे बल्कि उसे सीधा जहन्नुम भिजवा रहे होंगे । उनकी इस दुनिया के संभावित जीवन से सम्बन्धित (जिससे मौलाना उस मुसीबत के मारे को मुक्ति दिला रहे हैं) तो यह एक इन्सानी राय थी कि वह لا يَمُوْتُ فِيْهَا وَلَا يَحْيٰى वाली दशा के समान है परन्तु जहां उसे अब भिजवा रहे हैं उसके सम्बन्ध में तो स्वयं ख़ुदा फ़र्माता है कि لَا يَمُوْتُ فِيْهَا وَلَا يَحْيٰى न तो (वह अभागा) उसमें मरेगा न जीवित रहेगा । केवल इसी पर बात समाप्त नहीं हो जाती बल्कि तुलना इससे भी अधिक बुरी है । मौलाना तो उसे जिस आग से मुक्ति दिलाने के लिए कृपा करते हुए मार रहे थे, वह स्वयं उनके हाथों की भड़काई हुई थी और अधिक से अधिक हम उसे नारे सुग़रा कह सकते हैं अर्थात छोटी आग । परन्तु अब जिस आग की ओर उसे भिजवा रहे हैं उसका नाम स्वयं ख़ुदा तआला ने اَلنَّارُ الْكُبْرٰى रखा है अर्थात बड़ी आग। अतः मौलाना का आपत्तियों से मुक्ति दिलाने का अद्‌भुत ढंग है कि एक لا يَمُوْتُ فِيْهَا وَلَا يَحْيٰى (न वह मरता है न जीवित रहना है) की दशा से निकाल कर दूसरी अत्यन्त कठिन لَا يَمُوْتُ فِيْهَا وَلَا يَحْيٰى (न वह उसमें मरता है न जीवित रहता है) की दशा में धकेल रहे हैं और एक हल्की आग से मुक्ति दिला कर दूसरी बड़ी आग में झोंक रहे हैं, और अभी यह विशेष कृपा और नर्मी का व्यवहार है, और यह घोषणा भी जारी है कि यह रंग लाल नहीं है, हरा है ।

काफ़िर को तो फिर कुछ आशा हो सकती थी क्योंकि अभी उसने अपनी प्राकृतिक मृत्यु तक ख़ुदा जाने कितने वर्ष देख भाल कर काटने थे, और ख़ुदा जाने कितने अवसर उसे प्राप्त होने थे कि सच व झूठ में भिन्नता करके अंतिम मोक्ष को पालेता, परन्तु यह असहाय मुरतद कि जिसकी गर्दन काटने के साथ ही मोक्ष की सभी आशाएँ काट दी गईं, दूसरी दुनिया में आंख खोलते ही जब जहन्नुम की ओर ले जाया जा रहा होगा तो ख़ुदा जाने उन हाथ दबाने वालों के सम्बन्ध में क्या सोच रहा होगा जिन्होंने क़त्ल से पहले उसे यह विश्वास दिलाया था कि यह सब कुछ उसकी भलाई व उन्नति हेतु किया जा रहा है ।

अन्त में मैं फिर पाठकों की याद ताज़ा करने के उद्देश्य से इस्लाम के

प्रचार के विषय में मौदूदी साहिब की पॉलीसी (कूटनीति) के समस्त मर्मों को संक्षेप में ब्यान कर देता हूँ :-

1. ग़ैर इस्लामी देशों को निमंत्रण पत्र भेजे जाएँ परन्तु शक्ति पाते ही विशेष कर पड़ौसी देश पर आक्रमण कर दिया जाए।

2. काफ़िरों को मुसलमानों में प्रचार से मना कर दिया जाए ।

3. काफ़िरों को काफ़िरों में प्रचार से मना कर दिया जाए ।

इसके अतिरिक्त मेरे निकट अवश्य क़त्ले मुरतद का विवाद भी इसी कूटनीति का भाग है और वास्तव में यह चार नुकाती (चार सूत्रीय कार्य क्रम) प्रोग्राम कहलाना चाहिए था। परन्तु कठिनाई यह है कि मौलाना को मुझ से सहमती नहीं । मेरे निकट यह इस पॉलीसी का भाग इस कारण है कि प्राकृतिक रूप से क़त्ल के भय से बहुत से मुसलमान दूसरे धर्म अपनाने से रुक जाएँगे। उदाहरणत्य पिछले दिनों पाकिस्तान में एक ठीक ठाक संख्या में मुसलमानों ने ईसाइयत अपना ली । यदि यह क़त्ल का ढंग प्रचलित होता तो कदाचित् कठिनाई से उन मुरतदीन में से एक आध ही ऐसा सत्यवादी निकलता कि "मुनाफ़िक़ बन कर जीवित रहना" पसंद न करता । परन्तु मौलाना के निकट यह इस पॉलीसी का भाग नहीं है और इसका यह उद्देश्य नहीं कि इस प्रकार मुसलमानों में मुनाफ़िक़ पैदा किए जाएँ । अत: लिखते हैं :-

"क़त्ले मुरतद को यह अर्थ पहनाना भी ग़ल्त है कि हम एक व्यक्ति को मृत्यु का भय दिलाकर मुनाफ़िक़ाना व्यवहार अपनाने पर विवश करते हैं । वास्तव में बात इसके विरुद्ध है । हम ऐसे लोगों के लिए अपनी जमाअत के अंदर आने का द्वार बंद कर देना चाहते हैं, जो रंग बदलने के रोग में ग्रस्त हैं और दृष्टिकोणों के परिवर्तन का खेल मनोरंजन के रूप में खेलते रहते हैं... अत: यह बुद्धि व विवेकानुसार है कि प्रत्येक उस व्यक्ति को जो इस जमाअत के अंदर आना चाहे, पहले ही सूचित कर दिया जाए कि यहां से पलट कर जाने की सज़ा मौत है ताकि वह सम्मिलित होने से पहले सौ बार सोच ले कि उसे ऐसी

जमाअत में सम्मिलित होना चाहिए या नहीं । इस प्रकार जमाअत में आएगा ही वह जिसे कभी बाहिर जाना न होगा ।'' (मुर्तद की सज़ा, पृ. 51-52)

मुझे याद है पाकिस्तान की स्थापना से पहले हिन्दुस्तान की समाजवादी पार्टी का भी बिल्कुल यही ढंग था वह अपनी गुप्त सोसाईट्यिों का मैम्बर बनाने से पहले प्रत्येक आने वाले को यह चेतावनी दे दिया करते थे कि मियां ! बाहर जाने की सज़ा मौत होगी । ...कृषि कालेज लाएलपुर का एक विद्यार्थी जिसे मैं जानता था, बेचारा इसी दोष में मारा गया था— परन्तु यह तो इसके सम्बन्ध में यूंही एक बात याद आ गई थी जो मैंने ब्यान कर दी क्योंकि इससे मेरे इस दृष्टिकोण को और म्दृढ़ता मिलती है कि मौदूदियत में समाजवाद का रंग छाया है । असंभव नहीं कि मौलाना ने कच्ची ऊमर में लैनिन या मार्क्स के कुछ ऊर्दू अनुवाद पढ़ लिए हों और उनके भविष्य के जीवन के दृष्टिकोणों में ढालने में उन्होंने आवश्यकता से अधिक काम किया हो परन्तु इस वृतांत को मैं छोड़ता हूँ । इस समय वास्तविक विवाद यह नहीं था ।

मैं मौलाना मौदूदी की क़त्ले मुर्तद की वह व्याख्या लिख रहा था जिसे सुनने के पश्चात् फिर मेरा यह अधिकार नहीं रहता कि क़त्ले मुर्तद के सिद्धान्त को भी इस्लाम के प्रचार की पॉलीसी का एक अंश बनाऊँ । अतः मैंने ऐसा नहीं किया और केवल तीन नुकाती (तीन सूत्रीय कार्यक्रम) प्रोग्राम प्रस्तुत किया है अतः अब इस लेख के भाग को समाप्त करता हूँ परन्तु जाने से पहले मौदूदी साहिब मुझे आज्ञा दें कि इनकी प्रस्तुत की हुई ऊपरलिखित व्याख्या के सम्बन्ध में एक दो प्रश्न प्रस्तुत कर दूँ । वह प्रश्न यह हैं कि :-

प्रथम - यदि आप का यह दावा सत्य है कि क़त्ले मुरतद का वास्तविक उद्देश्य यही है कि आप ''ऐसे लोगों के लिए अपनी जमाअत के अंदर आने का मार्ग बंद कर देना चाहते हैं'' तो यह फ़र्माएँ कि पैदाइशी तौर जन्मे इस मिज़ाज के जो मुसलमान आपकी सोसाइटी के अंदर लगातार प्रविष्ट होते रहेंगे उनकी रोक थाम के लिए आपने क्या विधि सोची है और –

द्वित्तीय - यदि ''बुद्धि व विवेक'' यही है कि प्रत्येक उस व्यक्ति को जो जमाअत के अंदर आना चाहे पहले ही सूचित कर दिया जाए कि यहां से वापिस जाने की सज़ा मृत्यु है ''तो वह कौन से साधन हैं जिनको अपना कर जन्म से पहले ही मुसलमानों को ख़बरदार कर दिया जाएगा कि यदि आना है तो ''सौ बार सोच कर आओ ।''

आवश्यक था कि प्रकृति के विरुद्ध सिद्धान्तों की व्याख्या भी प्रकृति के विरुद्ध ही हों ।

मौदूदी शासन काल की एक सम्भावित झलक

तुम्हारी तहज़ीब अपने ख़ंजर से आप ही ख़ुदकुशी करेगी,
जो शाख़-ए-नाज़ुक पे आशियाना बनेगा नापायदार होगा ।

पिछले पृष्ठों के अध्ययन से पाठकों पर वह विचार भलीभांति स्पष्ट हो चुका होगा जो मौलाना मौदूदी इस्लाम, इस्लाम के रसूल(स) इस्लाम के प्रचार और इस्लाम की सत्ता के बारे में रखते हैं । अब मैं इन पृष्ठों में उस सम्भावित मौदूदी शासन का एक संक्षिप्त सा ख़ाका खींच कर दिखाता हूँ जो मौदूदी साहिब के सत्ता प्राप्ति के पश्चात किसी इस्लामी या ग़ैर इस्लामी देश के पर्दे पर प्रकट होगा । मेरे ग़ैर इस्लामी कहने पर आश्चर्य न करें क्योंकि वास्तव में यह बात अनुमान से दूर नहीं कि पहले किसी इस्लामी देश में प्रकट होने के स्थान पर यह इन्क़िलाब (क्रांति) किसी ग़ैर मुस्लिम बहुसंख्यकों के देश में प्रकट हो जाए क्योंकि जब "प्रत्येक मुस्लिम पार्टी अपने अपने देश में यह विचारात्मक "इस्लामी इन्क़िलाब" लाने के प्रयत्न में व्यस्त होगी और सत्ता प्राप्त करने का प्रत्येक सम्भव साधन अपनाया जा रहा होगा तो कौन कह सकता है कि कहां यह इन्क़िलाब पहले आएगा ? सऊदी अरब में या ग़ाना में ? मिसर में या लबनान में? पाकिस्तान में या हिन्दुस्तान में ?

अतः जब भी, जिस प्रकार भी और जहां भी यह इस्लामी हकूमत प्रकट होगी इसके कुछ विशिष्ट चित्र होंगे जिन पर इस अस्तित्व की न मिटने वाली मुहरें अंकित होंगी जिसके मस्तिष्क ने इसका विचार स्थापित किया और जिसके प्रयत्न कल्पना के संसार से उसे अस्तित्व के संसार में

ले आयीं सबसे पहला व्यवहारिक पग जो सत्ता की प्राप्ति के बाद उठाया जाएगा वह सम्भवत: यह होगा कि इस्लाम के शीर्षक के अधीन मौदूदी सिद्धान्तों का एक सूची पत्र प्रकाशित किया जायेगा और यह आम घोषणा की जाएगी कि किसी निर्धारित समय के अन्दर-अन्दर वह समस्त मुसलमान जो इन-इन सिद्धान्तों के समर्थक हैं, निकटतम थानों या अदालतों में अपने नाम लिखवा दें । यदि निर्धारित समय के अंदर कोई मुसलमान रजिस्टर्ड होने से रह गया तो अपनी जान, सम्पत्ति और सम्मान का वह स्वयं ज़िम्मेदार होगा, एवं इस समय के अंदर अंदर समस्त जनता अपने हथियार जमा करवा दे ।

इस घोषणा के पश्चात् सरकार तुरन्त क़त्ल व विनाश की तैयारी में व्यस्त हो जाएगी और मौदूदी फ़ौज और मौदूदी पुलिस अपने हथियारों को चमका लेगी और एक ऐसे जिहाद के लिए साहस जुटाने लगेगी जिसमें परिश्रम और कठिनाई तो बहुत होगी, परन्तु शहादत का कोई भय न होगा क्योंकि उस निर्धारित दिन से पहले-पहले शत्रु को न्शिस्त्र किया जा चुका होगा ।

एक बेचैन प्रतीक्षा के समय के पश्चात अन्तत: वह दिन आजाएगा जबकि करोड़ों ऐसे मुरतदीन की गर्दनें मौदूदी तलवारों के लिए हलाल कर दी जाएँगी जो मुरतदीन पहले पैदायशी मुसलमान कहलाते थे अत: एक आवाज़ देने वाले की आवाज़ पर ख़ुदा जाने कितनी तलवारें उठेंगी और गिरेंगी, और कितने सिर धड़ से अलग होंगे और कितने शरीर ख़ाक व ख़ून में लतपत होंगे। यदि मौलाना मौदूदी की कथनी और करनी में कोई अंतर नहीं, यदि वह वही सब कुछ कर भी सकते हैं जो वह कहते हैं तो ऐसा ही होगा और न जाने कितनी तलवारें एक बार नहीं हज़ार बार उठेंगी और हज़ार बार गिरेंगी और सिर धड़ से अलग होते रहेंगे और शरीर ख़ाक व ख़ून में लतपत होंगे ।

वह समय ऐसा होगा कि यदि पति ने तौबा कर ली या सत्य के मार्ग से हट गया तो उसे तो जीवित रखा जाएगा, परन्तु उसकी पत्नी उसकी आंखों के सामने क़त्ल की जाएगी और यदि पत्नी ने पश्चाताप कर लिया या झूठ बोल कर मुनाफ़िक़त (ढोंग) का मार्ग अपनाया तो वह

स्वयं जीवित रखी जाएगी परन्तु उसका सत्यवादी पति उसकी आंखों के सामने मारा जाएगा, बच्चे बिना अपवाद के जीवित रखे जाएँगे और प्रत्येक दशा में अपनी माँ अथवा पिता या माता-पिता दोनों को मरता हुआ देखेंगे और उन दूध पीते बच्चों के बिलकने से जिनकी व्याकुल आंखें मुर्तद माताओं को तरसेंगी और उन अनाथ लड़के और लड़कियों के विलाप से जिनकी रोती हुई आंखें फिर कभी उन मुरतद बापों को न देख सकेंगी... पाकिस्तान की बस्ती-बस्ती, गांव-गांव से वह पीड़ा जनक नारे उठेंगे कि जिनकी हाहाकार आकाश के गुंबदों को हिलादेगी और एक ओर तो चीन की दीवारें कांपेंगीं और दूसरी ओर यूरोप पर कंपन छा जाएगा । और जब उन कुछ एक सदाचारियों के बाज़ू गर्दनें मारते-मारते शिथिल हो जाएँगे तो इन्हीं मुरतदीन (धर्म परिवर्तन करने वालों) से विस्तृत खाईयां खुदवा कर उनमें लाल अग्नि भड़काई जाएगी और रहे सहे मुरतदीन को जीवित आग में जला दिया जाएगा और उस आग की आकाश से बातें करती हुई लपटें पाकिस्तान के उत्तर और दक्षिण, पूर्व व पश्चिम को प्रकाशित कर देंगी । अत: वह कैसी शुभ सुबह होगी जब पाकिस्तान के आकाश से मौदूदियत का यह लाल सवेरा उदय होगा ।

परन्तु यह तो केवल एक आरम्भ है और चरमसीमा से पूर्व अभी कई एक पड़ाव तय करने शेष है यदि सब से पहला इन्क़िलाबी देश पाकिस्तान हुआ तो अभी तो कितने ही इस्लामी देशों के विशाल क्षेत्र पाकिस्तान के दाएँ और बाएँ आगे और पीछे फैले पड़े हैं जहां ''मुरतद माएँ'' ''मुरतद बच्चे'' पैदा कर रही हैं । और अभी तो भारत के ''6 करोड़ मुरतदीन'' का सफ़ाया शेष है । अभी शेष है वह हाहाकार जो पहाड़ों की छातियां फाड़ देगा और आकाश के पर्दों में दरार डाल देगा और वह विलाप बचा है जिसे सुन कर धरती की छातियों का दूध शुष्क हो जाएगा और आकाश के सितारे छाती पीटेंगे और जिस की पीड़ा से चन्द्रमा और सूर्य की आंखें भी रोते-रोते अन्धी हो जाएँगी ।

फिर क्या इस विस्तृत क़त्ल एवं विनाश के पश्चात जबकि समस्त इस्लामी देश अधिकतर मुसलमान आबादियों से ख़ाली हो चुकेंगे । इन सत्ताधारी ''वास्तविक मुसलमानों'' की प्यास बुझ जाएगी और सत्ता की

लालसा की आग ठंडी पड़ जाएगी ?– यदि उन ऊंचे उद्देश्यों को देखा जाए जो मौलाना के दिल में जोश मारते हैं और जीभ की नोक और क़लम से जारी होते रहते हैं तो इस प्रश्न का उत्तर न में है। नहीं। अभी यह प्यास नहीं बुझेगी और यह आग ठंडी न होगी जब तक कि काफ़िर सरकारों को इस्लाम का आमंत्रण भिजवाने के पश्चात उनके कुफ़र के आग्रह पर या उसकी प्रतीक्षा किए बिना ही इन्हें तलवार के बलपूर्वक पराजित न कर लिया जाए। अभी तो उनके क्रोध की बिजली को यूरोप पर भी गिरना है और अमरीका पर भी। चीन पर भी और जापान पर भी। आस्ट्रेलिया पर भी और न्यूज़ीलैंड पर भी। अभी तो इसकी चमक ने अफ्रीक़ा के मरुस्थलों पर लपकना है और काले जंगलों को आग लगाना है। अभी तो उस ने रूस को भी अग्नि के हवाले करना है और स।ईबेरिया की अति ठण्डी तराईयों को ईमान की ज्वाला देनी है। अभी तो कितने ही क़त्ल एवं विनाश के बाज़ार गर्म होना शेष हैं। अभी मौदूदी तलवारों ने कितने ही और घाटों का लाल पानी पीना है। और मैं यह सोचता हूँ कि जब यह मौदूदी इस्लाम, धरती के चप्पे-चप्पे को लाल रंग कर चुकेगा तो हज़ारों हज़ार मील के वीरानों में किसी एकांकी ''नेक मुसलमान'' की अज़ान की आवाज़ कैसी भली प्रतीत होगी और मैं सोचता हूँ कि मौलाना की अन्तर्राष्ट्रीय शांति की कल्पना कितनी भयानक है जिस शांति का चित्र चुप-चाप ख़ामोश शमशान घाटों में दिखाई देता है और जिसका दूसरा नाम जीवन का अभाव है – मृत्यु है।

मुनाफ़िक़ीन का एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन

और यदि यह रक्तपात एवं विनाश का बाज़ार गर्म न हुआ तो केवल एक दशा में— कि दुनिया के पर्दे पर मुनाफ़िक़ीन (ढोंगियों) का एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय संगठन प्रकट हो वरन् उस तलवार से बचने की कोई संभावना नहीं। पाठक इसे उपन्यास अथवा कविता न समझें, यद्यपि यह ठीक है कि जब मौदूदी उद्देश्यों का व्यवहारिक संसार में नक़शा खींच कर देखा जाए तो वह एक भयंकर उपन्यास प्रतीत होता है या एक भयंकर स्वप्न या एक कवि के दिल को हिला देने वाली कल्पना।

परन्तु खेद कि न तो यह स्वप्न है, न कोई उपन्यास न काव्य कल्पना बल्कि एक जीती जागती, प्रत्यक्ष रूप में सोचने की शक्ति रखने वाले धार्मिक ज्ञान व रिसालत की समझ रखने का दावा करने वाले व्यक्तित्व के वह दृष्टिकोण हैं जो वह आज इस्लाम के नाम पर संसार के सामने प्रस्तुत कर रहा है और इस दृढ़ता के साथ कि जब भी अवसर मिला इन दावों पर कुछ कर के दिखाया जाएगा ।

यह है वह इस्लाम की अन्तर्राष्ट्रीय विजय का दिन जो मौदूदी कल्पना की खिड़कियों से झांक रहा है। क्या نعوذ بالله (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) इसी दिन को खींच लाने के लिए आज से लगभग चौदह सौ वर्ष पूर्व अरब के आसमान से हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के समस्त संसार को ज्योतिमय करने वाले सूर्य का उदय हुआ था ?

ऐ काश मौलाना मौदूदी अपने धर्म को इस्लाम के अतिरिक्त कोई और नाम दे लेते और हमारे आक़ा(स) के नाम को अपने इस घृणित अन्धकारमय कल्पना में सम्मिलित न करते लेकिन यदि ऐसा करते तो कौन उन का अनूसरण करता और कौन उन को इस नए धर्म के नाम पर वोट देता । इसी कारण उनके सामने केवल एक मार्ग शेष था और वह मार्ग यही था कि अपने शासकीय विचारों को हमारे मासूम आक़ा(स) की ओर सम्बन्धित करके प्रचलित करते । अतः उन्होंने ऐसा ही किया और अमन तथा शांति के उस रसूल(स) के नाम को भी उस रक्तपात के मैदान में घसीटने से पीछे नहीं हटे जिस रसूल का एक एक सांस अमन का संदेश लेकर आता था । जिसके धर्म का नाम ही इस्लाम था ।

मैंने जान बूझ कर इस सम्भावित नक़्शे को खींचते हुए संभवतः संक्षेप और सावधानी से काम लिया है और केवल इन्हीं चित्रों का चित्रण करने को पर्याप्त समझा है जो स्पष्ट और निःसंदेह रूप से मौलाना की पुस्तकों में मिलते हैं और जिनके हवाले पिछले पृष्ठों में पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किए जा चुके हैं । वैसे मौदूदियत के स्वभाव को समझ लेने के पश्चात् यह कुछ कठिन नहीं रहता कि इन्सान प्रत्येक जीवन के घेरे में एक सम्भावित मौदूदी सरकार का सही सही चित्रण कर सके ।

उदाहरणतय उस युग की सांस्कृतिक दशा का चित्रण किया जा सकता था या डंडे के ज़ोर से इबादात करवाने पर जो व्यंग्यात्मक दशा उत्पन्न हो सकती है उसका वर्णन किया जा सकता था । इसी प्रकार उस सरकार के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर भी बहुत कुछ लिखा जा सकता था और उन प्रयत्नों की कल्पना भी चित्रित की जा सकती थी जिनके द्वारा देश से भ्रष्टाचार, रिश्वतख़ोरी और दुर्व्यवहारिता को दूर करने का प्रयत्न किया जाता । इसी प्रकार देश के राजनीतिक हालात का चित्रण प्रस्तुत करना भी कुछ कठिन न था । एक ऐसा देश जिसका आकार ही हिंसात्मक दृष्टिकोण और रक्तपात पर हो वह बग़ावतों का केन्द्र बन जाता है और यदि उस देश में मुनाफ़िक़ीन की बहुतात हो तो फिर तो यह ख़तरा अनुचित रूप से बढ़ जाता है बल्कि जैसे जैसे समय बीतता जाए ऐसी सरकार के विरुद्ध प्रतिक्रिया बढ़ती ही चली जाती है । अत: इन सम्भावित ख़तरों के बारे में बहुत कुछ लिखा जा सकता था जो ऐसी सरकार को विश्वसनीय रूप से पेश आ सकते हैं, इसके अतिरिक्त दूसरी प्रकार की साज़िशों की कल्पना भी बांधी जा सकती थी, और उस गुप्त जासूसी व्यवस्था का भी अनुमान लगाया जा सकता था जिसके द्वारा सरकार इन साज़िशों और बग़ावतों का पता लगाती और यातनाएँ देने के उन साधनों का वर्णन भी रुचि रहित न होता जो ऐसी सरकार ने और जानकारी या सच्चाई जानने के लिए प्रत्येक दशा में अपनाने थे, परन्तु मैं इन सब बातों को छोड़ता हूँ और पाठकों के व्यक्तिगत रुचि या शौक़ पर मामला छोड़ता हूँ, फिर भी यदि किसी मित्र को और जिज्ञासा हो तो उपरोक्त मामले के विषय में वह घटनाएँ देखे जो इश्तिराकी इन्क़िलाब की तारीख या History of the Priest Craft in all ages (हिस्टरी ऑफ़ दी प्रीस्ट करॉफ्ट इन ऑल ऐजज़) में प्रयाप्त मात्रा में मिल सकते हैं और जिनका अध्ययन रुचि रहित न होगा ।

अवकाश और मुआफ़ी नामे का एक फ़र्मान-ए-आम

आख़िर पर यह अध्याय समाप्त करने से पहले यदि मैं इस आम अवकाश और मुआफ़ी नामे का वर्णन न करूँ जिसे जारी करने की संभावना का मौदूदी साहिब प्रकटन फ़र्मा चुके हैं तो यह उनसे अन्याय

होगा जैसा कि मैंने अध्याय के आरम्भ में ही इस राय का प्रकटन कर दिया था कि मेरा विचार है कि मौदूदी सरकार सत्ता प्राप्त करते ही एक आम फ़र्मान जारी करेगी और यही रीति प्रत्येक इन्क़िलाबी हकूमत की हुआ करती है और इस फ़रमान के अनुसार मुसलमानों को कुछ विशिष्ट सिद्धान्तों को सम्मुख रखते हुए मुसलमान की हैसियत से रजिस्टर्ड होना पड़ेगा । लगभग इसी विषय के फ़र्मान जारी करने की सम्भावना का प्रकटन मौदूदी साहिब ने अपनी किताब ''मुरतद की सज़ा...'' के अन्त पर फ़र्माया है । अन्तर यह है कि मेरे निकट तो जो लोग उस समय मौदूदी परिभाषा के अनुसार ''मुसलमान'' निर्धारित नहीं किए जा सकेंगे वह प्रत्येक दशा में मारे जाएँगे, परन्तु मौदूदी साहिब ने इस सम्भावना का वर्णन किया है कि क्योंकि इस प्रकार एक अद्वितीय और अनगिनत नरसंहार आवश्यक हो जाएँगे, इस कारण संभव है उनको तुरन्त मारने की बजाए केवल उम्मत से निष्कासित करके काफ़िर ज़म्मियों (टैक्स अदा करके रहने वाले) की भांति जीवित रहने पर विवश करने को ही पर्याप्त समझा जाए परन्तु उसके पश्चात् यदि शेष मुसलमानों में से कोई मुसलमान सिद्धान्तिक या व्यवहारिक रूप से काफ़िर हो तो उसे प्रत्येक दशा में क़त्ल किया जाए । परन्तु मौलाना के इस शाहाना माफ़ी नामे के होने पर भी मैंने अपने प्रस्तुत किए नक़्शे में जो क़त्ले आम का संक्षिप्त सा ख़ाका खींचा है उसके कुछ कारण हैं :-

1. प्रथम तो यह कि स्वयं मौलाना की ओर से भी किसी विश्वसनीय मुआफ़ी नामे की घोषणा नहीं, कठिनाई से केवल एक सम्भावित हल का वर्णन है और मुझे विश्वास है कि सत्ता प्राप्ति के पश्चात् इस ''नर्मी'' के व्यवहार का कोई प्रश्न ही उत्पन्न न होगा क्योंकि स्वयं मौलाना ही के शब्दों में :-

''हकूमत और शासन ऐसी कुछ बुरी बला है कि प्रत्येक व्यक्ति उसको जानता है । उसके प्राप्त होने का विचार करते ही इन्सान के अन्दर लालच के तूफ़ान उठने लगते हैं। व्यक्तिगत इच्छाएँ यह चाहती हैं कि धरती के ख़ज़ाने और ख़ुदा की मख़लूक की गर्दनें अपने हाथ में आएँ तो दिल खोल

कर ख़ुदाई की जाए ।'' (हक़ीक़ते जिहाद पृ. :15)

2. दूसरा कारण मेरे इस विश्वास का यह है कि इस मुआफ़ी नामे को जारी फ़र्माने पर तत्परता में मौलाना से एक ग़ल्ती हो गई है जिसे वह शीघ्र या कुछ समय पश्चात स्वयं अनुभव फ़र्मा लेंगे या शायद उनका हमख़्याल उसकी ओर उनका ध्यान आकृषित करवा देगा । ग़ल्ती यह है कि यदि इसलामी क़ानून में मुरतद की सज़ा क़त्ल है और वह जो पैदाइशी मुसलमान भी जो बड़े हो कर सिद्धान्तिक या व्यवहारिक रूप से इस्लाम से इनकारी हो चुके हों इस क़ानून-ए-शरीअत के अनुसार क़त्ल करने योग्य हैं तो मौलाना को यह अधिकार कहां से प्राप्त हो गया कि वह इन दोषियों को मुआफ़ करते फिरें । क्या वह कोई नई शरीअत बनाएँगे या शरीअत के किसी आदेश को मनसूख़ या परिवर्तित करने का अधिकार रखते हैं ? यदि नहीं तो फिर कोई चारा नहीं इसके अतिरिक्त कि या तो इस शरीअत से इनकारी होकर स्वयं मुरतदीन के संगठन में जा बैठें या फिर इच्छा के विरुद्ध क़त्ले आम का आदेश जारी फ़र्माएँ चाहे करोड़ों-करोड़ आदमी उसके दायरे में आएँ ।

3. मौलाना एक और बात भी भूल गए हैं और वह यह है कि जब मौलाना को स्वयं स्वीकार है कि इन दो दशाओं में से कि :-

''या तो उसे स्टेट में समस्त नागरिकता के अधिकारों से वंचित करके जीवित रहने दिया जाए या फिर उसके जीवन का ख़ात्मा कर दिया जाए । पहली दशा वास्तव में दूसरी दशा से अत्यन्त कठिन सज़ा है क्योंकि उसका अर्थ यह है कि वह لَا يَمُوْتُ فِيْهَا وَلَا يَحْيٰى *(न उसमें जीवित रहे न मृतक) की दशा में पड़ा रहे ।* (मुरतद की सज़ा पृ. :51)

तो फिर यह किस प्रकार सम्भव है कि जब मौलाना नम्रता और कृपा के स्वभाव में हों तो दो दशाओं में से ऐसी सज़ा निर्धारित फ़र्माएँ जो वास्तव में दूसरी सज़ा से अधिक कठिन सज़ा हो ।

इन कारणों के आधार पर मैं विवश था कि अपने प्रस्तुत किए हुए नक़्शे को उसी प्रकार प्रस्तुत करूँ जिस प्रकार मैंने प्रस्तुत किया है, क्योंकि मौदूदी हकूमत के साथ क़त्ल व विनाश की कल्पना अत्याचार की

ऐसी मज़बूत लौहे की ज़ंजीरों से जकड़ी जा चुकी हैं कि स्वयं इन ज़ंजीरों का पैदा करने वाला भी यदि चाहे कि इन्हें खोल कर या तोड़ कर इस कल्पना को अलग कर दे तो यह उसकी शक्ति के अधीन नहीं ।

गया है सांप निकल, अब लकीर पीटा कर ।

इस क्षमा याचना के पश्चात अब मैं वह शब्द नक़ल करता हूँ जो स्वयं मौदूदी साहिब के शब्द हैं ताकि यदि मैंने किसी परिणाम तक पहुँचने में ग़ल्ती खाई हो तो पाठक स्वयं सुधार फ़र्मा लें :-

''यदि आगे चल कर किसी समय इस्लामी व्यवस्था की हकूमत स्थापित हो तो (ध्यान रहे कि यह लेख 1942 ई. में लिखा गया था - अनुलेखक) और क़त्ले मुरतद का क़ानून लागू करके उन सब लोगों को बलपूर्वक इस्लाम के दायरे में क़ैद कर दिया गया जो मुसलमानों की संतान होने के कारण इस्लाम के जन्म से ही अनुयायी निर्धारित किए जाते हैं तो इस दशा में निःसंदेह यह शंका है कि इस्लाम की सामूहिक व्यवस्था में मुनाफ़िक़ीन की एक बहुत बड़ी संख्या सम्मिलित हो जाएगी जिससे हर समय हर ग़द्दारी का ख़तरा रहेगा ।

मेरे निकट इस का हल यह है وَاللّٰهُ الْمُوَفِّقُ لِلصَّوَاب (अल्लाह तआला ही सही बात का सामर्थ्य देने वाला है) कि जिस स्थान में इस्लामी इन्क़िलाब प्रकट हो वहां की मुसलमान आबादी को नोटिस दे दिया जाए कि :-

''जो लोग इस्लाम से सिद्धान्तिक व व्यवहारिक रूप से इनकारी हो चुके हैं और इनकारी ही रहना चाहते हैं, घोषणा की तिथि से एक वर्ष के भीतर-भीतर अपने ग़ैर मुस्लिम होने का बाक़ायदा प्रकटन करके हमारी सामूहिक व्यवस्था से बाहर निकल जाएँ । इस समय के पश्चात उन सब लोगों को जो मुसलमानों की नसल से पैदा हुए हैं मुसलमान समझा जाएगा । समस्त इस्लामी क़ानून उनपर लागू किए जाएँगे । धार्मिक कर्त्तव्य और आवश्यक रीतियों के पूरा करने पर उन्हें विवश किया जाएगा और फिर जो इस्लाम के दायरे से बाहर पग रखेगा उसे क़त्ल कर

दिया जाएगा ।''

इस घोषणा के पश्चात अत्यन्त प्रयत्न किया जाएगा कि जितने मुसलमान पुरुषों एवं मुसलमान स्त्रियों को कुफ़र की गोद में जाने से बचाया जा सकता है, बचा लिया जाए । फिर जो किसी प्रकार न बचाए जा सकें उन्हें दिल पर पत्थर रख कर हमेशा के लिए अपनी सोसायटी से काट फैंका जाए और इस पवित्र कार्य के पश्चात इस्लामी सोसायटी का आरम्भ केवल ऐसे मुसलमानों से किया जाए जो इस्लाम के समर्थक हों।'' (मुरतद की सज़ा पृ. 80-81)

इस प्रसंग (हवाला) में मेरा बस इतना अधिकार है कि नोट्स वाले भाग को लेख से जोड़ कर लिखने के स्थान पर अलग पैरा बना कर लिखा गया है । वरन् विषय और शब्द बिल्कुल मौदूदी साहिब के ही हैं । देखिए इस समाज सुधार की कल्पना में कितनी बच्चों जैसी प्रसन्नता पाई जाती है, जैसे कोई जिन्नों अथवा परियों के संसार में निवास कर रहा हो। हकूमत न हुई अलादीन का चिराग़ हो गया और जन सुधार न हुआ बर्फ़ के महल का निर्माण हो गया । परन्तु यदि वास्तव में ऐसा ही है और हकूमत अलादीन का चिराग़ ही है और जन सुधार बर्फ़ ही का महल है जिसका निर्माण इस चिराग़ के जिन्न के लिए कुछ कठिन नहीं तो मैं यह पूछता हूँ कि यदि यह चिराग़ खोया गया ?— मुझे इस समय पिछले नबियों का बहुत ख़्याल आ रहा है । कितने ही उनमें से ऐसे थे जिनका सारा जीवन अत्यन्त नृशंसिता की दशा में कटा । काश उनको भेजते समय भी ख़ुदा तआला यह चिराग़ उनके हाथों में थमा देता । कुछ उनके दुःख दूर होते कुछ संसार के दलिद्दर, अन्धकार दूर होते और प्रत्येक दशा में हिदायत (दीक्षा) का प्रकाश बिखर जाता ।

यह उद्धरण पढ़ने के पश्चात् मेरा यह अनुमान और भी सुदृढ़ हो गया है कि मौदूदी साहिब ने बचपन में अवश्य मार्क्स या लैनिन के ऊर्दू अनुवाद पढ़े हैं और रूसी इन्क़िलाब का इतिहास भी देखा है जिस से उनके स्वभाव में बहुत जोश उत्पन्न हुआ हैं और नए-नए विचार दिल में आए हैं कि अच्छा इस प्रकार भी हो सकता है ? पिछले सुधारक तो फिर

यूँही भूले भटके रहे यह न किसी से हुआ कि एक इन्क़िलाबी पार्टी बना लेता जिसका नारा यह होता कि हम आए तो सुधार करने ही हैं परन्तु "यह समझने के लिए अधिक विचार करने की भी आवश्यकता नहीं कि जन सुधार की कोई स्कीम भी हकूमत के अधिकारों पर क़ब्ज़ा किए बिना नहीं चल सकती ।"

"अतः इस पार्टी के लिए हकूमत पर क़ब्ज़ा किए बिना कोई चारा नहीं ।" (हक़ीक़ते जिहाद पृ. 59)

अतः हम पहले हकूमत पर क़ब्ज़ा करेंगे उसके पश्चात तुम्हारे सुधार का काम आरम्भ करेंगे और तुम देखोगे कि हकूमत हाथ आते ही हम मार-मार कर तुम्हारे दिलों को कैसा साफ़ और सुथरा कर देते हैं । इस विषय में मुझे क़ुर्आन-ए-करीम और मौलाना के मध्य एक और विरोध याद आ गया । क़ुर्आन-ए-करीम तो फ़र्माता है कि जब सुधार का समय समाप्त हो जाता है तो फिर सख़्ती का समय आरम्भ होता है । और जब सख़्ती का समय आरम्भ हो जाता है तो फिर सुधार का प्रश्न ही शेष नहीं रहता । फ़िरऔन اٰمَنْتُ اٰمَنْتُ (मैं ईमान लाता हूँ, मैं ईमान लाता हूँ) कहता डूब गया परन्तु उसका ईमान क़बूल न हुआ । इसी विषय को दूसरे स्थान पर क़ुर्आन-ए-करीम फ़र्माता है :-

فَلَمْ يَكُ يَنْفَعُهُمْ اِيْمَانُهُمْ لَمَّا رَاَوْا بَاْسَنَا ۭ سُنَّتَ اللّٰهِ الَّتِيْ قَدْ خَلَتْ فِيْ عِبَادِهٖ ۚ وَخَسِرَ هُنَالِكَ الْكٰفِرُوْنَ (المومن:٨٦)

(अलमोमिन: 86)

परन्तु जब वह हमारा अज़ाब देख चुके तो उनके ईमान ने उन्हें कुछ भी लाभ न दिया । यह ख़ुदा की सुन्नत है जो उसके उपासकों के विषय में चली आती है । और यह वह स्थान है जहां काफ़िर घाटे में पड़ गए ।

मौदूदी दृष्टिकोण इसके बिल्कुल विपरीत है और इस दृष्टिकोण के अनुसार डंडा पहले है सुधार बाद में । बल्कि वास्तविक ईमान तो प्राप्त ही उस समय होता है जब तलवार दिलों के ज़ंग दूर कर दे ।

यह बहस तो ख़ैर यूँही आ गई बात यह हो रही थी कि मौदूदी

साहिब के यह विचार कहां से आए हैं । क़ुर्आन-ए-करीम से यदि नहीं तो फिर कहीं से तो आए हैं या केवल अपना ही अविष्कार है ? कठिनाई यह है कि अविष्कार इसे हम कह नहीं सकते क्योंकि इस प्रकार के सुधार के विचार पहले से ही संसार में उपस्थित हैं ।

देखना केवल यही शेष था कि कहां उपस्थित हैं । अतः इस बारे में जो कुछ मुझे ज्ञात था वह लिख दिया ।

अब अन्त में मैं उस प्रतिक्रिया को लेता हूँ जो मौलाना के ऊपरलिखित निर्णायिक इन्क़िलाबी घोषणा को पढ़ कर विभिन्न स्वभावों पर हो सकता है । एक प्रभाव तो वही है जिसका मैंने ऊपर वर्णन कर दिया है अर्थात इन्सान इसे अधिक से अधिक एक वृद्ध बुज़ुर्ग का बचपन समझ सकता है परन्तु इसके अतिरिक्त मैं सोचता हूँ कि यदि यह मान लिया जाए यदि वास्तव में कोई ऐसा इन्क़िलाबी दिन किसी अभागे देश ने देखा तो इस घोषणा को पढ़ने के पश्चात् लोगों की प्रतिक्रिया क्या होगी ।

मेरा विचार है कि मोटे स्वभाव के उज्जड़ प्रकार के व्यक्ति तो यह घोषणा पढ़ कर पत्रवाहक के मुंह पर मारेंगे कि "जाओ जाओ बड़े आए हो सुधार करने वाले कहीं के । ख़ुदाई फ़ौजदार बने फिरते हो । तुम्हें किसने ठेका दिया है मेरे धर्म का ? घर जाकर बैठो । और यदि फिर इस ओर मुख किया तो..." यह वही वर्ग है जिससे सम्बन्धित ग़ालिब कहता है कि

"रिन्दाने दरे मैकदा गुसताख़ हैं ज़ाहिद,
ज़िन्हार न होना तरफ़ इन बे अदबों के ।"

यह वर्ग मैं समझता हूँ कि और अवकाश दिए बिना उसी समय हकूमत के रजिस्टरों में "काफ़िर" गिन लिया जाएगा ।

दूसरा एक बड़ा वर्ग मेरे विचार में ऐसा होगा जो एक वर्ष अत्यन्त दुविधा की दशा में पड़े रहने के पश्चात परैशान तो बहुत होगा परन्तु अन्ततः "ग़ैर मुस्लिम" होने की घोषणा कर देगा । यह अन्त में वर्णित वर्ग वह है जिसकी पहली प्रतिक्रिया साधारणतया जान बचाने के विचार के रूप में प्रकट हुआ करती है । यह वही वर्ग है जिसके सम्बन्ध में

मौदूदी साहिब को यह भय है कि यदि तुरन्त मुरतद की सज़ा क़त्ल निर्धारित कर दी गई तो यह तुरन्त मुनाफ़िक़ मुसलमान बन जाएगा ।

अब रही मेरी निजी प्रतिक्रिया तो मैं अभी से खोल खोल कर बता देना चाहता हूँ कि यदि तो इस घोषणा में ''ग़ैर मुस्लिम'' के शब्द से आपका भावार्थ यह है कि कोई मुसलमान आपके विशिष्ट सिद्धान्तों को मानने से इन्कार करदे और आप के ज़ुल्म के समक्ष शीष झुकाने के लिए कदापि तैयार न हो । यदि कुफ़र का यह भावार्थ है कि कोई प्रेम करने वाला अपने प्रिय आक़ा(स) की ओर फैंके जाने वाले इस घृणित आरोप को ठोकरें मारे कि आप(स) ने चमत्कारों और दूसरों को प्रभावित करने वाली दिव्य शक्ति की ''असफ़लता'' के बाद तलवार के बल से इस्लाम को फैलाया था तो फिर मुझे आज ही ''काफ़िरों के संगठन'' में लिख लीजिए । और ख़ुदा की सौगन्ध यदि इस कुफ़र की सज़ा सोसायटी से काट फैंका जाने के स्थान पर सूली पर लटकाया जाना भी हो और एक देश की सत्ता ही नहीं इस धरती की समस्त शक्तियां भी आपकी मुट्ठी में एकत्रित हो जाएँ और भयंकर अत्याचारों के भुतने आपकी उंगलियों और पलकों के इशारों पर नाचने लगें तो भी मेरा उत्तर यही होगा कि

बाद अज़ ख़ुदा ब इश्के मुहम्मद मुख़म्मरम
गर कुफ़र ईं बवद बख़ुदा सख़्त काफ़िरम

ख़ुदा तआला के पश्चात मैं मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के प्रेम में तुप्त हूँ । यदि कुफ़र यही है तो ख़ुदा की क़सम ! मैं सख़्त काफ़िर हूँ ।

क़ुर्बाने तुसत जाने मन ऐ यारे मुहसिनम,
बामन कदाम फ़रक तू कर दी कि मन कुनम ।

ऐ मेरे यारे मुहसिन (उपकारी मित्र) ! तुझ पर मेरी जान क़ुर्बान हो तूने कृपा व उपकार में कब मुझ से कोई अंतर किया है जो में करूँ ।

दर कूऐ तू अगर सरे ऊशाक़ राज़ नन्द,
अव्वल कसे कि लाफ़े तअश्शुक ज़न्द मनम

हां, ए मेरे प्यारे रसूल(स) यदि तेरी प्रतोली (गली) में प्रेमियों का शीष कटाने की ही रीत हो तो वह पहला व्यक्ति जो इश्क का नारा ऊंचा करेगा, मैं हूँगा । मैं हूँगा ।

अहरार के उल्मा कार्य क्षेत्र में

एक घटनात्मक झलक

मौलाना मौदूदी की सत्ता का स्वप्न तो कभी पूरा न हो सकेगा परन्तु उनके दृष्टिकोण के प्रचार और उनके समर्थकों के अग्नि भाषणों ने आज से कुछ वर्ष पूर्व पाकिस्तान को इस स्वप्न के फल की एक झलक दिखाई थी।

उपद्रवों का उद्देश्य एवं कार्य शैली

दुर्भाग्यवश इस युग के कुछ उल्माओं के दिलों में ऐसी कटुता आ चुकी है कि वह मानवता के उत्तम मुल्यों दया तथा कृपा, सहानुभूति और निष्कपटता की उन भावनाओं से पूर्णत्या रहित हो चुके हैं जो प्रत्येक धर्म की आत्मा हुआ करते हैं । यहां नाम बनाम ऐसे समस्त उल्मा के धार्मिक विचारों के विस्तार में जाने का अवसर नहीं । यह उल्मा जब इन निजी दृष्टिकोणों को इस्लाम की ओर सम्बन्धित करके अज्ञानी जनता में फैलाते हैं तो प्रत्येक ओर लड़ाई-झगड़े और उपद्रव का एक तूफ़ान उमड़ पड़ता है।

1953 ई. का वर्ष पाकिस्तान के इतिहास में प्राय: एक अन्धकारमय वर्ष के रूप में लिखा जाएगा । यह वही वर्ष है जब कि कुछ ''दीनी उल्मा'' को धार्मिक विचारों को कार्यरूप देने का ख़ूब दिल खोल कर अवसर मिला था । उनकी ''इस्लामी कल्पना'' जो पहले उनके सीने की कोठरियों में क़ैद थी और देश के क़ानून की ज़ंज़ीरों में पराधीन रहा करती थी इन सब क़ैदों से स्वतन्त्र हो कर और मानवता और सभ्यता और शराफ़त के सब बन्धन तोड़ कर कार्य क्षेत्र में आयी । वह पंजाब (पाकिस्तानी पंजाब) की दीर्घता में गांव-गांव फिरने लगी । आरम्भ में छिप-छिप कर दिन के प्रकाश से घबराती हुई । क़ानून की पकड़ से शरीर चुराती हुई, फिर धीरे-धीरे निर्लज्ज होती चली गई और विभिन्न क़स्बों और शहरों के गली-कूचों में स्वतन्त्रतापूर्वक दनदनाने लगी यहां तक कि 6 मार्च 1953 ई. का वह दिन आ गया जो इस वर्ष का सब से अन्धकारमय दिन था । यदि दिन के पर्दे में कभी कोई रात उदय हुई है

तो यह वही रात थी जो दिन की वेष-भूषा धारण किए हुए चली आई थी। यदि कभी सूर्य ने प्रकाश के स्थान पर अन्धकार की वर्षा की है तो यह वही सूर्य था जो अन्धकार बिखेरता हुआ पूर्वी किनारे से सिर उठा रहा था — यह प्रकाश की किरणें नहीं थीं बल्कि पीड़ा व अत्याचार के तीर थे — यह आकाश से उतरने वाली प्रकाशमय (ज्योतिमय) किरणें नहीं थीं बल्कि हिंसा व अत्याचार की परछाइयां थीं जो एक झूठी चमक के साथ सीनों और दिलों में छेद कर रही थीं । यह वही अशुभ दिन था जिसका वर्णन करते हुए तहक़ीक़ाती अदालत के फ़ाज़िल जज यह लिखने पर विवश हो गए कि "इस दिन की घटनाओं को देख कर सैंट बारथोलोम्यो डे याद आता था ।"

(सन 1953 के फ़सादात की तहक़ीक़ाती (पाकिस्तानी) अदालत की रिपोर्ट सफ़ा, 171)

"सैंट बारथोलोम्यो डे" फ्रांस के इतिहास का वह दिन है जिसके वर्णन से आज भी फ्रांस शर्माता है, यह वह दिन है जिसका चेहरा रात्रि की भांति काला था । यह वह रात थी जब देश के रोमन कैथोलिक धार्मिक आगुओं और उस समय के बादशाह की परस्पर साज़िश से प्रोटैस्टैंट सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने वाले निर्बल और असहाय ईसाइयों का एक निर्दयतापूर्ण रक्तपात किया गया और इस क्रूरतापूर्वक उनको मारा गया कि फ्रांस निवासी ही नहीं इन्सान सामूहिक रूप से उसके वर्णन से शर्माने लगता है ।

उस दिन का वर्णन करते हुए मिस्टर विलयम हावट अपनी किताब "हिस्टरी ऑफ़ प्रीस्ट क्रीफ़ट इन ऑल ऐजज़" में लिखते हैं :-

"क़ातिलों के शोर, नृशंसितों के हाहाकार और ज़ख़्मियों की चीख़-पुकार से क़यामत आई हुई थी । वधितों के शरीर खिड़कियों से बाहर फैंके और बाज़ारों में सड़कों पर घसीटे गए और इस क्रम में बच्चों और बूढ़ों, पुरुषों एवं स्त्रियों में कोई अंतर न किया गया । उन के नाक-कान आदि काटे गए और यह सब कुछ ख़ुदा के सम्मान और प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए किया गया ।"

अतः फ़ाज़िल जजों की राय में 6 मार्च 1953 ई. का दिन पाकिस्तान के इतिहास में सैंट बारथोलोमयो डे का स्थान रखता था। क्योंकि :-

"इन्सानों के बड़े-बड़े समूहों ने जो साधारण हालात में शिष्ट और गंभीर शहरियों पर आधारित था ऐसे विद्रोही और उन्मादित समूहों का रूप धारण कर लिया था जिनकी एक मात्र भावना यह थी कि क़ानून की अवज्ञा करें और उस समय की हकूमत को झुकने पर विवश कर दें। इसके साथ ही समाज के निम्न और घटिया तत्त्व उस समय की अव्यवस्था और अस्त व्यस्तता से लाभ उठा कर जंगल के हिंसक जानवरों की भांति लोगों का वध कर रहे थे, उनका धन लूट रहे थे और मूल्यवान सम्पत्तियों को आग लगा रहे थे केवल इस लिए कि यह एक रुचिपूर्ण तमाशा था, (क्या इसी प्रकार का तमाशा जैसे रोमन धनवान कालसीमयम में बैठ कर देखा करते थे - अनुलेखक) या किसी ख़्याली दुश्मन से बदला लिया जा रहा था। पूरी मशीनरी जो समाज को जीवित रखती है, टुकड़े टुकड़े हो चुकी थी।" (तहक़ीक़ाती अदालत की रिपोर्ट, पृ. 193)

एक मुसलमान के दिल में उस दिन की भयंकर घटनाओं पर दृष्टि डालते ही तुरन्त यह विचार उत्पन्न होगा कि जब इस्लाम निःसंदेह शांति और प्रेम की शिक्षा देता है तो फिर ऐसा क्यों हुआ और क्यों धार्मिक पथप्रदर्शकों के एक विशिष्ट गिरोह ने यह लज्जाजनक हालात उत्पन्न कर दिए ? तो इसका उत्तर यह है कि जैसा कि क़ुर्आने करीम के प्रस्तुत किये हुए धार्मिक इतिहास से प्रमाणित किया जा चुका है इस प्रकार के कुरुप कार्य कभी भी धर्म हेतु नहीं किए जाते बल्कि धर्म के नाम पर किए जाते हैं। धर्म तो एक बलि का बकरा हुआ करता है जो बदनामी के दाग़ थोंपने के लिए इस्तेमाल होता है पर्दे के पीछे उद्देश्य प्रायः कभी तो सत्ता की लालसा और कभी लीडरी की इच्छा, कभी नाम व ख्याति एवं कभी इर्ष्या व द्वेष होते हैं। अतः 1953 ई. के दंगों की छान बीन के पश्चात्

तहक़ीक़ाती न्यायालय के विद्वान न्यायाधीष भी इसी अन्तिम परिणाम तक पहुँचे कि अहरारी विद्वानों ने धर्म के नाम पर जो अधार्मिक कार्य किए उनके उद्देश्य भी कुछ और थे । अतः इसी विषय में वह लिखते हैं :-

"अहरार के व्यवहार के सम्बन्ध में हम नर्म शब्द प्रयुक्त करने में असमर्थ हैं । उनकी कार्य-कारणी विशेष रूप से घृणित और नफ़रत योग्य थी इसलिए कि उन्होंने एक सांसारिक उद्देश्य के लिए एक धार्मिक समस्या को प्रयुक्त करके इस समस्या की निंदा की है ।"

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 277)

"इन लोगों का उद्देश्य यह है कि मुसलमानों के मध्य मतभेद उत्पन्न करें और पाकिस्तान की दृढ़ता के सम्बन्ध में जनता के विश्वास को हानि पहुँचाएँ । इस बलवे का उद्देश्य स्पष्ट है कि धर्म का चोला ओढ़ कर साम्प्रदायिकता की अग्नि को भड़काया जाए और मुसलमानों की एकता को तबाह कर दिया जाए ।

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 150)

अतः पाकिस्तान के दो न्यायप्रिय अति विद्वान न्यायाधीषों के निर्णय के अनुसार जिस तक वह अत्यन्त चिंतन और छान बीन के बाद पहुँचे :-

"इस्लाम उनके लिए एक हथियार की हैसियत रखता था जिसे वह किसी राजनीतिक विरोधी को परेशन करने के लिए जब चाहते एक ओर रख देते और जब चाहते उठा लेते। कांग्रेस के साथ वास्ता पड़ने की दशा में तो उनके नज़दीक धर्म एक व्यक्तिगत मुआमला था और वह जातीय दृष्टिकोण पर दृढ़ (पाबन्द) थे, परन्तु जब वह लीग के विरुद्ध पंक्तिबद्ध हुए तो उनका एकमात्र हित इस्लाम था जिसका ठेका उन्हें ख़ुदा की ओर से मिला हुआ था । उनके

निकट लीग इस्लाम से बेपरवाह ही न थी बल्कि इस्लाम की शत्रु भी थी । उनके निकट क़ाइद-ए-आज़म एक बड़े काफ़िर थे ।'' (रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 273)

फ़िर फ़रमाते हैं :-

"यह विश्वसनीय रूप से कहा जा सकता है कि अब अहरारियों ने अहमदियों के विरुद्ध उपद्रव को अपने हथियार ग्रह से एक राजनीतिक हथियार के रूप में बाहर निकाला और जो घटनाएँ उसके बाद सामने आयीं वह इस बात का खुला खुला प्रमाण हैं कि वह राजनीतिक पार्टी के तौर पर अत्यन्त बुद्धिमान व चालाक हैं । उन्होंने सोचा कि यदि जनता की भावनाओं को अहमदियों के विरुद्ध भड़का देंगे तो कोई उनके विरोध का साहस नहीं करेगा और उनकी इस सरगर्मी का जितना भी विरोध किया जाएगा उतने ही वह हरमन प्रिय और जन साधारण में मान्य हो जाएँगे और बाद की घटनाओं से यह प्रमाणित हो गया कि उनका यह मानना बिल्कुल सही था ।"

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 275)

अतः निःसंदेह यह प्रमाणित है कि भूतकाल की भांति 1953 ई. में भी जो झगड़ा उत्पन्न किया गया वह धर्म के नाम पर तो अवश्य था परन्तु धर्म हेतु न था और हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का पवित्र दीन इससे पूर्णत्या बरी है ।

यहां यह महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि आख़िर यह विशिष्ठ पथप्रदर्शक किस प्रकार एक अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के विरुद्ध इतनी भयंकर क्रोध की अग्नि भड़काने में सफ़ल हो गए कि विद्वान न्यायाधीषों को उस पर एक दृष्टि डालने से सैंट बारथोलोम्यो डे की याद आ गई । तो इस महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर यही है कि यह बिल्कुल उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार हमेशा से होता चला आया है और धार्मिक इतिहास का प्रत्येक रक्तरंजित अध्याय जिस में धर्म के नाम पर रक्त की होली खेलने वालों की कार्यविधि का वर्णन उपस्थित है, इस पर बड़ी व्याख्या के साथ

प्रकाश डालता है । इस कार्यविधि की एक झलक तहक़ीक़ाती अदालत की रिपोर्ट में भी नज़र आती है । विद्वान न्यायाधीष इसी कार्यविधि का वर्णन करते हुए फ़र्माते हैं :-

''अहमदियों के विरुद्ध शत्रुतापूर्ण और निराधार आरोप लगाए गए हैं कि बाऊंडरी कमीशन के निर्णय में ज़िला गुरदासपुर इस कारण हिन्दुस्तान में सम्मिलित कर दिया गया कि अहमदियों ने एक विशेष पद्धिति अपनाई और चौधरी ज़फ़र-उल्लाह-ख़ां ने जिन्हें क़ाएदे आज़म ने इस कमीशन के समक्ष मुस्लिम लीग का केस प्रस्तुत करने पर निर्धारित किया था, विशेष प्रकार के तर्क प्रस्तुत किए । परन्तु इस अदालत का अध्यक्ष (पूर्व चीफ़ जस्टिस सुप्रीम कोर्ट ऑफ़ पाकिस्तान और वर्तमान क़ानून मंत्री केन्द्रीय सरकार पाकिस्तान) जो इस कमीशन का मैम्बर था इस साहस पूर्ण पराक्रम पर धन्यवाद व कृतज्ञता व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य समझता है जो चौधरी ज़फ़र-उल्लाह-ख़ां ने गुरदासपुर के मामले में की थी । यह वास्तविकता बाऊंडरी कमीशन के काग़ज़ात में प्रकट है और जिस व्यक्ति को इस समस्या में रुचि हो वह शौक़ से इस रिकार्ड का अध्ययन कर सकता है । चौधरी ज़फ़र-उल्लाह-ख़ां ने मुसलमानों की अत्यन्त निष्फल सेवाएँ कीं, इतना होने पर भी कुछ जमाअतों ने तहक़ीक़ाती अदालत में इनका वर्णन जिस रूप में किया है वह लज्जा जनक अकृतज्ञता का खुला खुला प्रमाण है ।'' (रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत पृ. 209)

उन विद्वानों की ओर से अहमदिय्यत पर बस यही एक ''निराधार निर्दोष'' नहीं लगाया गया! बल्कि झूठे प्रापेगंडे का एक प्रलय मचा दिया गया और प्रत्येक हादसे और प्रत्येक साज़िश को जमाअते अहमदिय्या पर थौपा जाने लगा । जंगेशाही के पीड़ा जनक हादसे की ज़िम्मेदारी भी अहमदियों पर डाली गई और रावलपिंडी की साज़िश को

अहमदियों की ओर ही मोड़ा गया । ख़ान लयाक़त अली ख़ान के अपवित्र वध का आरोप भी नृशंसित अहमदियों के सिर ही धरा गया और कभी उन्हें हिन्दुस्तान का जासूस कहा गया और कभी उन पर गंदे शिष्टाचारिक आरोप लगाए गए और कभी पाकिस्तान का ग़द्दार बताया गया और झूठ और अत्याचार की कोई सीमा न रहने दी । यहां तक कि अहमदियों पर यह आरोप भी लगाया गया कि हम نعوذ بالله (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) अपने सर्वप्रिय नबी, अपने पवित्र आक़ा (स्वामी) हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का तिरस्कार करते हैं और आप(स) को गालियां देते हैं । परन्तु न्यायप्रिय जज साहिबान ने जब आरोपों की गहरी छान बीन की तो दशा को बिल्कुल इसके विपरीत पाया । अतः जंगे शाही के हादसे से सम्बन्धित वह मिस्टर अनवर अली डी-आई-जी-सी-आई-डी की यह टिप्पणी नक़ल फ़र्माते हैं कि :-

''यह ब्यान बिल्कुल झूठ है कि जंगे शाही या लाहौर छावनी के हवाई हादसों में मिर्ज़ाईयों का हाथ था क्योंकि जंगे शाही के हादसे में जो व्यक्ति मारे गए उनमें जनरल शेर ख़ान थे जो स्वयं मिर्ज़ाई थे । अहरार के भाषण केवल ज़हरीले ही नहीं बल्कि अशिष्ट और घृणित हैं ।

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 121)

रावलपिंडी साज़िश से सम्बंधित विद्वान जजों ने लिखा :-

''मौलवी मुहम्मद अली जालंधरी ने 15 अप्रैल 1951 ई. को मिंटगुमरी कांफ्रेंस में भाषण देते हुए कहा कि उनके पास इस बात का लिखित प्रमाण उपस्थित है कि रावलपिंडी साज़िश से अहमदियों का सम्बन्ध है, यह निःसंदेह अर्थहीन बात थी ।''

फिर फ़र्माते हैं :-

''यह स्पष्ट रूप से घृणा की सीख थी और घृणा भी अत्यन्त उपेक्षित प्रकार की । क्योंकि न तो मौलवी मुहम्मद अली ऐसे महत्त्वपूर्ण थे कि ऐसा प्रमाण उनके

क़ब्ज़े में होता और न कोई तहरीर उसके पश्चात् साज़िश के मुक़दमे के ट्रिब्यूनल के सामने प्रस्तुत की गई परन्तु इस प्रकार की संदेह जनक ख़बर अत्यन्त आसानी से लोगों के दिमाग़ों में घर-कर लेती है ।''

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 329)

फिर ख़ान लयाक़त अली ख़ान के वध का आरोप अहमदियों पर धरते हुए :-

''क़ाज़ी अहसान अहमद शुजाअ आबादी ने यह कह दिया कि क़ाएदे मिल्लत के वध में (जो पिछले अक्तूबर में हुआ था) अहमदियों का हाथ था ।''

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 36)

परन्तु इस आरोप का बोदापन ऐसा प्रकट था कि विद्वान न्यायाधीशों ने इस पर केवल यह व्यंग्यात्मक वाक्य कसना ही पर्याप्त समझा कि :-

''इन लोगों की प्रशंसा करनी पड़ती है कि यह सभी राष्ट्रीय मुसीबतों की तहक़ीक़ात के गुमशुदाह क्रम खोज निकालने में कौशल रखते हैं ।''

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत पृ. 235)

फ़िर मुज़फ़्फ़र गढ़ के एक भाषण में एक अत्यन्त प्रसिद्ध अहरारी लीडर ने जो अब इस संसार से कूच कर चुके हैं अहमदियों पर आरोप धरा कि :-

''एक अहमदी जासूस एक व्यक्ति गोपाल दास के साथ गिरफ़्तार किया गया है और मैंने हकूमत को इस विषय में उत्तम जानकारियां उप्लब्ध कराई हैं ।''

इस आरोप को अपनी रिपोर्ट में संकलित फ़र्मा कर विद्वान जज लिखते हैं :-

''क्या साधारण सीधे सादे लोग यह कल्पना कर सकते हैं कि यह वरिष्ठ जो अपनी वृद्ध आयू के बोझ से

बोझल होने पर भी तलवार की भांति पैना है । गोपाल दास के साथी से सम्बन्धित ऐसी कहानी रचेगा जिसको सच्चाई से कोई दूर का सम्बन्ध भी नहीं ? यदि यह सच हो तो क्या इस से ''ग़द्दारों'' के विरुद्ध तीव्र भावनाएँ भड़क न जायेंगी ? यदि आप यह जानते हुए कि इस भाषण का आधार झूठ पर है इससे दृष्टि हटा रहे हैं तो यह वक्ता के सफ़ेद बालों का सत्कार तो हो परन्तु आप उस रोग से उपेक्षा कर रहे हैं जो उसने आपकी जाति में फैला दिया है।''

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत पृ. 330)

अत: बड़े-बड़े सफ़ेद दाढ़ियों वाले अहरारी विद्वान स्टेजों पर चढ़ कर झूठ पर झूठ बोलने लगे और आरोप पर आरोप लगाने लगे और :-

''जितना समय व्यतीत होता गया भाषणों की उच्चारण शैली बुरी से बुरी होती चली गई... अहरार ने अपना पूरा ध्यान अहमदियों की निंदा पर केन्द्रित कर दिया और अत्यन्त लज्जा जनक गाली गलोच आरम्भ कर दिया।''

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 20, बहवाला मिस्टर अनवर अली डी. आई जी., सी. आई. डी.)

अहरार के जिन भाषणों की ओर संकेत करते हुए मिस्टर अनवर अली ने ''अत्यन्त लज्जाजनक गाली गलोच'' के शब्द प्रयुक्त फ़र्माए हैं उनका पूरा परिचय इस संक्षिप्त परिभाषा में तो नहीं हो सकता बल्कि वास्तव में वह ऐसी मानवता का विनाश करने वाली हैं कि यदि एक साधारण व्यक्ति से सम्बन्धित भी वह शब्द प्रयुक्त किए जाएँ जो सिलसिला आलिया अहमदिय्या के पवित्र संस्थापक(अ) से सम्बन्धित किए गए तो कोई शरीफ़ इन्सान इन्हें सुनना सहन नहीं कर सकता और समस्त लीडर मौलवी मुहम्मद

अली जालन्धरी व मास्टर ताज-उद-दीन अन्सारी व अबूज़र बुख़ारी सहित इस गाली गलोच और अपशब्द कहने में एक दूसरे से बढ़ने लगे और आश्चर्य है कि फिर भी उसी नबियों(अ) के सरदार(स) के उत्तराधिकारी होने का दावा करते थे जिसकी ज़ुबान कौसर व तसनीम की भांति पवित्र और मीठी थी और जिसकी शिक्षा यह थी कि :-

وَلَا تَسُبُّوا الَّذِيْنَ يَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ فَيَسُبُّوا اللّٰهَ عَدْوًاۢ بِغَيْرِ عِلْمٍ
(الانعام:١٠٩)

(अल् अनआम : 109)

(ख़बरदार) उन झूठे उपासकों को (भी) गालियां न दो जिन्हें यह लोग ख़ुदा के अतिरिक्त शरीक ठहरा रहे हैं, ऐसा न हो कि वह अपनी जहालत से ख़ुदा को बुरा भला कहने लग जाएँ।''

परन्तु यहां तो कोई झूठा उपासक भी मुक़ाबले पर नहीं था बल्कि इस्लाम का एक ऐसा भक्त था जिसने अपना समस्त जीवन इस्लाम की सेवा में व्यतीत कर दिया और जिसका ''कसूर'' केवल इतना था कि उसने ख़ुदा की आज्ञा के अनुसार महदी और मसीह होने का दावा किया और जिसका गर्व केवल यह था कि वह अहमद-ए-अरबी सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का सेवक है और उसी के दीन के प्रचार के लिए भेजा गया है । हां यह मानवता का कलंक लज्जा जनक गाली गलोच उसी मिर्ज़ा-ए-क़ादियान(अ) से सम्बन्धित की गई जिस की जान मुहम्मद अरबी सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के इश्क़ में पिघलती रहा करती थी और जो कभी प्रेम की तपन से बेचैन होकर अपने प्रेमी आक़ा(स) से इस प्रकार बात करता था कि :-

''जानम फ़िदा शवद बरहे दीने - मुस्तफ़ा(स)
ईं अस्त कामे दिल अगर आयद मुयस्सरम ।''

मेरे दिल की एक ही चाहत है कि अगर मुझे अवसर प्राप्त हो तो

मेरी जान मोहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के दीन के मार्ग में न्योछावर हो ।

और कभी जुदाई के दर्द से व्याकुल होकर अपनी हार्दिक भावनाओं का प्रकटन यूँ करता था कि :-

اُنْظُرْ اِلَیَّ بِرَحْمَةٍ وَّتَحَنُّنٍ

يَا سَيِّدِیْ اَنَا اَحْقَرُ الْغِلْمَانِ

يَا حِبِّ اِنَّکَ قَدْ دَخَلْتَ مَحَبَّةً

فِیْ مُهْجَتِیْ وَمَدَا رِکِیْ وَجَنَانِ

مِنْ ذِکْرِ وَجْهِکَ يَا حَدِيْقَةَ بَهْجَتِیْ

لَمْ اَخْلُ فِیْ لَحْظٍ وَّلَا فِیْ اٰنِ

جِسْمِیْ يَطِيْرُ اِلَيْکَ مِنْ شَوْقٍ عَلَا

يَا لَيْتَ کَانَتْ قُوَّةُ الطَّيَرَانِ

अनुवाद :-

''मेरे प्यारे ! मेरी ओर एक कृपा और दया की दृष्टि डाल । देख मेरे स्वामी ! मैं तो एक तुच्छ सेवक हूँ ।

हे मेरे प्रिय ! तू अपने प्रेम के साथ मेरी आत्मा और मेरे दिल व दिमाग़ में प्रवेश कर गया है ।

हे मेरी प्रसन्नताओं के बाग़ ! मैं तेरी याद से किसी पल और किसी क्षण भी ख़ाली नहीं रहता ।

मानो मेरा शरीर एक अत्यन्त शौक़ के साथ तेरी ओर उड़ा चला जा रहा है । ऐ काश उड़ने की शक्ति होती ! ऐ काश उड़ने की शक्ति होती !!

इसी ख़ातम उन-नबिय्यीन(स) के भक्त और आपके अनुयायियों के सम्बन्ध में अहरार पथप्रदर्शकों ने अश्लील भाषा को अपने अन्त तक

पहुँचा दिया और हर वह गंदी गाली जो पंजाब की गलियों में सुनाई दी जा सकती है आपको दी जाने लगी । यहां तक कि विद्वान जजों ने जब उनके कुछ हवाले अहरार समाचार पत्रों और पुलिस रिपोर्टों में अवलोकन किए तो एक विशेष लिखित का प्रसंग देते हुए वह यह लिखने पर विवश हो गए कि :-

''एक ऊर्दू अख़बार ''मज़दूर'' मुल्तान से प्रकाशित होता है जिस का ऐडीटर सय्यद अबूज़र बुख़ारी है जो प्रसिद्ध अहरारी लीडर सय्यद अता-उल्लाह शाह बुख़ारी का बेटा है उसने अपने प्रकाशन 13 जून 1952 ई. में एक लेख प्रकाशित किया जिस में जमाअते अहमदिय्या के संस्थापक के सम्बन्ध में अरबी भाषा में एक ऐसी घटिया और बाज़ारी बात लिखी है कि हमारे संस्कार हमें इसकी व्याख्या की आज्ञा नहीं देते । यदि यह शब्द अहमदी जमाअत के किसी व्यक्ति के सामने कहे जाते और परिणाम यह होता कि किसी की खोपड़ी तोड़ दी जाती तो हमें इस पर तनिक भी आश्चर्य न होता । जो शब्द प्रयोग किए गए वह परले दर्जे के घृणित और अश्लील रुचि का प्रमाण है और उनमें उस पवित्र भाषा का अत्यन्त धृष्टतापूर्ण मज़ाक उड़ाया गया है जो क़ुर्आनि मजीद और नबी करीम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की भाषा है ।

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 87)

अत: यही वह कार्य विधि है जिसके द्वारा इन मार्ग दर्शकों ने पश्चिमी पाकिस्तान के पूरे क्षेत्र में अहमदियों के विरुद्ध विरोध की एक आग भड़का दी और स्वयं जलते हुओं का तमाशा करने के लिए किनारे बैठे रहे और जैसा कि संसार की रीति है मुसलमान सज्जनों की अधिकता यद्यपि अत्यन्त घृणा और अप्रियता के साथ इस ''इस्लाम की सेवा'' को देखती रही परन्तु अत्यन्त मजबूर व असहाय थी क्योंकि यह सज्जन जानते थे कि यह ''विद्वान'' एक लम्बे समय की खुली कटुभाषी के बलपूर्वक (जिसे यह ''ज़ोरे ख़ताबत'' का नाम देते थे) साधारण भावनाओं में

अत्यन्त उत्तेजना उत्पन्न कर चुके हैं और आज प्रत्येक वह व्यक्ति जो इस अत्याचार व हिंसा के विरुद्ध आवाज़ उठाएगा स्वयं भी इसी अत्याचार व हिंसा का निशाना बन जाएगा । यह कोई काल्पनिक भय नहीं था बल्कि व्यवहारिक रूप से ऐसा होता भी रहा । अतः एक अवसर पर जबकि एक ग़ैर अहमदी न्यायप्रिय पुलिस अफ़सर ने एक उपद्रव को रोकने का प्रयत्न किया तो उस के विरुद्ध भी झूठ बोलने और उत्तेजना पूर्वक हंगामा गर्म कर दिया गया और पुलिस के विरुद्ध यह अफ़वाह फैला दी गई कि :-

"पुलिस ने स्वयं सेवकों को बिखेरते हुए क़ुर्आन-ए-मजीद का अपमान किया । उसको ठोकरें लगाई । उसके पृष्ठ फाड़ दिए और एक छोटे से लड़के का वध कर दिया । दिल्ली दरवाज़े के बाहर जलसा हुआ जिसमें एक लड़का प्रस्तुत किया गया जो अपने हाथों में क़ुर्आन मजीद के कुछ फटे हुए पृष्ठ लिए हुए था । उसने ब्यान किया कि मैं कलाम-ए-इलाही के इस अपमान का आंखों देखा गवाह हूँ । एक मौलवी ने (संभवतः मौलवी मुहम्मद यूसुफ़ साहिब) यह पृष्ठ हाथ में लेकर उपस्थित व्यक्तियों को दिखाए और एक अत्यन्त हिंसात्मक भाषण दिया जिससे क्रोधित समुदाय और भी क्रोधित हो गया । घटना की यह बनावटी कहानी हर स्थान पर जोश में भरे हुए लोगों की चर्चा का विषय बन गई और कुछ ही घंटों के अंदर जंगल की आग की भांति सारे शहर में फैल गई जिस से पुलिस के विरुद्ध क्रोध व घृणा की भावनाएँ उत्तेजित हो गईं ।" (रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 158)

और केवल भावनाएँ ही उत्तेजित नहीं हुईं बल्कि तहक़ीक़ाती अदालत की रिपोर्ट के अनुसार :-

"इसी ग़लत अफ़वाह से उत्तेजना के परिणाम स्वरूप सय्यद फ़िरदौस शाह डी. एस. पी. की मृत्यु की दुर्घटना हुई । उन पर छुरों और लाठियों से हमला करके वहीं मारा गया । सय्यद फ़िरदौस शाह के शरीर पर 52 ज़ख़्मों

के चिन्ह थे।'' (रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 160)

यह थी उन धार्मिक पथ प्रदर्शकों की कार्यविधि जो ख़ुदा तआला के सबसे सच्चे बंदे और सत्यवादियों के सरदार हज़रत मुहम्मद-ए-अरबी सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का नाम ले ले कर और आपके क़ुर्आन को हाथों में थामे हुए संसार में झूठ का प्रचार कर रहे थे और केवल अहमदी ही उनके अत्याचार के अभ्यास का निशाना नहीं बने बल्कि प्रत्येक वह सज्जन और साहसी पाकिस्तानी भी उनकी मिथ्याभाषी का शिकार होने लगा जिसने उनके इस कुमार्ग के विरुद्ध आवाज़ उठाई । और प्रत्येक वह पुलिस का सिपाही जो उनके मार्ग में बाधक होने लगा उनकी ईंटों का निशाना बन गया । और यह दशा इतनी भयानक हो गई कि सज्जनों में इसके विरुद्ध आवाज़ उठाने तक का साहस शेष न रहा । अतः विद्वान जज अपनी रिपोर्ट में गुजरांवाला की दशा का वर्णन करते हुए लिखते हैं:-

''जब ऐडीशनल डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ने ट्रेन को रवाना कर देने का दूसरा प्रयत्न किया तो उनपर हमला कर दिया गया जिससे दो चार और पुलिस मैन घायल हो गए जिनमें एक इन्सपैक्टर भी था उसी दिन शाम को पांच हज़ार की एक जोश में भरी हुई भीड़ ने रैलवे स्टेशन से कुछ फ़ासले पर सिंध ऐक्सप्रेस को रोक लिया । सुप्रीडैंट पुलिस छः पैदल कांसटैबलों को साथ ले कर इस स्थान पर पहुँचे परन्तु उनपर ईंटों और पत्थरों की बौछार की गई । क्योंकि उस समय अंधेरा हो चुका था और यदि भीड़ न बिखरती तो हिंसा पर उतर आती और ट्रैन के यात्रियों की चिंता का कारण होती इसलिए सुप्रीडैंट पुलिस ने तीन पैदल कांस्टैबलों को आदेश दिया कि बारह राऊंड हवा में चलाएँ । इससे भीड़ बिखर गई और किसी प्रकार का जानी नुक़सान न हुआ और उसके पश्चात शहर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों की सभा बुलाई गई । यद्यपि उनमें से प्रत्येक इस गुंडेपन की निंदा कर रहा था परन्तु किसी प्रकार की व्यवहारिक सहायता करने पर तत्पर न था कि

कहीं वह काफ़िर या मिरज़ाई घोषिण किया जाए ।

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 182)

यह भय कोई काल्पनिक भय नहीं था और व्यवहारिक सहायता करने की सज़ा बड़ी सख़्त थी । अत: तहक़ीक़ाती अदालत के जज इसी प्रकार के एक साहसपूर्ण सज्जनता का प्रकटन करते हुए लिखते हैं :-

"उसी शाम को एक ग़ैर अहमदी अब्दुल हई क़ुरैशी को जिसने समूह को हिंसा से मना किया था, मारा-पीटा गया और उसका घर लूट लिया गया ।"

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 177)

"यही कारण था कि कुछ ऐसे निष्पक्ष अख़बार भी जो इस ग़ैर इस्लामी हंगामे को अप्रियता की दृष्टि से देखते थे इसके विरुद्ध साहसपूर्ण राय के प्रकटन से बचते रहे । अत: जब दशा को क़ाबू से निकलते देख कर सरकार ने आख़िर कुछ सुदृढ़ पग उठाने का निर्णय किया और होम सैक्रेटरी ने कूछ समाचार पत्रों के सम्पादकों को बुलवा कर उन्हें इस बात पर तत्पर करने का प्रयत्न किया कि वह क़ानून के लागू करने के सम्बन्ध में सरकार के प्रयत्नों का समर्थन करें तो मिस्टर हमीद निज़ामी ने जो उस समय 'नवाए वक़्त' के संपादक थे "यह शंका व्यक्त की कि यदि वह अपने समाचार पत्र में इस विचार का प्रकटन करेंगे तो सरकार और मुस्लिम लीग के प्रिय समाचर पत्र अपना प्रचार बढ़ाने के लिए सबसे पहले उनको अहमदी निर्धारित करके निंदा का निशाना बनाएँगे ।"

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 373)

अत: यही भय था जिसने पाकिस्तान के समस्त क्षेत्र में सज्जनों की आवाज़ का गला घोंट रखा था और ज्यों-ज्यों समय बीतता गया यह भय उनपर विजयी होता चला गया और एहतिजाज (विरोध) की आवाज़ दबती चली गई यहां तक कि वह समय आ गया कि सूबा सरहद के

अतिरिक्त समस्त पश्चिमी पाकिस्तान अहरार के चंगुल में आ गया और ''इस्लाम सेवा'' के आश्चर्यजनक कारनामे संसार को दिखाए जाने लगे। सूबा सरहद उनकी पकड़ से केवल इसलिए बचा कि उस सूबा की सरकार एक सुदृढ़ सरकार थी और क़ानून के मज़बूत शिकंजे की पकड़ बहुत सख़्त थी । और पूर्वी बंगाल इस से इसलिए सुरक्षित रहा कि देश के इस भाग के विद्वान और जनता अपने स्वभाव के अनुसार साधारणतय: धार्मिक मामलों में गाली गलोच और बाज़ारी भाषणों को बिल्कुल पसंद नहीं करती बल्कि إلّا ماشاء الله (अतिरिक्त इसके कि अल्लाह चाहे) तर्क की दुनिया तक अपने विरोध को सीमित रखने के आदी हैं ।

"इस्लाम सेवा" की कुछ झलकियां

समस्त नबियों(अ) और उनकी पवित्र जमाअतों ने सच्चाई को फैलाने के लिए अपने-अपने रंग में पराक्रम किया है और उनके प्रयत्नों का वर्णन समस्त पवित्र पुस्तकों में आज तक सुरक्षित है । विशेष रूप से क़ुर्आन-ए-करीम ने उनकी प्रचार विधि और उनके साधनों का अत्यन्त ही साफ़ और पवित्र चित्र खींचा है जिन्हें वह संसार को दीक्षा और प्रकाश की ओर बुलाने के लिए प्रयुक्त करते रहे और इस चित्रण में एक एक चिन्ह ऐसा प्रकाशित और उजागर कर दिया है कि मानो आज उन पवित्र लोगों को हम अपनी आंखों के सामने धर्म प्रचार में व्यस्त देख रहे हों । आप उन सब की दशा पर एक दृष्टि डालिए और फिर उस "इस्लाम सेवा" की ओर भी ज़रा आंख उठा कर देखिये जिसे 1952-53 ई. की "तहरीक़ ख़त्मे नबुव्वत" के संस्थापक ख़ुदा तआला और उसके अत्यन्त प्रतिष्ठ रसूल ख़ातमउल- अम्बिया हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की प्रतिष्ठा के नाम पर बजा ला रहे थे । तहक़ीक़ाती अदालत के विद्वान जज अपनी रिपोर्ट में इन प्रयत्नों का वर्णन करते हुए लिखते हैं :-

"25 जुलाई 1952 ई. को क़सूर में जुमा की नमाज़ के पश्चात् एक समारोह हुआ जिसके वक्ताओं में एक आलम शाह बदमाश भी था । इसके पश्चात् छाती पीटता हुआ एक जुलूस निकाला गया । एक व्यक्ति नारा लगाता था "ज़फ़रुल्लाह कंजर" और दूसरे आवाज़ मिला कर चिल्लाते थे "हाय-हाय" । उसके बाद आलम शाह और

एक और आदमी कहीं से एक गधी ले आए जिस पर ''बैगम ज़फ़रुल्लाह'' के शब्द लिख लिए । फिर उस पर एक आदमी को सवार कराया और उस आदमी को जूतियों का हार पहना दिया । यह व्यक्ति ''टॉप हैट'' सिर पर रखे था जिस पर ''ग़ुलाम अहमद मिर्ज़ा'' लिखा था । यह जुलूस अहमदियों के एक कारख़ाने के सामने रुका और पन्द्राह मिनट तक यह नारे लगाता रहा ''मिर्ज़ाईयत को तबाह कर दो ।'' ''ज़फ़रुल्लाह कंजर'' ''ज़फ़रुल्लाह-कुत्ता'' ज़फ़रुल्लाह सुअर ।''

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 356)

ख़ुदा के लिए अपने दिलों पर हाथ रख कर बताओ कि हमारे पवित्र आक़ा हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की प्रचार विधि से इस तरीके का कोई दूर का भी सम्बन्ध है ?...

प्रत्येक सच्चा मुसलमान बल्कि प्रत्येक गम्भीर प्रकृति के इन्सान का दिल यह गवाही देगा कि नहीं, विश्वसनीय रूप से नहीं विश्वसनीय रूप से नहीं, विश्वसनीय रूप से नहीं । अन्धकार को भी प्रकाश से इतना दूर का सम्बन्ध नहीं जितनी इस प्रचार विधि को हमारे आक़ा(स) की पवित्र विधि से था । फिर क्यों दिल ख़ून के आंसू न रोए यह सोच कर कि इस्लाम का यह मज़ाक किसी इस्लाम के शत्रु ने नहीं उड़ाया बल्कि उन लोगों ने उड़ाया जो इस्लाम के विद्वान होने के दावेदार थे । अतः इसी घटना की ओर संकेत करते हुए मिस्टर अनवर अली डी. आई. जी. ने लिखा है कि :-

''धार्मिक उन्मादियों और मौलवियों ने शक्ति पकड़ ली है और गुंडे भी मैदान में कूद पड़े हैं ।''

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 356)

क्या इसका कोई एक उदाहरण भी नबियों के इतिहास से मिल सकता है कि ख़ुदा तआला के नबियों(अ) और उनके समर्थकों ने ''गुंडों'' का समर्थन प्राप्त करके दीन की सेवा के लिए इस नमूने का कोई जुलूस निकाला हो ? क्या धर्म की कल्पना की इससे अधिक निंदा

सम्भव है ?...

परन्तु यह तो इस प्रकार के सैंकड़ों प्रदर्शनों में से केवल एक तुच्छ सा उदाहरण है । ज्यों-ज्यों समय बीतता गया विद्वानों के भाषण अधिक उत्तेजक होते चले गए और अनगिनत छातियों में क्रोध व प्रचंडता की अग्नि धधकने लगी और वह बहुसंख्यक अज्ञानी जनता जिन्हें अपने आक़ा(स) के सुन्दर आचरण का कुछ भी ज्ञान न था इन विद्वानों की बताई हुई विधि पर "इस्लाम सेवा" में व्यस्त हो गए और प्रत्येक उस नेक रीति की जड़ उखाड़ी जाने लगी जिसे संसार में स्थापित करने के लिए अरब के क्षितिज से वह अद्वित्तीय प्रकाश का सूर्य उभरा था । अतः स्यालकोट का इसी प्रकार का एक उत्तेजित समूह :-

"मुंडेरों पर से ईंटें फैंकने लगा जिनके कारण पुलिस ने उन गाड़ियों के पीछे पनाह ली जो दारुश्शहाबिया के सामने सड़क पर खड़ी थीं । ईंटों की वर्षा के कारण डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रैट, सुप्रीडैंट पुलिस और ऐसिस्टैंट सुप्रीडैंट पुलिस के चोटें आईं । एक सब इन्सपैक्टर पुलिस के छुरा घोंप दिया गया ।" (रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 176)

और इसी शहर में एक और स्थान पर :-

"तीसरे पहर समूह ने एक ए. एस. आई. और एक कान्सटैबल पर आक्रमण किया । ए. एस. आई का रिवाल्वर और कान्सटैबल की बंदूक छीन ली । और उनकी वरदियां जला दीं । एक और पैदल कांस्टेबल किसी केस की ममलूकात लिए जा रहा था उस पर आक्रमण किया गया और ममलूकात छीन ली गईं । दो अहमदियों के छुरा घोंप दिया गया और तीन दूसरे अहमदियों के मकान लूट लिए गए ।" (रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 178)

जब इन्सान इन हालात को पढ़ता है तो सहसा यह सोचने पर विवश हो जाता है कि एक ए. एस. आई और एक कांस्टेबल पर आक्रमण से इस्लाम ने किस मैदान में विजय प्राप्त की ? और उन दो अहमदियों और उस इन्सपैक्टर पुलिस के ख़ून से जिनको छुरा घोंपा गया इस्लाम की

रगों में कौन सा ताज़ा ख़ून दौड़ने लगा ? और उस लूटे हुए माल से जो उन तीन अहमदियों के घरों से लूटा गया इस्लाम के ख़ज़ानों में आख़िर क्या वृद्धि हुई ? और क्या इस्लाम का ख़ुदा वास्तव में आकाश से इस घटना को देख कर ख़ुश हो रहा था जो दारुश्शहाबिया की गलियों में घटी ? और वह पत्थर जो दारुश्शहाबिया की ऊँची छतों से कुछ मुसलमान पुलिस अफ़सरों पर बरस रहे थे क्या वास्तव में अल्लाह की प्रसन्नता सोखने वाले पत्थर थे ? एक इन्सान यह सोचने पर सहसा विवश हो जाता है कि क्या نعوذ بالله (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) सय्यदे वुल्दे आदम(स) की प्रचार विधि भी इसी विधि के समान थी ? परन्तु इस स्थान पर मानवीय विवेक ताएफ़ की गलियों से टकरा कर नाकाम व असफ़ल वापिस आ जाता है और उसे इस दृश्य का कोई उदाहरण भी आँहज़रत(स) के पवित्र जीवन में नज़र नहीं आता । यदि वह कुछ देखता है तो यही कि ख़ुदा का वह सब से प्यारा रसूल(स) ख़ाली हाथ और एकाकी व अकेला, एक असीमित संकल्प अपने दिल में लिए अपने रब पर भरोसा करते हुए अरब की अत्यन्त पथरीली धरती पर आबाद एक अभागी बस्ती में इस आशा पर दाख़िल होता है कि सम्भवता यह लोग उस आकाशीय संदेश को आदर की दृष्टि से देखें जिसे मक्का के अहंकारी सरदारों ने ठुकरा दिया था । उसके होंठों पर कोई कठोर वाक्य नहीं, उसके हाथों में कोई पत्थर नहीं, उसकी झोली पत्थर के टुकड़ों से रिक्त है, उसके होंठों पर प्रेम में डूबी हुई, सदैवी सत्यता और तौहीद का अनश्वर संदेश है और उसकी झोली आकाशीय कृपा से परिपूर्ण है । वह यह घोषणा करने आया है कि अपने रब पर ईमान ले आओ । वह उन्हें नेक बातों का आदेश देने के लिए आया है और बुरी बातों से रुकने की नसीहत करता है । वह उन्हें बड़े प्रेम से नसीहत करता है कि अत्याचार एवं हिंसा से बाज़ आ जाओ और अपभोग और चोरी और लूटमार से परहेज़ करो परन्तु उस रसूल(स) की ओर से तौहीद और सुरक्षा और शान्ति के इस संदेश को सुनकर उस अभागी बस्ती के अभागे सरदार अबद या लैल का आत्म सम्मान जोश में आ जाता है और वह अपने ख़ुदाओं का यह अपमान सहन नहीं कर सकता और अपनी आंख के संकेत

से गलियों के आवारा लौंडे उसके पीछे लगा देता है । उनके होठों पर गंदी गालियां हैं । उनके अपवित्र हाथों में पत्थर हैं और उनकी झोलियां पत्थरों के टुकड़ों से भरी हुई हैं परन्तु उस पवित्र रसूल(स) का संकल्प अडिग है और अपनी प्रचार विधि से बाल बराबर भी नहीं हटता । उन बेरहम पत्थरों की चोटों से उस का अंग-अंग दुखने लगता है और उसके दिल के दु:ख का ख़ुदा के अतिरिक्त कोई जानकार नहीं । उसका ख़ून ताएफ़ की गलियों में नि:संकोच बहने लगता है, परन्तु आसमानी आक़ा के अतिरिक्त किसी को उस ख़ून का पता नहीं जो उसके दिल में इस ग़म से टपक रहा था कि कहीं यह अत्याचारी लोग इस अत्याचार से हलाक न हो जाएँ और इन सब दु:खों और गालियों और अघातों के उत्तर में जो वह उन मानवता के लिए लज्जापूर्ण अत्याचारियों के हाथों से उठाता है उसके दिल और उसके मस्तिष्क और उसकी जीभ पर एक ही दुआ जारी और व्याप्त है कि :-

اَللّٰهُمَّ اهْدِ قَوْمِيْ فَاِنَّهُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ

हे मेरे अल्लाह ! मेरी जाति को दीक्षा दे दे कि यह लोग नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं ।

यह थी वह प्रचार विधि जिसे आपने अपनाया । विरोधी अपने अत्याचार व हिंसा के तरीक़ों पर जमे रहे और आप(स) अपने रहम व कृपा के तरीक़े पर स्थापित ।

لَكُمْ دِيْنُكُمْ وَلِيَ دِيْنِ

(तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन और मेरे लिए मेरा दीन है)

का अद्‌भुत चित्रण दिखाई देता था । अत्याचारियों पर तो यह पशुता सवार थी कि जिस प्रकार बन पड़े आप(स) को मार डालें । और आपको यह दु:ख था कि कहीं अत्याचारी मारे न जाएँ । आप(स) ने केवल भलाई एवं सफ़लता की ओर केवल भाषण द्वारा प्रचार को ही पर्याप्त न समझा बल्कि इस मार्ग में दिन भर की मुसीबतें सहन करने के पश्चात सारी सारी रात अपने ख़ुदा के हुज़ूर रो-रो कर काट दी कि :-

اَللّٰهُمَّ اهْدِ قَوْمِیْ فَاِنَّهُمْ لَا یَعْلَمُوْنَ! اَللّٰهُمَّ اهْدِقَوْمِیْ فَاِنَّهُمْ لَا یَعْلَمُوْنَ!!

(हे मेरे अल्लाह मेरी जाति को हिदायत (दीक्षा) दे कि यह नहीं जानते)

यहां तक कि इस दु:खी दिल के गहरे तपन और नम्रता को देख कर ख़ुदा तआला भी आकाश से पुकार उठा :-

لَعَلَّکَ بَاخِعٌ نَّفْسَکَ اَلَّا یَکُوْنُوْا مُؤْمِنِیْنَo (الشعراء:۴)

(अश्शुरा : 4)

कि हे मेरे अत्यन्त प्रिय बन्दे ! ''क्या तू इस दु:ख में अपनी जान का हनन कर देगा कि यह ईमान नहीं लाते ?''

यह थी वह प्रचार विधि जो आप(स) ने अपनाई और यही वह दुआएँ थीं और यही आप(स) के सीने के वह दु:ख के भवंर थे जो एक दिन अरब की धरती पर प्रसन्नता के समाचार बन कर प्रकट हुए और शुभ समाचार बन कर फ़ारस के क्षितिज पर चमके ।

झूठ कहता है जो यह कहता है कि मेरे आक़ा(स) (स्वामी) को यह प्रचार विधि व्यर्थ गई और आरोप लगाता है वह व्यक्ति जिसके निकट उसकी सब दु:ख भरी दुआएँ हवा में बिखर गईं और नृशंसिता का युग व्यर्थ गया और यदि कुछ काम आया तो तीर काम आए और तलवारों ने लाभ पहुँचाया । काश कि वह यह जानता कि यद्यपि तीर ही काम आए परन्तु आधी रात की दुआओं के वह तीर जो कभी व्यर्थ नहीं जाते । और तलवारों ने ही लाभ पहुँचाया परन्तु धैर्य व सुदृढ़ता, सज्जनता व कुलीनता, तर्क एवं चमत्कारों की उन तलवारों ने जिनकी धार हृदय की अथाह गहराइयों तक मार करती है । कहां हैं वे विद्वान जो इस्लाम के इतिहास से परिचय का दावा करते हैं और कहां हैं वे दीन के सेवादार जो इस्लाम की सेवा की इच्छा लिए हुए हैं ? क्या कोई है उन में जो दीन की सेवा की इन कठिन घाटियों को तय कर सके जिन्हें हमारे आक़ा(स) और उसके सच्चे प्रेमियों की जमाअत ने लगभग चौदह सौ वर्ष पहले तय करके दिखाया था ? क्या कोई है इनमें जो रसूले अरबी

सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की उस प्रचार विधि को अपना सके जिसका अपनाना हज़ारों परिश्रमों और लाखों मुसीबतों व असुविधाओं को आमंत्रित करना है और उसकी पैरवी में धैर्य व सुदृढ़ता, नम्रता व दीक्षा, शराफ़त व कुलीनता और रहमत व कृपा के वह सर्वश्रेष्ठ उदाहारण दिखाए जिन्होंने पशुतापूर्ण मरुस्थलीय हृदयों को भी राम कर लिया था और जिसके प्रेम जाल में ताएफ़ का अबदया लैल भी अन्ततः क़ैद हो कर रहा । जिसके शत्रु जान न्यौछावर करने वाले बन गए और ख़ून के प्यासे द्वार के दास ।

कौन होता है हरीफ़े मअे मरदे अफ़गने इश्क,
है मुकर्रर लबे साक़ी पे सिला मेरे बाद ।

परन्तु यह अजीब दुर्भाग्य का युग है कि "हरीफ़ मअे मरद अफ़गने इश्क" तो कोई नहीं होता हां उस मादकता व मस्ती के सभी इच्छुक हैं जो केवल इस प्रेम की शराब ही में छिपी है । और वह नहीं जानते कि अटल प्राकृतिक क़ानून को कोई परिवर्तित नहीं कर सकता ।

मैं अपने लेख के क्रम को तोड़ कर कहीं और निकल आया हूँ । वास्तव में आज से चौदह सौ वर्ष के प्रचार के ढंग की मनोहरता ने मुझे अपने अंदर इस प्रकार सोख लिया कि मैं कुछ देर के लिए इस्लाम के उस भव्य अतीत में लीन हो गया जिसकी याद मेरी जीवन की पूंजी है और भूल गया कि मैं तो अपने इर्द गिर्द की, इस देश की और आजकल की बातें कर रहा था और मेरी दृष्टि में वह प्रचार विधि थी जो हम ने 1953 ई. में अपनी आंखों से देखी थी और वर्णन उन हिंसा व अत्याचार की टोलियों का हो रहा था जो हमारे दिलों को पद दलित करती हुई गुज़री थी । और जिस की कुछ झलकियां इस प्रकार हैं :-

"एक बड़ा जनसमूह उस मस्जिद की ओर जा रहा था उसको मार्ग में रोक लिया गया । कमिश्नर के आदेशानुसार डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ने समूह को तित्तर बित्तर होने की आज्ञा दी परन्तु वह अफ़सरों पर पिल पड़ा । पुलिस को इस समूह पर लाठी चार्ज का आदेश दिया गया जिसके उत्तर में आस-पास के मकानों से ईंटें बरसाई गईं ।

मिस्टर ख़लील-उर-रहमान असिस्टैंट सुप्रीटेन्डैंट पुलिस के सिर पर सख़्त ज़ख़्म आया और पुलिस की एक गाडी तोड़ फोड़ दी गई ।" (रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 178)

और केवल ईंटें बरसाने पर ही बस नहीं किया गया बल्कि विद्वानों की बताई हुई प्रचार विधि पर कार्य करते हुए :-

"7 मार्च को नंद पुर गांव में फ़सादियों के एक समूह ने एक व्यक्ति मुहम्मद हुसैन को यह समझ कर क़त्ल कर दिया कि वह अहमदी है । जांच पड़ताल से ज्ञात हुआ कि मृतक के एक शत्रु ने उसको क़त्ल कराने के लिए चाल चली थी ।" (रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 183)

फिर उन मस्जिदों को आग लगाना भी इस्लाम के प्रचार का एक अंग समझा गया जो केवल इसलिए निर्मित की गई थीं कि उनमें ख़ुदा-ए-वाहिदो-यगाना की इबादत की जाए । अत: रावलपिंडी में :-

"6 मार्च को लयाक़त बाग़ में एक और सम्मेलन आयोजित हुआ । एक समूह ने सम्मेलन के बाद बिखर कर मरी रोड का रुख़ किया और अहमदियों की एक मस्जिद और एक छोटी मोटर कार को आग लगा दी ।"

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 185)

जब विद्वान ही यह पाठ पढ़ाते हों कि इस्लाम की सेवा का सर्वश्रेष्ठ साधन लूट मार और क़त्ल व हिंसा है तो साधारण जनता सवाब (पुण्य) कमाने के ऐसे एकाकी अवसर भला कब हाथ से जाने देती है । ऐसी सेवा के अवसर भला रोज़-रोज़ कहां प्राप्त होते हैं कि दुनिया भी सफ़ल हो जाए और परलोक भी । अत: मस्जिद और कार को आग लगाने के पश्चात :-

"उसी शाम को कुछ देर बाद लूट मार और आग लगाने की कुछ और घटनाएँ भी घटित हुईं । अहमदिय्या कमर्शल कालिज, नूर आर्ट प्रैस और पाक रैस्टूरैंट शहर के विभिन्न भागों में स्थित थे परन्तु लोग उनमें ज़बरदस्ती घुस गए और उन्होंने विभिन्न चीज़ों को लूटने, जलाने और तबाह

करने का प्रयत्न किया । एक ग़ैर अहमदी युवक नूर आर्ट प्रैस में कर्मचारी था उसको अहमदी समझ कर छुरा मारा गया, वह उसी ज़ख़्म के कारण मर गया।'' (रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 185)

फिर वह समय आया कि यह ''इस्लाम के प्रचार'' की भावना असीमित और बस के बाहर हो गयी और व्यवस्था के प्रत्येक दायरे को तोड़ डाला । अहमदी और ग़ैर अहमदी में कोई भेद शेष न रहा और जानदार और बेजान का भेद मिट गया । विनाश की प्रत्येक कारवाई इस्लाम की विजय कल्पित होने लगी यहां तक कि इसी पवित्र नाम पर बिना धार्मिक भेद भाव के निर्दोष स्त्रियों को अपमानित किया गया । लाएलपुर में :-

''दस हज़ार के एक समूह ने ज़िले की कचहरियों पर आक्रमण कर दिया खिड़कियाँ तोड़ डालीं मजिस्ट्रैटों को अदालत में बंद रहने पर मजबूर कर दिया, और फिर डिप्टी कमिश्नर के घर में घुस गए । लाएलपुर कॉटन मिल्ज़ की एक खाद्य पदार्थों की दुकान लूट ली गई ।'' (ख़ुदा जाने उस के कितने अबोध बालकों ने भूख से बिलक बिलक कर वह रात गुज़ारी होगी । क्या यह सब ख़ुदा तआला की प्रसन्नता हेतु किया गया ? अनुलेखक)

''रेल की पट्री तोड़ दी गई और तीन ट्रैनें रेलवे स्टेशन के समीप रोक ली गईं । रेलवे स्टेशन पर दुकानों और यात्रियों को लूटा गया ट्रैन में कुछ स्त्रियाँ अपमानित की गईं और एक केबिन मैन बुरी तरह ज़ख़्मी किया गया ।''

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 188)

और आसमान ने अत्यन्त आश्चर्य अचंभे और दु:ख के साथ यह दृश्य देखा कि ''इस्लाम के प्रचार'' का यह भी एक ढंग है !!!...

उकाड़ा भी इसी प्रकार के अत्याचारों में लाएलपुर से कुछ पीछे नहीं था । जहां :-

''तीन हज़ार का एक समूह रेलवे स्टेशन पर पहुँचा और

उसने डाऊन पाकिस्तान मेल को तीन घंटे तक रोके रखा। समूह ने डिब्बों की खिड़कियां तोड़ डालीं । ट्रैन को रोकने वाली वैक्यूम की जंजीरें तोड़ डालीं यात्री स्त्रियों को अपमानित किया गया ।''

(रिपोर्ट तहक़ीक़ाती अदालत, पृ. 190)

इन घटनाओं को संकलित करते हुए जो मेरे मन की दशा है मैं उसका वर्णन नहीं कर सकता । वह शब्द मेरी शक्ति व सामर्थ्य में नहीं जो विभिन्न भवंर में चढ़े हुए और मुक़ाबले पर आई हुई भावनाओं के इकट्ठे होने के कारण मेरे सीने की अशांति का चित्रण कर सकें परन्तु मैं प्रत्येक न्याय प्रिय हृदय से प्रश्न करता हूँ जो संसार के किसी भी पवित्र रसूल की ओर सम्बन्धित होता हो कि क्या किसी एक रसूल की रूह (आत्मा) भी इस कल्पना से प्रसन्न हो सकती है कि उसकी पवित्रता के नाम पर ''स्त्रियों को अपमानित'' किया जाए ?...

मेरे आक़ा हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम पर बहुत अत्याचार किए गए परन्तु सम्भवता यह अत्याचार सब अत्याचारों से बढ़ कर है !!!...

मुझे उस जनता पर क्रोध नहीं आता जिनके हाथों यह अत्याचार हुए और उन मस्जिदों के जलाने वालों से कोई शिकायत नहीं । छुरा घोंपने वालों को भी मेरा दिल क्षमा कर सकता है और सहसा अपने नबी(स) के अनुसरण में दिल से यही दुआ निकलती है कि :-

اَللّٰهُمَّ اهْدِ قَوْمَنَا فَاِنَّهُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ

''हे अल्लाह ! हमारी क़ौम को हिदायत दे कि यह नहीं जानते ।''

और हज़रत मसीह मौऊद अलैहिस्सलाम का यह पद्य मेरी भावनाओं को घेर लेता है कि :-

ऐ दिल तू नीज़ ख़ातरे ईनां निगाह दार,
काख़र कुनंद दावा-ए-हुब्बे पयम्बरम(स) ।

''हे दिल तू इन के हेतु भी ध्यान रख कि आख़िर यह लोग

मेरे ही रसूल(स) के प्रेम का दावा करते हैं ।"

परन्तु बड़े ही भारी साहस की आवश्यकता है उन विद्वानों को क्षमा करने के लिए जो सब कुछ जानते बूझते हुए भी आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की उम्मत को ग़लत मार्गों पर चलाने के ज़िम्मेदार हैं और उन नेक उद्देश्यों की जड़ उखाड़ते हैं जिनका पौधा उस पवित्र रसूल(स) ने स्वयं अपने हाथों से लगाया था ।

हां एक कल्पना है जो प्रत्येक क्रोध को ठंडा कर रही है और एक याद है जो प्रत्येक घृणा की भावना को मिटा रही है । वह कल्पना رَحْمَةٌ لِّلْعَالَمِيْنَ (समस्त ब्राहमांड के लिए दया का पात्र) के दयापूर्ण दिल की कल्पना है और वह याद मक्का की विजय के दिन की याद है ।

...यह कल्पना और यह याद प्रत्येक घृणा और क्रोध को नम्र करके ऐसी पीड़ा व दुःख की भावना में परिवर्तित कर देती है कि दिल से आहों का धुआं उठने लगता है और नेक दुआ के अतिरिक्त कोई इच्छा शेष नहीं रहती । ख़ुदा जाने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के दिल से यह नेक दुआ किस तीव्रता और किस पीड़ा के साथ उठती होगी कि आकाश का ख़ुदा भी पुकार उठा :-

لَعَلَّكَ بَاخِعٌ نَّفْسَكَ اَلَّا يَكُوْنُوْا مُؤْمِنِيْنَ ○ (الشعراء:۴)

(अश्शोअरा : 4)

क्या तू अपनी जान का इस दुःख में हनन कर देगा कि यह ईमान नहीं लाते !!!

दो विरोधी बातों का इकट्ठ

इन विशिष्ट हिंसक पथ प्रदर्शकों के दृष्टिकोण दो विरोधी बातों के इकट्ठ का अद्‌भुत दृश्य प्रस्तुत करते हैं। शीघ्र दु:खी होना और अत्यन्त शुन्यता वहमी (भ्रमिक) आतंकों का पीछा और वास्तविक आंतकों से लापरवाही उनके व्यक्तित्व के प्रकट चिन्ह हैं ।

पिछले अध्यायों के अध्ययन से पाठकों पर भलीभांति स्पष्ट हो चुका होगा कि धर्म के नाम को कुछ स्वार्थी धार्मिक पथप्रदर्शक जिस निर्दयता से प्रयुक्त करते हैं शायद ही कोई और नाम इस निर्दयता से प्रयुक्त हुआ हो । फिर भी धर्म को कदापि उन अत्याचारों और रक्तपात का ज़िम्मेदार घोषित नहीं किया जा सकता जो इसके नाम पर किये जाते रहे हैं और आज भी किये जाते हैं । क्या सत्यता के नाम पर यदि असत्यता का कार्य किया जाए तो सत्यता के पवित्र चेहरे पर कोई दाग़ लग सकता है ?

वास्तव में व्यक्तिगत या जातीय कार्य किसी व्यक्ति या जाति की मानसिक रुचियों और हार्दिक भावनाओं के प्रतिबिंब हुआ करते हैं । यह जो हम अपने चारों ओर समाज का चित्र देखते हैं यह हमारी ही कल्पनाओं और शिष्टाचार के चिन्ह और जाति के रूप में हमारे अतंर मन का वह प्रतिबिंब है जो प्रकृति का दर्पण हमें दिखा रहा है । जितना किसी जाति का अन्तर्मन पवित्र व साफ़ होगा और जैसे जैसे जातीय शिष्टाचार पर इलाही सद्‌गुणों का रंग चढ़ता जाएगा, उतना ही यह चित्र

दृष्टि को आकृष्ट करने वाला और मनमोहक बनता चला जाएगा । यह चित्र स्वयं जाति के शिष्टाचार बनने और बिगड़ने के साथ बनता और बिगड़ता रहता है और जातीय शिष्टाचार के बनने और बिगड़ने में धार्मिक विद्वानों के शिष्टाचारों का असाधारण हस्तक्षेप हुआ करता है । बड़ी ही ईर्ष्या योग्य और भाग्यवान होती है वह जाति जिसके सुधारकों के शिष्टाचार अल्लाह के तक़वा की मज़बूत और स्थिर चट्टान पर स्थापित हों इसके अतिरिक्त प्रत्येक दूसरा आधार अविश्वसनीय है । और वह जाति बड़ी ही अभागी हुआ करती है जिसके पथप्रदर्शकों का शिष्टाचारिक और दार्शनिक भवन इस चट्टान पर स्थापित न हो । और वह न्याय व इन्साफ़, अमानत व सत्यता, विस्तृत साहस और ज्ञान के उच्चतम गुणों से रिक्त हो चुके हों ।

क्या इससे बढ़ कर भी किसी धार्मिक जाति पर पतन आ सकता है कि उसके पथ प्रदर्शक संकीर्ण दृष्टि वाले और धैर्य रहित हो जाएँ और अपने पारस्परिक विरोधों में न्याय की कसौटी से कार्य लेना छोड़ दें ? जिन दृष्टिकोणों को स्थापित करने के वह दावेदार हों स्वयं अपने कार्यों से उन्हीं की जड़ काट रहे हों । यदि ऐसा हो तो उस जाति के दिन लिखे जाते हैं । ऐसी जाति विश्वसनीय रूप से अभागी होती है और उनके विद्वान ऐसी रूहानी बीमारियों का शिकार हो जाते हैं जो दिन प्रति दिन बढ़ती ही चली जाती हैं । उनके दिल व दिमाग़ को घुन सा लग जाता है जो अन्दर ही अन्दर उनकी योग्यताओं को चाट जाता है और समस्त बौद्धिक व्यवस्था को नष्ट कर देता है । स्वार्थ उनकी पहचान होती है और संकीर्ण धैर्य उनकी विशेषता । हर दूसरे व्यक्ति के सिद्धान्तों पर यह ख़ुदाई फौजदार बनकर निरीक्षक हो जाते हैं और ख़ुदा की ग़ुलामी के नाम पर यह संसार को अपने दृष्टिकोण की ग़ुलामी पर विवश करते हैं । उनकी प्रकृति अत्यन्त विरोधी गुणों की वाहक होती है और एक ओर तो किसी दूसरे सम्प्रदाय के विद्वानों और बुज़ुर्गों से सम्बन्धित अत्यन्त गंदी और मानवता की लज्जापूर्ण भाषा प्रयुक्त करने से भी उनके निकट किसी का मन आहत नहीं होता और दूसरी ओर उन बातों पर भी भड़क उठते हैं जो उनके लिए प्रसन्नता का कारण होनी चाहिए थीं । अतः यह

बेधड़क विरोधी सम्प्रदायों के बुज़ुर्गों पर गंद उछालते हैं बल्कि उन की पवित्र माताओं, बहनों और बेटियों से सम्बन्धित भी अत्यन्त अपवित्र आक्रमण करने से चूकते नहीं । और आख़रत के दिन को बिल्कुल भुला बैठते हैं । यद्यपि नक़ले कुफ़र क़ुफ़र न बाशद (कुफ़र की बातें को नक़ल करना कुफ़र नहीं) का कथन सत्य है परन्तु फिर भी मेरी शक्ति से बाहर है कि मैं उस भाषा के कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत कर सकूँ जिसकी ओर मैं संकेत कर रहा हूँ । यदि पाठकों को व्यक्तिगत रूप से किसी ऐसे भाषण सुनने का या ऐसी किताब पढ़ने का कटु अनुभव नहीं हुआ और वह इस बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करना चाहते हों तो तहक़ीक़ाती अदालत की रिपोर्ट में वह इस ''मज़हबी'' भाषा शैली के कुछ नमूनों का अवलोकन कर सकते हैं । यद्यपि विद्वान जजों का क़लम भी इस जाति की समस्त बकवास को नक़ल करने का सामर्थ्य नहीं हो सका ।

अत: एक ओर तो उनकी चेतना इतनी मंद हो जाती है कि प्रत्येक प्रकार की अत्यन्त कष्टदायकता और आरोप लगाना उनके निकट एक वास्तविकता का प्रकटन बन जाता है और वह साधारण सज्जनता से भी बहुत नीचे उतर आते हैं और दूसरी ओर उनकी भावनाएँ इतनी संवेदनशील और भड़कीली हो जाती हैं कि कुछ सम्प्रदायों की मस्जिदों का निर्माण भी सहन नहीं होता और जलती पर तेल का काम कर जाती है । फिर उनके क्रोध की अग्नि ठंडी नहीं होती यहां तक कि उस मस्जिद को आग लगा दी जाए अथवा गिरा न दी जाए और यहां वहां समुन्द्री या रावलपिंडी या सरगौधा में एक या दो मस्जिदें गिरा कर अथवा जला कर वह यह समझने लगते हैं कि उन्होंने इस्लाम की एक महान सेवा की है और उनके दिलों में इस महान विजय के नक़्क़ारे बजने लगते हैं ।

एक ओर तो वह उन समस्त ख़तरों से एकदम आंखें बंद कर लेते हैं जो एक समय से इस्लाम को चारों ओर से घेरे हुए हैं और आन्तरिक रूप से भी और बाहरी रूप से भी इस तीव्रता से इस नृशंसित धर्म पर आक्रमण कर रहे हैं कि उनके विचार से भी एक हृदय रखने वाले मुसलमान की रातों की नींद हराम हो जानी चाहिए और दूसरी ओर कुछ वहमी और अनुपस्थित ख़तरों के पीछे इस जोशो ख़रोश के साथ पड़े हुए

हैं जैसे कोई भूत की कल्पना के पीछे लठ लेकर भाग रहा हो और कहे कि मैं सांस नहीं लूंगा और चैन से नहीं बैठूँगा जब तक कि हे मेरे काल्पनिक भूत ! मैं लाठियों से मार मार कर तेरा कचूमर न निकाल दूँ। अतः वह दैनिक जीवन में, अपने शहरों में कसबों में, अपने गांव की गलियों में बल्कि उन घरों में भी देखते हैं जिनमें वह रहते हैं कि भ्रष्टाचार जाति में इस प्रकार प्रवेश कर गया है जैसे समुद्र में डूबे हुए सूत के कपड़े में पानी (उनके अतिरिक्त जो अल्लाह के तक़वा का वेश ओढ़े हुए हों और हर प्रकार के शैतानी समावेश से पवित्र हों) वह रिश्वत सतानी का एक ठाठें मारता हुआ समुद्र लहराता पाते हैं और चोरी और डाका और अत्याचार और बुरी नज़र से देखने को और निर्जलज्जता को प्रत्यक्ष रूप से देखते हैं और इस्लाम पर यह अत्याचार उनकी दृष्टि के सामने उनकी श्रवणशक्ति की सीमा में उनके आगे औार उनके पीछे, उनके दाएँ और उनके बाएँ तोड़े जा रहे हैं । वह मस्जिदों को वीरान पाते हैं और दिलों को ख़ुदा तआला के ज़िकर (नाम) और उसकी याद से ख़ाली देखते हैं और जानते हैं कि धार्मिक दुनिया अत्यन्त तीव्रता से अधर्म की ओर दौड़ी चली जा रही है और परेशानी और नास्तिकता का सैलाब है कि उमड़ता चला आता है । वह धर्म की भूमि को किनारों से काटता हुआ और घाव डालता हुआ प्रत्येक क्षण आगे बढ़ रहा है और धार्मिकों की भूमि चारों ओर से सिमटती और तंग होती चली जाती है ।

वह यह सब देखते हैं परन्तु धर्म के सम्मान और दीन को जीवित करने के लिए लज्जा की रग जोश में नहीं आती और उम्मत-ए-मुहम्मदिया(स) के सदाचार के पुर्ननिर्माण के लिए वह ज़रा भी पीड़ा अनुभव नहीं करते । केवल शुष्क फ़त्वों को पर्याप्त समझते हैं । जबकि यह घुन वह घुन है जिसने इस्लाम के शरीर को एक कीड़ा खाई हुई लकड़ी की भांति खोखला कर रखा है ।

कर्त्तव्य तो यह था कि वह इन भयानक रोगों से मुसलमानों को मुक्ति दिलाने के लिए तत्पर और संलग्न हो जाते और इस मार्ग में अपने प्राण, धन, समय और सम्मान की कुछ परवाह न करते... अत्यन्त पीड़ा और बेचैनी और गहरे दुःख और सहानुभूति की भावना के साथ वह

लोगों को नेकी की नसीहत करते । वह अपने आक़ा(स) की उम्मत के बीमार व्यक्तियों से कम से कम वैसे ही प्रेम का प्रकटन करते जैसे एक मां अपने बीमार बच्चे से करती है । देखो वह उसको बचाने के लिए हर संभव प्रयत्न करती है । कभी डाक्टरों की ओर दौड़ती है कभी हकीमों के द्वार खटखटाती है और कभी अपने बच्चे को छाती से लगा कर उसकी बलाएँ लेती है और यदि बहुत ही निर्धन हो कि चिकित्सा के लिए कोई पैसा न रखती हो तो भूखी रह कर या भीख मांग कर अपने जिगर के टुकड़े के लिए दवा ले आती है और दिन की थकी हारी रातों को भी चैन से नहीं सोती और आंख लग भी जाए तो भय व आतंक से बार-बार हड़बड़ा कर उठ बैठती है और जब उसकी बेचैनी को किसी पहलू चैन नहीं आता तो रोती और गिड़गिड़ाती हुई सजदे में जा गिरती है कि हे मेरे आक़ा (स्वामी) ! हे मेरे आक़ा (स्वामी) ! मुझ से तो कुछ बन नहीं पड़ता, मैं तो विवश हुई जाती हूँ, तू ही फ़ज़ल फ़र्मा और मेरे बिलकते हुए लाल को स्वस्थ कर दे !!!

यही सहानुभूति की भावना है जो जातियों के स्वास्थय का कारण बनती है और उखड़ी हुई सांसों को फिर से स्थापित कर देती है, जो शिष्टाचार के बुझते हुए दियों को फिर प्रकाश देती है और धर्म के मिटते हुए चिन्हों को फिर से उभार देती है । इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं। कोई भी तो चारा नहीं ।

यही वह प्रेम भाव है जो मानवता की सहानुभूति में एक लाख चौबीस हज़ार नबियों(अ) के सीनों में हिलोरें लेता रहा है जो अरब के एक उम्मी (अनपढ़) नबी(स) के दिल से कृपा का स्रोत बन कर फूटा और एक संसार को सींच गया । और वह अकाशीय पानी यही है । जिसने शताब्दियों के गंदे दिलों की मैल को इस भांति अलग कर दिया जैसे भट्टी गंदे कपड़ों से मैल काट कर अलग फैंक देती है । परन्तु खेद है कि इस ओर किसी की दृष्टि नहीं उठती और दिल कठोर हो गए । पीड़ा में डूबे हुए भाषणों के स्थान क्रोध से भरे हुए फ़त्वों ने ले ली और सीना दुआ से इस प्रकार रिक्त हो गया जैसे वह घौंसला जिसे पक्षी सदा के लिए छोड़ गया हो । कुछ तो वह हैं जो उपदेशक होने का दावा ही छोड़

बैठे और "ख़ुदाई फ़ौजदार" बन कर उम्मत के सुधार के लिए निकल खड़े हुए और कुछ वह हैं जो उपदेशक तो रहे परन्तु उपदेश के ढंग बदल दिए । तीव्र भाषा का प्रयोग उनका व्यवहार हो गया और हिंसा व अत्याचार सुधार के साधन और किसी ने पलट कर न देखा कि क्या कभी पहले भी इन मार्गों पर चल कर मानवता का सुधार हुआ था ?

खेद कि वास्तव में इस्लाम का सच्चा प्रेम ही शेष नहीं रहा वरन् सम्भव न था कि यह पीड़ाजनक दृश्य देख कर विद्वानों के दिल पिघल न जाते । कोई वीरानी सी वीरानी है कि चारों ओर धर्म की आत्मा पराजित होती हुई दिखाई देती है और अधर्म की मृत्यु दिलों पर अधिकार करती हुई दिखाई देती है परन्तु विद्वान इन दशाओं से नज़रें हटा कर उसी मार्ग पर चले जाते हैं और अपने पुराने मार्ग को बदलने को तैयार नहीं । उन्हें कौन सी भाषा समझाएं कि रूहानियत की दुनिया में तीव्र भाषा और अत्याचार का सिक्का न कभी पहले चला था, न आज, न कभी भविष्य में चलेगा । परन्तु बुरा हो इस दुर्भाग्य का कि रूहानियत की दुनिया में चलने वाले सिक्कों से तो इनका दामन ही रिक्त है । प्रत्येक ऐसी निष्फल इस्लाम की सेवा उनके लिए कठिन है जिसके सिरे पर सत्ता, व्यक्तिगत लाभ या नाम व ख्याति के लालच न लगे हों । और प्रत्येक कठिन काम पर उनका एकत्रन असम्भव है । आज एक कुफ़र की पुकार के अतिरिक्त कोई पुकार उनको कार्य के मैदान में एक हाथ पर एकत्रित नहीं कर सकती ।

बाहरी आक्रमण

यह तो आन्तरिक आक्रमणों की दशा है और बाहरी आक्रमणों की यह दशा है कि छोटे छोटे कमज़ोर धर्म भी जिन्हें हम देर हुई मृतक समझ कर पीछे छोड़ आए थे वह मानो मृतकों में से फिर जी उठे हैं और बिफरे हुए शेरों की भांति इस्लाम पर हमले कर रहे हैं ।

ईसाइयत को ही देख लो कि जिसके सिद्धान्तों की नींव अत्यन्त दुर्बल और खोखली कल्पनाओं पर आधारित है और जिसके दावे प्रतिकूल और परस्पर अपने ही हाथ से अपने गले पड़े हैं । इस्लाम के विरुद्ध संसार

के कोने कोने में जंग की घोषणा कर रहे हैं । गीदड़ तो शेरों की भांति दनदनाते फिरते हैं और शेर गीदड़ों के समान खोहों में दुबके बैठे हैं । ईसाई पादरियों ने इस्लाम और इस्लाम के पवित्र रसूल(स) के विरुद्ध इतनी पुस्तकें प्रकाशित की हैं कि संसार भर में मुसलमानों की भी इतनी संख्या नहीं है और वह हर कोण से हर तीखे हथियार के द्वारा इस्लामी इमारत (भवन) की एक एक ईंट पर चोट मार रहे हैं । वह आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के पवित्र अस्तित्व पर भी आक्रमण कर रहे हैं और उम्महातुल मौमिनीन पर भी अत्यन्त अपवित्र आक्रमण करते हैं । वह इस्लाम को एक हिंसक और अत्याचारी (दुष्ट) धर्म के रूप में प्रस्तुत करते हैं और क़ुर्आन-ए-करीम को मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के दिल की घड़ी हुई बातें समझते हैं । उनका ऐतिहासिक ज्ञान भी इस्लाम पर आक्रमण कर रहा है और दार्शनिक ज्ञान भी । उनका न्यायशास्त्र भी इस्लाम पर हमला कर रहा है और भौतिक शास्त्र भी ।

और उनकी सभ्यता ने इस्लामी सभ्यता के टुकड़े टुकड़े कर दिए हैं परन्तु खेद है कि हमारे विद्वानों को इस ख़तरे की कोई जानकारी नहीं और यदि है तो उत्तर की समर्था नहीं पाते इसके अतिरिक्त कि सरकार से विनती करें कि इस देश में इन काफ़िरों के प्रचार को बलपूर्वक बंद कर दिया जाए । यह नहीं सोचते कि अन्ततः कहां कहां और किस किस देश में उनके प्रचार को बलपूर्वक बंद करवा सकेंगे और पश्चिमी सभ्यता और ज्ञान व कलाओं के चोर द्वारों पर वह कौन से पहरे बिठाएँगे जो तलवार के बल पर शंकाओं के बहाव को मुसलमानों के दिल तक पहुँचने से रोक दें । और क्या केवल बचाव की नीति पर ही इस्लाम के नव जीवन की ज़मानत ली जा सकती है ? क्या यह नहीं जानते कि अभी तक संसार की अधिकांश जनता इस्लाम के नाम से भी अज्ञात है । अभी तो हिन्दो पाकिस्तान उप महाद्वीप में ही इस्लाम को विजय प्राप्त नहीं हुई। अभी तो हमें अमेरिका को भी इस्लाम का संदेश देना है और रूस को भी, चीन को भी और जापान को भी । एशिया के अधिकतर देश भी अभी तक इस्लाम से कोसों दूर हैं और अफ़्रीक़ा की भी अधिकांश आबादियों को इस्लाम का ज्ञान नहीं और महाद्वीप आस्ट्रेलिया में तो

मुसलमानों की संख्या आटे में नमक के बराबर भी नहीं ।

अत: क्या इस्लाम की अन्तर्राष्ट्रीय विजय के लिए आवश्यक नहीं कि इन दूर-दूर तक फैली आबादियों को इस्लाम का संदेश पहुँचाया जाए और उनकी अज्ञानता और अनपढ़ता के परतदार पर्दों को उठा दिया जाये जो दुनिया की आंख और इस्लाम के सुन्दर चेहरे के मध्य सदियों से पड़े हैं। और पश्चिम के दिल को भी विजयी करके अपने आक़ा(स) के क़दमों में ला डाला जाए और पूर्व के दिल को भी ।

और क्या इस्लाम का सिर ऊंचा करने के लिए बस यही पर्याप्त है कि अपनी मस्जिद और क़बाओं की सीमित सीमाओं में बैठ कर इबादत के समस्त दिखाने के अंगों को एक ग़ैर रूहानी सख़्ती के साथ अदा कर दिया जाए?

परन्तु खेद है कि इन बाहरी ख़तरों की ओर भी इन विद्वानों की आंख नहीं उठती और आन्त्रिक ख़तरों की ओर भी नहीं । और यदि उठती है तो अत्यन्त थकी और हारी हुई निराश दृष्टि या एक ऐसी असंबन्धित खाली दृष्टि जो किसी ख़तरे की पहचान की समर्था न रखती हो । यह बिल्कुल इस बात का ध्यान नहीं रखते कि आज जबकि इस्लाम के समक्ष अत्यन्त आन्तरिक और बाहरी ख़तरे हैं जो इस्लामी शरीर के एक एक अंग एक एक जोड़ पर चोटें लगा रहे हैं और कितने ही जंगली जानवर एक समय बीत गया कि इस्लाम की रगे जान से ख़ून चूस रहे हैं इनके निकट केवल एक ही ख़तरा इस्लाम को है... यह भय इस्लाम में पाए जाने वाले समूहों के विभिन्न सिद्धान्तों का भय है । कहीं तो यह शिया सिद्धान्तों का भय बन कर प्रकट होता है कहीं सुन्नी सिद्धान्तों का हव्वा बन कर निकलता है, कभी यह बरैलवी सिद्धान्तों के भयंकर रूप में नज़र आता है कभी यह अहले-हदीस या अहले क़ुर्आन के सिद्धान्तों के डरावने स्वप्न बनकर रातों की नींद हराम करता है । अत: ख़तरा केवल एक ही है जो हज़ार भेस बदलता है । अर्थात इस्लाम को केवल इस्लाम से ख़तरा है ।

जहां तक अहमदी आस्थाओं का सम्बन्ध है इस ख़तरे ने तो मानो आफ़त ढा रखी है और इस प्रकार हर ओर से इन विद्वानों को घेर लिया

है जैसे एक डरावना स्वप्न एक बच्चे के दिल को घेर लेता है और वह अपनी कल्पना में इन भ्रमी वलाओं से भागने का प्रयत्न करता है और नहीं जानता कि वास्तविक ख़तरा इन स्वपनों से नहीं बल्कि उस सांप से है जो इसके दिल के समीप कुंडली मारे बैठा है । केवल अन्तर यह है कि बच्चा तो नींद की दशा में होता है और यह जागे हुए हैं । और बच्चा तो डराने वाली आकृतियों से डरता है और यह उन आकृतियों से डर रहे हैं जो इनकी उन्नति के लिए और इस्लाम के नवजीवन का संदेश लेकर उभरी हैं । केवल इसी पर बस नहीं बल्कि जान बूझ कर इन आकृतियों की ओर वह चिन्ह सम्बन्धित करते हैं जिनकी कल्पना से इन्हें डर अनुभव हो । अत: अहमदी लाख कहें और ख़ुदा का पवित्र नाम ले ले कर क़समें खाएँ कि हम अपने अत्यन्त प्रिय आक़ा हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम को ख़ातमुन्नबिय्यीन समझते हैं और समस्त नबियों से उत्तम और सर्वश्रेष्ठ जानते हैं । आप के प्रेम जाल में सिर से पांव तक गिरफ़्तार हैं और ईमान रखते हैं कि आप(स) की शरीअत आख़री और कामिल (सम्पूर्ण) और समस्त मानवता और प्रत्येक युग के लिए है परन्तु यह विद्वान नहीं मानते और इसके बिल्कुल विपरीत विचार सम्बन्धित करके हमें भयानक रूप में देखने के इच्छुक हैं । यह हज़रत संस्थापक जमाअत अहमदिय्या(अ) के इस ब्यान की ओर भी कुछ भी दृष्टि नहीं करते कि :-

''हमारे धर्म का सारांश और निचोड़ यह है कि :-

لَآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ مُحَمَّدٌ رَّسُوْلُ اللّٰهِ

(अल्लाह के अतिरिक्त कोई इबादत योग्य नहीं और मुहम्मद सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम अल्लाह के रसूल हैं) हमारी आस्था जो हम इस भौतिक जीवन में रखते हैं जिसके साथ हम बारी तआला के फ़ज़ल और तौफ़ीक़ (समर्था) से इस संसार से कूच करेंगे यह है कि हज़रत सय्यदना व मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ''ख़ातमुन्नबिय्यीन व ख़ैरुलमुरसलीन) हैं जिनके हाथ से

दीन सम्पूर्ण हो चुका और वह वरदान अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका जिसके द्वारा इन्सान सीधे मार्ग को अपना कर ख़ुदा तक पहुँच सकता है ।'' (इज़ाल-ए-औहाम)

''जनाब सय्यदना व मौलाना सय्यद-उल-कुल (सब लोगों के सरदार) व अफ़ज़ल उर रुसुल (सब रसूलों से श्रेष्ठ) हज़रत ख़ातमुन्नबिय्यीन मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के लिए एक सर्व श्रेष्ठ स्थान और उच्चत्तम पद है जो उसी कामिलुस्सिफ़ात (सर्वश्रेष्ठ) पर समाप्त हो गया है जिस की हालत को पहुँचना भी किसी दूसरे का काम नहीं कहाँ यह कि वह किसी और को प्राप्त हो सके ।''

(तौज़ीह मराम)

ख़त्मे-नबुव्वत के विषय पर वर्णात्मक बहस का यहां अवसर नहीं जो मित्र इस विषय में जमाअत-ए-अहमदिय्या की आस्था से जानकारी प्राप्त करना चाहें वह किसी समय भी सिलसिले के केन्द्र से लिट्रेचर मंगवा कर वर्णात्मक और विश्वसनीय जानकारी प्राप्त कर सकते हैं परन्तु मैं इसके अर्न्तगत यहां इतना अवश्य कहूँगा कि हम उस ख़ुदा की क़सम खाकर कहते हैं जिस के क़ब्ज़-ए-क़ुदरत में हमारी जान है और जो हर चीज़ पर क़ादिर (सर्व शक्तिमान) है कि हम हज़रत मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद साहिब क़ादियानी अलैहिस्सलाम को उस स्थान से एक अंश भी अधिक या कम नहीं समझते जो स्थान हज़रत रसूले अकरम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने उम्मत के आने वाले हादी, महदी और मसीह को दिया है । हमारे और हमारे दूसरे भाइयों के मध्य इस विषय में केवल इतना अन्तर है कि वह जिस महदी और मसीह के आने की प्रतीक्षा में हैं हमारे निकट वह महदी और मसीह आ चुका । अब स्पष्ट है कि यदि इस आने वाले की प्रतीक्षा से ख़त्मे नबुव्वत की मुहर नहीं टूटती तो उसके आने पर ईमान लाने से वह मुहर किस प्रकार टूट सकती है ? और यह समस्त झगड़ा बस इसी बात पर चुकाया जा सकता है कि यदि आँहज़रत सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम ने ख़त्मे नबुव्वत की आयत के होते हुए भी

आने वाले मसीह को नबी उल्लाह कहा और आप ख़त्मे नबुव्वत की मुहर तोड़ने वाले न हुए तो उस सादिक़ व अमीन(स) के इस सच्चे कलाम (कथन) पर ईमान लाने वाला किस प्रकार इस पवित्र मुहर को तोड़ने वाला समझा गया ? आश्चर्य है और फिर आश्चर्य है...

परन्तु यह बहस इस विषय से भिन्न है और मैं यहां एक असम्भव बात के रूप में यह कहता हूँ कि यदि अहमदी ख़त्मे नबुव्वत के मुनकिर भी हों نَعُوْذُ بِاللّٰہِ مِنْ ذٰلِکَ (हम इससे अल्लाह की पनाह चाहते हैं) तो क्या इस्लाम को यही एक ख़तरा सामने है और अहमदियों के वध व तबाही से क्या ईसाइयत का आक्रमण रुक जाएगा ? और समस्त संसार में क्या इस्लाम को विजय प्राप्त हो जाएगी ? क्या रसूलुल्लाह सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के युग की सच्चाई और सत्यता की कसौटी फिर समस्त इस्लामी संसार में स्थापित हो जाएगी और क्या मुसलमानों के इसके बाद परस्पर समस्त मतभेद मिट जाएँगे और विद्वान तकफ़ीर बाज़ी हमेशा के लिए छोड़ देंगे ? क्या शिया सुन्नी फिर भाई भाई बन जाएँगे और बरैलवियों और देव बन्दियों के झगड़े क़यामत तक के लिए निपट जाएँगे ?... और क्या अहमदियों के वध व तबाही के पश्चात् डाका, चोरी और भ्रष्टाचार की लानतें हमेशा के लिए इस्लामी देशों को छोड़ देंगी ?... मस्जिदें फिर से आबाद होंगी और नवीन सभ्यता के कुप्रभाव से समाज एक बार पवित्र हो जाएगा ? क्या इसके बाद स्त्रियों के चेहरे से उठता हुआ निक़ाब फिर गिरने लगेगा ? सिनेमा हाल उजड़ जाएँगे और नाच रंग की सभाएँ वीरान हो जाएँगी ? और अहमदियों के तलवार से कटने के पश्चात क्या वास्तव में युरोप और अमरीका और अफ़्रीका और एशिया और आस्ट्रेलिया की ग़ैर मुस्लिम आबादियां दीवानों की तरह इस्लाम की ओर दौड़ी चली आएँगी ? ...काश ऐसा हो सकता !!! और यदि ऐसा हो सकता तो दुनिया देखती कि कोई सच्चा अहमदी भी इस मार्ग में गर्दन कटवाने से पीछे न हटता । हम दौड़ते हुए। एक दूसरे से आगे बढ़ते हुए ऐसी पवित्र मृत्यु के समुद्र में छलांगें लगा देते क्यों कि हमारी तो इबादतें और हमारी क़ुर्बानियां (बलिदान) हमारा जीवन और हमारी मृत्यु केवल इस लिए है कि इस्लाम को नया जीवन प्रदान हो।

यदि आज हमारी मृत्यु से इस्लाम को जीवन प्रदान हो जाए तो हम आज इसी समय इसी क्षण मरने के लिए तैयार हैं ।

अतः इन विद्वानों की यह अद्‌भुत दशा है कि ख़त्मे-नबुव्वत का वह फ़र्ज़ी इन्कार जो अहमदियों ने कभी नहीं किया आज उनके लिए इस्लाम के जीवन और मृत्यु की समस्या बन चुकी है और इस्लाम का जीवन और मृत्यु की वह असंख्य समस्याएँ जिससे वह प्रतिदिन अपने शहरों, अपने क़स्बों और अपने गांवों की गली गली में दो चार होते हैं उनकी दृष्टि में कोई वास्तविकता नहीं रखते ।

इनकी तीव्र संवेदनशीलता और अंसवेदनशीलता का यह प्रतिकूल एकत्रण एक अद्‌भुत व्यंग्यात्मक रूप धारण कर लेता है जब हम इन्हें एक ओर तो पाकिस्तान बनने तक बल्कि बाद में भी इस दृष्टिकोण का समर्थक पाते हैं कि बस अखंड हिन्दुस्तान ही मुसलमान के हित का प्रतिभू (ज़ामिन) हो सकता है और मिस्टर गांधी और वल्लभ भाई पटेल और पंडित नेहरू के नेतृत्व में कांग्रेस की पंक्तियों में सब कहते हुए देखते हैं और दूसरी ओर चौहधरी मुहम्मद ज़फ़रुल्लाह ख़ां की पाकिस्तान की केन्द्रीय सभा उनकी आंख का फौड़ा बन जाती है और संयुक्त राष्ट्र में उनका पाकिस्तान की ओर से प्रतिनिधित्व करना इन्हें इस्लाम के लिए एक भयंकर ख़तरा दिखाई देता है । विद्वानों के इस सोचने की शैली पर कभी हंसी आती है तो कभी रोना आता है । संभव हो तो एक एक विद्वान (आलिमों) को सामने बिठा कर पूछूं कि बताओ तो सही कि गांधी की पैरवी से इस्लाम किस प्रकार जीवित हो सकता था और अब ज़फ़रुल्लाह के प्रतिनिधित्व से मर किस प्रकार सकता है ? क्या इस्लाम का इन बातों से कोई दूर का भी सम्बन्ध है ?... इस्लाम यदि जीवित हो सकता है तो प्रत्येक मुसलमान के सीने में ईमान की ज्योति जलने से जीवित हो सकता है और मर सकता है तो इन्हीं ज्वालाओं के बुझ जाने से । फिर क्या गांधी की पैरवी से यह सब ज्योतियां एक एक करके जलने लगी थीं और क्या आज ज़फ़रुल्लाह के प्रतिनिधित्व के झोंकों से सहसर यह ज्योतियां बुझने लगी हैं ? क्या साठ करोड़ मुसलमानों के ईमान का जीवन और मृत्यु बस इन्हीं दो घटनाओं पर आधारित थी या

है... ? क्या यह विद्वान नहीं जानते कि इस्लाम के समक्ष आने वाले ख़तरों का किसी मंत्री की मंत्रित्व से दूर का भी सम्बन्ध नहीं बल्कि यह ख़तरे उस नाज़ुक दशा के कारण उत्पन्न हुए जिनका वर्णन करते हुए अल्लामा हाली अत्यन्त पीड़ा के साथ लिखते हैं :-

ऐ ख़ासा-ए-ख़ासाने रसुल वक़्ते दुआ है,
उम्मत पे तिरी आके अजब वक़्त पड़ा है ।

जो दीन बड़ी शान से निकला था वतन से,
परदेस में वह आज ग़रीबुल-ग़ुरबा है ।

जिस दीन के मदऊ थे कभी क़ैसरो किसरा,
ख़ुद आज वह मेहमान सराए फ़ुक़रा है ।

वह दीन हुई बज़्मे जहां जिससे चराग़ाँ,
अब उसकी मजालिस में न बत्ती न दिया है ।

जो दीन कि था शिर्क से आलम का निगहबाँ,
अब उसका निगहबाँ अगर है तो ख़ुदा है ।

जो तफ़रक़े अक़वाम के आया था मिटाने,
उस दीन में ख़ुद तफ़रक़ा अब आके पड़ा है ।

जिस दीन ने थे ग़ैरों के दिल आके मिलाए,
उस दीन में ख़ुद भाई से अब भाई जुदा है ।

जो दीन कि हमदर्दे बनी नौए बशर था,
अब जंग व जदल चार तरफ़ इसमें बपा है ।

जिस दीन का था फ़क़्र भी इकसीर ग़िना भी,
उस दीन में अब फ़क़्र है बाक़ी न ग़िना है ।

जो दीन कि गोदों में पला था हुकमा की,
वह अरसा-ए-तेग़े जुहला है सुफ़हा है ।

जिस दीन की हुज्जत से सब अदियान थे मग़लूब,
अब मुअतरिज़ इस दीन पे हर हिर ज़ह दरा है ।

है दीन तेरा अब भी वही चश्मा-ए-साफ़ी,
दीनदारों में पर आब है बाक़ी न सफ़ा है ।

याँ राग है दिन रात तो वाँ रंग शबो रोज़,
यह महफ़िल-ए-अअयान है वह बज़्मे शुरफ़ा है ।

छोटों में इताअत है, न शफ़क़त है बड़ों में,
प्यारों में मुहब्बत है न यारों में वफ़ा है ।

दौलत है न इज़्ज़त, न फ़ज़ीलत न हुनर है,
इक दीन है बाक़ी सो वह बे बरगो नवा है ।

(मुसद्दस हाली)

यह अल्लामा हाली की जीभ से मुसलमानों की दुर्दशा का उस समय का नक़्शा है जब अभी दशा इससे अच्छी थी । अब तो दशा और भी अस्त व्यस्त हो चुकी है और इक़बाल का प्रस्तुत किया हुआ चित्र वास्तविकता से अधिक निकट है । उनके निकट मुस्लमानों के :-

हाथ बे ज़ोर हैं इलहाद से दिल ख़ूगर हैं,
उम्मती बाएस-ए-रुसवाईए पैग़म्बर हैं ।

बुत शिकन उठ गए बाकी जो रहे बुत गर हैं,
था बराहीम पिदर और पिसर आज़र हैं ।

बादह आशाम नए बादह नया ख़ुम भी नए,
हरमे काबा नया बुत भी नए तुम भी नए ।

किस क़दर तुम पे गिराँ सुबह की बेदारी है,
हम से कब प्यार है हां नींद तुम्हें प्यारी है ।

तब-ए आज़ाद पे क़ैदे रमज़ाँ भारी है,
तुम ही कह दो यही आईने वफ़ादारी है ।

क़ौम मज़हब से है मज़हब जो नहीं तुम भी नहीं,
जज़्बे बाहम जो नहीं महफ़िले अन्जुम भी नहीं ।

जिनको आता नहीं दुनिया में कोई फ़न तुम हो,
नहीं जिस क़ौम को परवाए नशैमन तुम हो ।

बिजलियां जिसमें हों आसूदह वह ख़िरमन तुम हो,
बेच खाते हैं जो असलाफ़ के मदफ़न तुम हो ।

हो निको नाम जो क़बरों की तिजारत करके,
क्या न बेचोगे जो मिल जाएँ सनम पत्थर के ?

शोर है हो गए दुनिया से मुसलमाँ नाबूद,
हम यह कहते हैं कि थे भी कहीं मुस्लिम मौजूद ।

वज़अ् में तुम हो नसारा तो तमद्दुन में हुनूद,
यह मुसलमाँ हैं जिन्हें देखके शरमाएँ यहूद,

यूँ तो सय्यद भी हो मिर्ज़ा भी हो अफ़ग़ान भी,
तुम सभी कुछ हो बताओ तो मुसलमान भी हो ।

मैं विद्वानों से पूछता हूँ कि क्या मुसलमानों की यह अत्यन्त पीड़ाजनक दशा इस स्थान तक इसी लिए पहुँची है कि ज़फ़रुल्लाह ख़ां ने एक दिन पाकिस्तान का प्रतिनिधि बनना था ? और क्या यह समस्त मुसलमान जिनका वर्णन अल्लामा हाली और अल्लामा इक़बाल ने किया है बस इसी कारण से इस दरिद्रता का शिकार हो गए कि एक अल्पसंख्यक जमाअत पर "ख़त्मे नबुव्वत" के इनकार का आरोप लगाया जाना था ?

इस समय विद्वानों को इस्लाम के सम्बन्ध में जो भय नज़र आ रहे हैं वह यदि सच भी हों तो उनका उदाहरण उन वास्तविक ख़तरों के सामने जो उनको नज़र नहीं आ रहे ऐसे ही हैं जैसे कोई व्यक्ति एक आक्रमणकारी भयंकर पशु से तो आंखें बंद कर ले और पीठ मोड़ कर बैठ जाए और एक सुन्दर फूल पर बैठी हुई सुन्दर तितली को अपनी जान का

अत्यन्त शत्रु समझ कर अत्यन्त आतंकित निगाहें उस पर डाले और कभी भय से पीछे हट जाए और कभी क्रोध से आगे बढ़े ताकि उसे अपनी उंगलियों में मसले और पांवों तले कुचल डाले या फिर बिल्कुल उस व्यक्ति की भांति कि जिसे कमज़ोर पर तो बहुत क्रोध आता था परन्तु शक्तिशाली को देखकर उसका हृदय करूणा व पीड़ा की भावनाओं से भर जाता था । खेद ! न तो यह आर्यों के विरुद्ध खड़े होते हैं न ईसाइयों के विरुद्ध । न इन्हें मुशरिक युरोप पर क्रोध आता है न नास्तिक रूस पर । और आन्तिरक बुराईयों के ऊंचे पहाड़ों को भी दूर करने की हिम्मत नहीं पाते । हाँ क्रोध आता है तो उन दुर्बल अल्पसंख्यक अहमदियों पर जिनका दोष केवल यह है कि उनके निकट हज़रत रसूले अकरम सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की वह भविष्यवाणी अत्यन्त सफ़ाई और शान के साथ पूरी हो चुकी है जिसमें एक महदी और एक मसीह के आने का शुभ समाचार दिया गया था । वही महदी और वही मसीह जिसके हाथों से अन्तिम युग में ईसाइयत और दूसरे धर्मों पर इस्लाम की विजय निश्चित थी ।

अत: इनको इन्हीं अल्पसंख्यक अहमदियों पर क्रोध आता है जो इस्लाम के प्रचार के लिए साठ करोड़ मुसलमानों (अब एक अरब के लगभग-अनुलेखक) की पीड़ा अपने सीनों में लिए हुए संसार के कोने कोने में हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम का क़ुर्आन ले कर निकल खड़े हुए हैं जिनके मुक़ाबले पर आज हर स्थान में ईसाइयत के पांव उखड़े चले जा रहे हैं और इस्लाम आगे बढ़ रहा है । जिन्होंने यूरोप के दिल में भी मस्जिदें बना दीं और अफ़्रीका के अन्धकारमय जंगलों में भी तकबीर (अल्लाह की बढ़ाई) के नारे ऊंचे किए और जिनको यह गर्व प्राप्त है कि उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप ख़ुदा तआला के फ़ज़ल से यह काला महाद्वीप इस्लाम के प्रकाश से बड़ी तीव्रता से उज्जवलित हो रहा है। कहां वह रातें कि जब ईसाई पादरी यह समझा करते थे कि कुछ वर्षों में वह सारे अफ़्रीका को ईसाई बनालेंगे और कहां यह दिन कि आज एक ईसाई के बदले में 10 अफ़्रीकन मुशरिकीन इस्लाम स्वीकार कर रहे हैं ।

हां इसी दोष की सज़ा में यह अहमदी इस समय इस्लाम के लिए

सब से बड़ा ख़तरा हैं और उनका इलाज भी वही एक इलाज है जो प्राय: ऐसे दोषियों का होता चला आया है अर्थात समस्याओं को एक ओर उठा कर रख दो और उपदेश का विचार तक न दिल में आने दो । हां तलवारें उठाओ और उनके पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों का वध कर दो यहां तक कि उनका चिन्ह तक संसार में शेष न रहे या फिर यह "मुनाफ़िक़त" का जीवन अपना लें और उन विद्वानों के संगठन में लौट जाएँ जिनकी इच्छा पर उनके क़त्ले आम का जश्न मनाया जा रहा हो ।

परन्तु इन विद्वानों का संगठन कौन सा है और यह संगठन कब तक? हम अहमदिय्यत से तौबा करके वह कौनसा धर्म अपनाएँ जिससे सब विद्वानों के दिल एक साथ ठंडे हो सकें । क्या हज़रत अली(र) के प्रेम का दावा करें और अबुबकर(र), उमर(र) और उसमान(र) को गालियां देने लगें ? क्या हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम को अतंर्यामी ख़ुदा की भांति अतंर्यामी मानने लगें और आप(स) के भौतिक शरीर से इन्कार करे दें । या फिर आपकी(स) नूरानियत को बिल्कुल भुला कर मनुष्यता पर बेकार ज़ोर देने लगें और نعوذ بالله (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) आपके पद को ऐसा गिराएँ कि बड़े भाई से अधिक स्थान न समझें । क्या ऐसे अहले हदीस हो जाएँ कि क़ुर्आन की ओर आंख उठा कर न देखें या ऐसे अहले क़ुर्आन कि अपने आक़ा(स) की पवित्र हदीसों को बिल्कुल ठुकरा दें ? अन्तत: वह कौन सा एक मात्र संगठन है जिसका मैम्बर तलवार के बल पर अहमदियों को बनाना उद्देश्य है ?

कुछ वास्तविक भय

पिछले पृष्ठों के अध्ययन के पश्चात संभवता कोई यह विचार करे कि विद्वानों का दीन में हिंसा और ज़बरदस्ती को उचित समझने की बात और धर्म परिवर्तन करने वाले का वध यह दोनों ऐसी बाते हैं जिनका एक छोटे से मुसलमान सम्प्रदाय से सम्बन्ध है और क्या अन्तर पड़ता है यदि साठ करोड़ (अब एक अरब के लगभग) की मुसलमान आबादी में से कुछ लाख अहमदी पुरुष, स्त्रियाँ, बूढ़े और बच्चे क़त्ल कर दिए जाएँ । कम से कम इसके पश्चात् शेष मुसलमान तो अमन (शांति) और चैन की सांस लेंगे । परन्तु यह विचार एक भ्रम से बढ़कर महत्त्व नहीं रखता और इस युग के बहुत से विद्वानों के स्वभाव से अपरिचित होने का प्रमाण है । यद्यपि यह सही है कि प्रत्येक शक्तिशाली ग़ैर मुस्लिम के मुक़ाबले पर इनकी कार्य शक्ति समाप्त हो जाती है परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि दूसरे मुसलमान सम्प्रदायों के विरुद्ध भी इनका क्रोध इस सरलता से ठण्डा हो सकता है ।

मैं यह नहीं कहता कि उम्मत के समस्त विद्वान एक ही प्रकार के विवेक के आदी हैं । (ख़ुदा वह समय न लाए) परन्तु कठिनाई यह है कि सज्जन निष्पक्ष आवाज़ अधिकतर दुर्बल हुआ करती है और यह लोग प्रत्येक दु:ख के अवसर से दामन बचा लेते हैं । अत: मैं इस समय केवल उन विद्वानों की बात कर रहा हूँ जो अधिकतर फ़त्वाबाज़ी में व्यस्त रहते हैं और तकफ़ीर (काफ़िर कहना) जिनकी मनोरंजक रुचि है । जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है उनके विचार और भावनाएँ अधिकतर एक दूसरे के विपरीत होते हैं । अत: एक ओर तो कार्य शक्ति इतनी दुर्बल

पड़ चुकती है कि जिस कठिन मैदान में भी इस्लाम को जिहाद (धर्मयुद्ध) की आवश्यकता हो उससे कोसों दूर रहते हैं और जहां आवश्यकता न हो। वहां बातों के ग़ाज़ी बन कर कूद पड़ते हैं ।...[1]

यह विद्वान प्रत्येक उस विषय से गहरी रुचि रखते हैं जिससे उनका तीव्र एवं जल्द दु:खी होने वाला स्वभाव अत्यन्त उत्तेजित हो सके और फिर यह परस्पर मुसलमान सम्प्रदायों के मध्य फूट और विरोध को हवा दे सकें । बुराइयों को देखने में यह अत्यन्त दूरदर्शी बल्कि सूक्ष्म अविष्कारी दृष्टि रखते हैं । इनकी सारी बिजलियां केवल मुसलमानों के कंधों पर टूटती हैं । इनका संगठन कभी पारस्परिक प्रेम के आधार पर नहीं होता बल्कि किसी तीसरे का द्वेष इनको इकट्ठा करने का कारण बनता है । अत: कभी तो आप ''इजमाए उम्मत'' अहमदियों के विरुद्ध देखेंगे और कभी शियों के विरुद्ध । कभी बरेलवियों के विरुद्ध यह इकठ्ठ होगा और कभी देवबन्दियों के मुक़ाबले पर । और कभी सब मिल कर अहले क़ुर्आन के विरुद्ध इजमा का मायावी दृश्य प्रस्तुत करेंगे । इनका उदाहरण ऐसा ही है जैसे कहते हैं कि एक बाग़ के मालिक ने देखा कि एक सय्यद, एक पठान, और एक मरासी उसके बाग़ का फल तोड़ रहे हैं। इन तीनों के मुक़ाबले पर वह अपने आप को बहुत दुर्बल पाता था अत: उसने आगे बढ़ कर उन्हें अस्सलामो अलैकुम कहा और हाथ बांध कर निवेदन किया कि श्री शाह साहिब और श्रीमान ख़ाँ साहिब आप

---

1. इस्लाम का यह मौलिक प्रमाणित नियम है कि जो व्यक्ति जिस देश का निवासी हो वह अपने देश का वफ़ादार शहरी बनकर रहे और अपनी सरकार की पूरी-पूरी सहायता करे । और जमाअत अहमदिय्या आरम्भ से ही इस नियम का दृढ़ता से पालन करती चली आ रही है । इस लेख में केवल जमाअत-ए-इस्लामी की दो मुखी नीति का प्रकटन किया गया है कि एक ओर तो जिहाद के ऊंचे-ऊंचे दावे करती है । और दूसरी ओर ऐसे महत्त्वपूर्ण समय में जब प्रत्येक प्रकार के विरोध समाप्त कर दिए जाते हैं, जमाअते इस्लामी का ऐसी आवाज़ उठाना अर्थपूर्ण था जिसके कारण सरकार को उन्हें नज़रबन्द करना पड़ा ।

दोनों तो ख़ैर सम्माननीय लोगों में सम्मिलित होते हैं, अत: आप जो चाहे करें कि आप ही का बाग़ है परन्तु यह... मरासी किस आधार पर इस बाग़ में आने का साहस कर सका इस कारण आप वरिष्ठ मेरा साथ दें तो क्यों न हम मिल कर पहले इस चोर की ठुकाई कर लें फिर आप अधिकारी हैं जिस भांति चाहें और जहां से चाहें इस बाग़ का फल तोड़ें। इस पर उन तीनों ने मिल कर उस मरासी को पकड़ लिया और मार मार कर वहीं ढेर कर दिया। शाह साहिब और ख़ान साहिब ने इसके पश्चात फल की ओर ध्यान दिया। इस पर माली शाह साहिब को अलग ले गया और निवेदन किया कि हज़रत यह सब कुछ आपका ही है मुझे आप पर तो कोई आपत्ति नहीं कि आप रसूल की संतान हैं परन्तु इस पठान पर बहुत क्रोध आ रहा है कि इसको तीसरे स्थान पर यह अधिकार कहां से प्राप्त हो गया कि मेरे बाग़ का फल बर्बाद करे। शाह साहिब ज़रा सीधे सादे व्यक्ति थे उनकी समझ में यह बात आ गई। अत: उन दोनों ने ख़ान साहिब को पकड़ लिया और रस्सों से बांध कर उनकी ख़ूब ठुकाई की और अधमरा छोड़ गए। इसके बाद शाह साहिब फल की ओर लपके और माली ने इन्हें निर्बल और अकेला पाकर उनकी गर्दन दबा ली और मार-मार कर दुर्दशा कर दी।

यदि पाठक ज़रा भी विचार करें तो उन्हें पता चल जाएगा कि इन विद्वानों की War strategy अर्थात जंगी दांव पैच इस उदाहरण से बहुत समान हैं। अन्तर है तो केवल यह कि इस बाग़ के यह स्वयं स्वामी बन बैठे हैं— अत: इस बात में विश्वसनीय रूप से कोई संदेह नहीं कि यह हिंसा और क़त्ले मुरतद की आवाज़ें उठाने वाले विद्वान दिल में सुदृढ़ संकल्प लिए बैठे हैं कि जब भी इनको किसी विरोधी सम्प्रदाय पर सत्ता प्राप्त हुई यह बलपूर्वक इसका समापन कर देंगे। ख़त्मे नबुव्वत के इन्कार के आरोप में अहमदियों के विरुद्ध हंगामों के कुछ दृश्य आप देख ही चुके हैं। उस समय यह विद्वान एक ज़ुबान होकर जनता से कहते थे कि काफ़िर हैं तो यही अहमदी हैं और मुरतद हैं तो यही, और इनके अन्त के साथ ही इस्लाम के समस्त दु:खों का अंत हो जाएगा और हम भाईयों की भांति परस्पर गले मिलकर बैठेंगें। हमारे विरोध आंतरिक हैं और यह

एक बाहरी विरोध है । हमारे विरोध समाप्त हो जाने वाले हैं और यह एक मौलिक विरोध है । परन्तु इन्हीं दिनों की बात है जब यह आन्दोलन अपनी पूरी शक्ति के साथ जारी हो चुका था तो जमाअते इस्लामी की पत्रिका ''तसनीम'' अहले क़ुर्आन के विरुद्ध यह फ़त्वा दिए बिना न रह सकी कि :-

''यदि यह परामर्श देने वालों का अर्थ यह है कि शरीअत केवल इतनी ही है जितनी क़ुर्आन में है शेष इसके अतिरिक्त जो कुछ है शरीअत नहीं तो यह स्पष्टतया कुफ़र है और बिल्कुल उसी प्रकार का कुफ़र है जिस प्रकार का कुफ़र क़ादियानियों का है बल्कि कुछ उससे भी सख़्त और गंभीर हैं।''

यह उन दिनों की बात है जब अभी सारा ध्यान जमाअते अहमदिया पर केन्द्रित था । अब तो ख़ैर हर ओर तकफ़ीर की गर्म बाज़ारी है और :-

कुफ़रो ईमाँ का जो मुक़दमा था,
आज फिर उसी की रुबकारी है ।

धर्म के मैदान में एक आम हुल्लड़ मच गया है । ज़ैद की लाठी है तो बकर का सिर । अमर की दाढ़ी है तो बक़र का हाथ, और प्रत्येक का गला दूसरे के हाथों टुकड़े-टुकड़े हो रहा है । अत: इस समय मेरी नज़र के सामने एक पुस्तिका है जिसका विषय है ''देवबन्दी मौलवियों का ईमान ।'' यह (मौलाना) अब्दुल मुस्तफ़ा अबुयह्या मुहम्मद मुईनुद्दीन शाफ़ई कादरी रिज़वी थानवी ने लिखा है । इसके मुख पृष्ठ के आन्तिरक पृष्ठ पर ही मौलवी अशरफ़ अली थानवी के बारे में स्पष्ट शब्दों में यह फ़त्वा प्रकाशित किया गया है कि वह ख़त्मे नबुव्वत के समर्थक न थे । यद्यपि शब्द ऐसे सभ्य नहीं परन्तु भाव यही है । इसके पश्चात् पुस्तक का वास्तविक लेख आरम्भ होता है और मौलवी इस्माईल साहिब दिहलवी को केन्द्रीय स्थान देकर तकफ़ीर का निशाना बनाया गया है । (लेख क्योंकि अत्यन्त उल्झा हुआ और संकीर्ण सोच वाला है इस लिए लेख के अंश प्रस्तुत करने से बच रहा हूँ) इसके पश्चात् देव बन्द के दूसरे

इमामों से सम्बन्धित नाम ब नाम तकफ़ीर के फ़त्वे हैं । मौलवी सना-उल्लाह साहिब अमृतसरी को भी निःसंदेह काफ़िर निर्धारित किया गया है और मौलवी रशीद अहमद साहिब गंगोही को भी । मौलाना मुहम्मद क़ासिम साहिब नानोतवी संस्थापक देव बन्द के कुफ़र का तो आधार ही मौलवी अशरफ़ अली साहिब थानवी की भांति ख़त्मे नबुव्वत के सिद्धान्त का इन्कार निर्धारित किया गया है ।

अतः उनके कई एक उदाहरण लिख कर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया गया है कि मौलाना मुहम्मद क़ासिम साहिब पूर्णत्या ख़त्मे नबुव्वत के इन्कारी थे । (हालांकि जिस प्रकार यह झूठ है कि अहमदी ख़त्मे नबुव्वत के समर्थक नहीं उसी प्रकार यह भी स्पष्ट आरोप है कि मौलाना मुहम्मद क़ासिम नानोतवी ख़त्मे नबुव्वत के इन्कारी थे) परन्तु क्योंकि ख़त्मे नबुव्वत की व्याख्या उनके निकट अहमदियों की भांति मौलाना अब्दुल मुस्तफ़ा... शाफ़ई क़ादरी व ग़ैर हुम की व्याख्या ख़त्मे नबुव्वत के विरुद्ध है इस लिए इस रिसाले के लेखक अब्दुल मुस्तफ़ा जनाब मौलवी मुहम्मद क़ासिम साहिब से सम्बन्धित फ़र्माते हैं :-

''मुसलमानो ! देखो इस धिक्कृत अपवित्र शैतानी कथन ने ख़त्मे नबुव्वत की कैसी जड़ काट दी है... अब यह अध्ययन फ़र्माइए कि मौलवी क़ासिम नानोतवी ख़त्मे नबुव्वत का इन्कारी है और ख़त्मे नबुव्वत के इन्कारियों के पक्ष में मौलवी रशीद अहमद व मौलवी ख़लील अहमद व ग़ैर हुम वहाबिया ने कुफ़र के फ़त्वे दिए...।''

परन्तु मैं यह कहता हूँ कि ''अब यह अध्ययन फ़र्माईए'' कि वही ख़त्मे नबुव्वत के इन्कार की छुरी जो कभी एक भव्य इकट्ठ के साथ विशेषकर अहरारियों के कुशल हाथों अहमदियों के दिल पर चलाई जाती थी अब किस स्वतन्त्रता से इन्हीं लोगों के दिल पर चलने लगी जो यह छुरी चलाने में कुशल समझे जाते थे । ये तो केवल एक तुच्छ उदाहरण है। खेद है कि मैं स्थान की कमी के कारण से इस रिसाले के पृष्ठ 15 का वह विवरण संकलित नहीं कर सकता जिसका विषय है :-

''मिर्ज़ाईयों क़ादियानियों की भांति देव बन्दियों

वहाबियों के सिद्धान्तों का संक्षिप्त उदाहरण ।''

यह लेख भी पढ़ने योग्य है।और शोरिश काशमीरी का वह लेख भी पढ़ने योग्य है जो रिसाला ''काफ़िर साज़ मुल्ला'' के मुख पृष्ठ पर संकलित है ।

''जो व्यक्ति देवबन्दियों के वरिष्ठों के विरुद्ध कुफ़र का फ़त्वा लगाता है वह न केवल यह कि कठोर हृदयी है । अभागा है । कटु भाषी है । ज़लील है । नीच है । बल्कि हम यहां तक कहने के तैयार हैं कि वह धूप-छांव की संतान है ।''

इस रिसाले के पृष्ठ 7 का लेख भी विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है जिसमें शोरिश काश्मीरी साहिब के 1962 ई. के ''चट्टान'' के उद्घाटनीय निबंध की यह धमकी संकलित है कि :-

''इन काफ़िरगरों से हमारी यह प्रार्थना अवश्य है कि अपनी जीभों को बंद करें वरन् ऐसा ना हो कि इनका पोस्ट मार्टम करने की आवश्यकता अनुभव हो । हम यह एक क्षण के लिए भी सहन नहीं कर सकते कि कोई व्यक्ति उन लोगों को काफ़िर कहे जो इस देश में एक शताब्दी या इससे भी अधिक समय से इस्लाम के सही सेवक हैं... कम से कम मांग यह है कि सरकार उनकी ज़ुबाने बदं कर दे । हमें इस प्रकार के फ़ैज़ दरजत हामी-ए-सुन्नत, माही-ए- बिदअत शेख़ुलहदीस और अबुलफ़ज़ल कहलाने वाले पटवारियों की आवश्यकता नहीं । यह उपद्रव करने वाले हैं और उपद्रव रसूलुल्लाह के कथनानुसार वध से भी अधिक भयानक दोष है ।''

फिर इस रिसाले के पृष्ठ 9 पर ''फ़ी सबीलिल्लाह फ़साद'' के शीर्षक के अधीन शोरिश काशमीरी साहिब की एक कविता लिखी है जो रुचि रहित नहीं । इसमें बरैलवियों पर ''दीन फ़रोशी की रोटियां'' खाने और शरीअते पयम्बरी बेच कर खाने का आरोप लगाया गया है और लार्ड कलाईव के घर का व्यक्ति निर्धारित किया गया है । फिर आगे चल कर

इसी रिसाले में बरैलवियों को लीग और क़ायदे-आज़म के शत्रु के रूप में दिखाया गया है ।

इस रिसाले के अतिरिक्त देवबन्दियों द्वारा प्रकाशित एक और दो पृष्ठ भी मेरी नज़र से गुज़रा है जिसका शीर्षक है :-

"रज़ाख़ानी फ़ित्ना पर दाज़ों का स्याह झूठ"

इसमें सम्पादक "चट्टान" आग़ा शोरिश काशमीरी का यह उद्‌दरण संकलित है :-

"हमने इन आंखों के सामने मौलाना मुहम्मद अली, मौलाना हुसैन अहमद (मदनी), अबुल कलाम आज़ाद, अल्लामा इक़बाल(र), मौलाना ज़फ़र अली ख़ान, मौलाना हसरत मौहानी, सय्यद अता-उल्लाह शाह बुख़ारी और उनके सद्‌गुणों व विशेषता के दूसरे व्यक्तियों को भड़ुओं और बे-ग़ैरतों की संतान के हाथों अपमानित होते देखा है ।

कुछ पंक्तियों के पश्चात् फ़र्माते हैं :-

"हम रब्बे ज़ुल्‌जलाल को साक्षी बना कर यह कह सकते हैं कि उन्हें गाली देने वाले फिर वह लोग भी थे जो उनके शौचालय की ईंट से भी न्यूनतक वर्ग के लोग हैं ।

इसके उत्तर में बरैलवी रिसाला "शोरिश की शोरिश" के पृष्ठ 3 पर एक कविता छपी जिसके कुछ पद्य निम्नलिखित हैं :-

गुज़री है "उस बाज़ार" ही में जिसकी ज़िदगी,
हमको सुना रहा है वह बातें "खरी-खरी" ।

हाथों में लेके परचमे गुसताख़ी-ए-रसूल,
करने लगा है दहर पे ज़ाहिर "शनावरी" ।

झांका न उसने अपने गरैबान में कभी,
आई नज़र न उसको कभी अपनी क़ाफ़री ।

मैं पूछता हूँ उससे कि ए बानी-ए-फ़साद
कब से मिली है तुझ को सनद इलमे दीन की ।

''परशाद'' मन्दिरों के बता कौन खा गया,
हिन्दु की मुहर किसकी जबीं पर बता लगी ।

''भारत की जय'' के नारे लगाता रहा है कौन,
ख़ुद सोच किसने बैची है शरअे पयम्बरी ।

आज़ादी-ए-वतन का मुख़ालिफ़ बता था कौन,
थी कांग्रेस के साथ बता किस की दोस्ती ।

नहरू को ''या रसूल'' बता किसने था कहा,
रौंदी थी किसने सोच रिसालत की बरतरी ।

नानोतवी पे कुफ़र का फ़त्वा लगे न क्यों,
क्योंकर यह मानलें कि मुसलमाँ है थानवी ।

किसने कहा है ''बाबे नबुव्वत नहीं है बंद'',
की क़ादियानियों की बता किसने रहबरी ।

किसने सिखाई है तुझे तौहीने मुस्तफ़ा,
सीखे हैं तूने किससे यह ''आदाबे काफ़री ।''

हम ''वारिसे समूमो ख़िज़ाँ'' ही सही मगर,
तुमसे मिली है कौन से फूलों को ताज़गी ।

हम फ़ित्ना व फ़साद के ख़ूगर सही मगर,
तुमने तो छीन ली है हज़ारों की ज़िंदगी ।

इन्सानियत के नाम पर देते हो गालियाँ,
इस पर भी कह रहे हो बुरे हैं बरैलवी ।

नंगे हुए हो ख़ुद ही शराफ़त के नाम पर,
तहज़ीब व शर्म तुम में ज़रा सी नहीं रही

फैलाए फ़ितने ख़त्मे नबुव्वत की आड़ में
करते हो नामे अमन पे तुम फ़ित्ना परवरी

चंदे बटोरते हो नबुव्वत के नाम पर
तुम कर रहे हो नामे नबी पर गदागरी ।

नारों से है अमीरे शरीअत कोई बना,
रास आ गई किसी को "ख़िताबत" की साहरी ।

यह बरैलवियों और देवबिन्दयों की एक दूसरे के विरुद्ध कटु भाषी का एक लम्बा क्रम है और दोनों ओर की भाषा शैली स्वभाव पर अत्यन्त भारी पड़ती है परन्तु एक बात इसके पढ़ने से बिल्कुल स्पष्ट है कि अधिकतर विद्वानों की पारस्परिक तकफ़ीर बाज़ी का भवन केवल क्रोध व ग़ुस्से की भावनाओं पर आधारित है । जिस ओर भी वह इन भावनाओं का धारा फैर दें वही व्यक्ति या जमाअत या सम्प्रदाय काफ़िर, मुरतद, वध योग्य और उनके क्रोध का पात्र बन जाता है । अतः वह समस्त आरोप जो 1953 ई. के झगड़ों के मध्य अहमदियों पर लगा कर उन्हें वध योग्य निर्धारित किया जाता था अभियुक्त स्वयं एक दूसरे पर लगाने लगे । अहमदियों के विरुद्ध बरैलवियों और देवबन्दियों की ओर से सामूहिक रूप से यह आरोप लगाकर जनता की भावनाओं को भयंकर सीमा तक उत्तेजित किया जाता था कि :-

1. अहमदी ख़त्मे नबुव्वत का इन्कार करने वाले हैं ।
2. अहमदी रसूल(स) की निंदा करते हैं ।
3. अहमदी अंग्रेज़ों के पिट्ठु हैं ।
4. (पाकिस्तानी देव बन्दी कहते हैं-अनुलेखक) अहमदी पाकिस्तान के विरुद्ध हैं ।
5. अहमदी जिहाद (धर्म युद्ध) के विरुद्ध हैं ।
6. अहमदी ग़ैर मुस्लिमों के साथ मिले हुए हैं ।
7. अहमदियत मज़हब के नाम पर एक दुकानदारी है ।

अब बिल्कुल यही आरोप देवबंदी और बरैलवी एक दूसरे पर लगाने लगे हैं और जनता को फिर इन्हीं साधनों से उत्तेजित करने में व्यस्त हैं । विशेषकर कुछ देवबन्दी विद्वान तो ख़त्मे नबुव्वत के इन्कार के आरोप में भयानक हद तक बरैलवी क्रोध का निशाना बने हुए हैं और यह समस्त विद्वान जो कल तक उम्मत के एक महान इजमा (इकट्ठ) का दावा लेकर एक अल्प संख्यक जमाअत

के पीछे पड़े हुए थे आज स्वयं इस इजमा (इकट्ठ) की धज्जियां बिखेर रहे हैं । हथियार भी वही है हथियार चलाने वाले भी वही । जंगी कला में भी कोई परिवर्तन नहीं । हां बदला है तो निशाना बदल गया है । सहसा अहरार से सम्बन्धित तहक़ीक़ाती न्यायालय के जजों के वह शब्द याद आ जाते हैं कि :-

"इस्लाम उनके लिए केवल एक दाव का महत्त्व रखता था जिसे वह किसी राजनैतिक विरोधी को परेशान करने के लिए जब चाहते एक ओर उठा कर रख देते और जब चाहते उठा लेते । कांग्रेस के साथ सम्पर्क होने की दशा में तो धर्म उनके निकट एक निजी मामला था । और वह जातिय दृष्टिकोण के पाबंद थे परन्तु जब वह लीग के विरुद्ध एकत्रित हुए तो उनका एकमात्र हित इस्लाम था जिसका ठेका इन्हें ख़ुदा की ओर से मिला हुआ था । उनके निकट लीग इस्लाम से बे परवाह ही न थी बल्कि इस्लाम की शत्रु भी थी । उनके समक्ष क़ाएद-ए-आज़म एक काफ़िर-ए-आज़म थे ।"

यह शब्द विद्वान जजों ने अहरार के सम्बन्ध में प्रयुक्त किए हैं और इनकी सत्यता में कोई संदेह नहीं परन्तु साधारणतया धार्मिक संसार पर जब विद्वानों की दशा पर नज़र पड़ती है तो वहां भी इन्सान यह परिणाम निकाले बिना नहीं रह सकता कि :-

"इस्लाम उनके निकट एक दाव का महत्त्व रखता है जिसे वह किसी विरोधी को परेशान करने के लिए जब चाहते हैं एक ओर रख देते हैं और जब चाहते हैं उठा लेते हैं।"

इन विद्वानों की निष्ठापूर्ण निय्यत पर फिर विश्वास आए तो किस प्रकार जबकि अहमदियत के विरुद्ध भी वही दाव-पेच प्रयुक्त होते हैं जो बरैलवियों के विरुद्ध और बरैलवियों के विरुद्ध भी वही दाव प्रयुक्त होते हैं जो देवबन्दियों के विरुद्ध । फिर भाषा शैली भी वही अद्भुत भाषा शैली है जिसके अपनाने का तो क्या प्रश्न, वर्णन तक से घृणा आती है । एक ओर आग़ा शौरिश कुछ प्रसिद्ध पंथप्रदर्शकों के सम्बन्ध में लिखते हैं कि वह "धूप-छांव की संतान" है । और दूसरी ओर उन्हें यह उत्तर दिया जाता है कि :-

"यदि बरैलवी धूप-छांव की संतान हैं तो तू अपने सम्बन्ध में क्या विश्वास से कह सकता है । क्या अपनी बार तू पास खड़ा था ? क्या पता तू अन्धकार की संतान हो या... ।"

(शोरिश का आप्रेशन काफ़िर साज़ मुल्ला" के उत्तर में, प्रस्तुत कर्ता हाफ़िज़ मुहम्मद हुसैन लायलपुर, पृ. 6)

फिर अपनी एक "कविता" में कोई सय्यद मुहम्मद अय्यूब तन्हा कपूरथलवी शोरिश साहिब को सम्बोधित करते हुए फ़र्माते हैं :-

अहमद रज़ा की शान से तू आशना कहां,
जा सूंघ हिन्दुओं की लंगोटी सड़ी हुई ।

सिक्के तिरा रसूल हैं सिक्के तिरा ख़ुदा
जिसने ज़रा दिखा दिए वह तेरी पार्टी ।

करके ग़ल्त ब्यानियाँ झूठे जहान के,
होता है अब ज़लील तू घर घर गली गली ।

तूने तो दम भरा है सदा कुफ़र का ख़बीस,
मुस्लिम के साथ कब से हुआ है तू क्षत्रिय ।

तकबीर की ख़बर तुझे नमरूद है कहां,
जा हिन्दुओं के साथ कहीं कर हरे-हरे ।

अय्यूब जी है वक़्त की क़िल्लत बहुत यहाँ,
बाते वगरन् और भी करते खरी-खरी ।[1]

(पत्रिका "शोरिश उर्फ भाड़े का टट्टू" लेखक ग़ुलामुल मशाएख़ जनाब शाह मुहम्मद आसी, सरहिन्दी, और जनाब सय्यद मुहम्मद अय्यूब तन्हा कपूरथलवी पृ. 7-8)

---

1. जमाअते अहमदिया का यह सिद्धान्त नहीं कि किसी का दिल दुखायें। इस पंक्ति में जो शिष्टाचार से गिरी हुई भाषा प्रयुक्त की गई है वह केवल ऐसी पंक्तियां कहने वालों और उनके समर्थकों की सोच के प्रकटन के लिए है ।

सय्यद मुहम्मद अय्यूब तन्हा साहिब बहुत व्यस्त व्यक्ति जान पड़ते हैं। यदि समय की कमी न होती तो ख़ुदा जाने और कौन सी "खरी-खरी" बातें सुनाते । परन्तु प्रतीत होता है कि सैक्रेट्री अन्जुमन जमाअत अहले सुन्नत मिसरी शाह लाहौर के पास कुछ अधिक समय है क्योंकि न केवल यह कि उन्होंने देवबन्दी विद्वान विशेषतया शोरिश साहिब को दिल खोल कर "बातें खरी-खरी" सुनाईं हैं बल्कि अपने लेख "शोरिश की शोरिश" को अधिकतर ठोस प्रसंगों से सुसज्जित किया है और प्रत्येक बात का प्रमाण प्रस्तुत किया है । अतः उन "खरी-खरी" बातों के अधीन आप दो देवबन्दी विद्वानों के पारस्परिक विरोधों का वर्णन करते हुए लिखते हैं :-

"...मौलाना हुसैन अहमद साहिब ने मुस्लिम लीग में मुसलमानों की भागीदारी को हराम निर्धारित किया और काएद-ए-आज़म को काफ़र-ए-आज़म की उपाधि दी, और मौलवी हुसैन अहमद के इसी फ़त्वे के आधार पर मौलवी शब्बीर अहमद उसमानी ने कहा था कि - "यह परले दर्जे की कठोर हृदयता है कि क़ाएद-ए-आज़म को काफ़िर-ए-आज़म कहा जाए ।"

शोरिश साहिब ! ज़रा आंखें खोल कर देखिए कि यह परस्पर ही एक दूसरे को काफ़िर अबुजहल, सुअर, परले दर्जे का कठोर, मूर्ख और क़ाएद-ए-आज़म को काफ़िर-ए-आज़म कहने वाले कौन हैं ? उल्माए बरैली या उल्माए देवबन्द...?

शोरिश साहिब ! अब बताइए कि आपके कथनानुसार आपके बुरे विद्वान काफ़िर बनाने वाले दीन बेचने वाले, मिथ्यभाषी, बेलगाम, उपद्रवी कठोर हृदयी, अभागे व कटुभाषी और धूप छांव की संतान बरैली के विद्वान हैं या बुरी नज़र न लग जाए आपके देवबन्दी विद्वान ?

(शोरिश की शोरिश पृ. 8)

फिर अगले पृष्ठ पर एक देवबन्दी विद्वान के एक फ़त्वे से तर्क करते

हुए फ़र्माते हैं :-

"बताइए देवबन्दी धर्म और इस फ़त्वे के अनुसार समस्त संसार विशेषकर पाकिस्तान में आप को मिला कर कितने मुस्लमानों का निकाह स्थापित और संतान वैध हो सकती है ? अहले सुन्त के विद्वानों पर तकफ़ीर का आरोप लगाने वालो ज़रा अपने गिरैबान में मुँह डाल कर देखो कि तुम्हारी काफ़िर गिरी व तक़फ़ीर बाज़ी का उपद्रव कैसा छूत वाला (क्षय) है कि जिसके अनुसार इस्लाम के संसार का कोई पुत्र मुस्लमान और वैध नहीं हो सकता ।"

(शोरिश की शोरिश पृ. 9)

और कुछ आगे चल कर मौलवी ज़फ़र अली ख़ाँ साहिब की कविता की कुछ पंक्तियां नक़ल करते हैं जिनमें अहरार का वर्णन इन शब्दों में आता है :-

गालियां दे झूठ बोल अहरार की टोली में मिल
नुकता यूँ ही हो सकेगा हल सियासीयात का
ख़ालसा का साथ दे जब यह शरीअत का अमीर
क्यों न कहिए इसको "बाबाटल" सियासीयात का ।

अतः यह एक लम्बा और खेद पूर्ण क्रम गाली गलोच का है जो एक दूसरे के विरुद्ध जारी है और समस्त आरोप यहां तक कि भाषा शैली भी वही है जो अहमदियत के विरुद्ध अपनाई जाती रही । क्या विद्वान (उलेमा) बता सकते हैं कि यह सब कुछ इस संसार में ख़ुदा और उसके रसूल(स) की प्रतिष्ठा को स्थापित करने के लिए किया जा रहा है ?

समस्या केवल गाली गलोच तक आकर रुक नहीं जाती और केवल एक साधारण उत्तेजना की प्रेरणा तक ही सीमित नहीं बल्कि यह बात विश्वसनीय है कि जब एक लम्बे इच्छाओं के दौर के पश्चात् इनमें से किसी विद्वानों के गिरोह को सत्ता प्राप्त होगी तो यह विरोधी सम्प्रदायों के क़त्ले आम से कदापि पीछे नहीं रहेंगे । जब सत्ता प्राप्ति से पूर्व भी धर्म के नाम पर क़त्ल, विनाश और आग लगाने के बहुत से उदाहरण हमारे सामने उपस्थित हैं तो फ़िर कैसे संभव है कि सत्ता प्राप्ति के

पश्चात इस कार्य विधि में कोई अन्तर आ जाएगा ।

जब पारस्परिक घृणा की यह दशा हो, जब उत्तेजना को प्रेरित करने की हद गुज़र जाए और इन अत्यन्त क्रोध व घृणा के अतिरिक्त यह हो कि सत्ता भी प्राप्त हो जाए और समस्त देश की शक्तियाँ उनके मुक़ाबले पर होने के स्थान पर पीठ पीछे जा खड़ी हों तो फिर भला कैसे संभव है कि इस विजय के अवसर पर पहुँच कर यह विद्वान अत्याचार व हिंसा से एक दम अपने हाथ रोक लेंगे ।

ऐसे समय में अत्याचार के मार्ग में केवल एक ही रोक, रुकावट बन सकती है कि رَبُّ العالمين (समस्त विश्व का शक्तिशाली) के तेज का भय उनके दिलों पर छा जाए और अल्लाह के तक़वा का बलवान हाथ उन्हें इस कार्य से रोके रखे परन्तु यदि यह सब कुछ ख़ुदा तआला ही की "अज़मत और वक़ार" (प्रतिष्ठा और सम्मान) स्थापित करने के लिए किया जा रहा हो और अल्लाह के तक़वा का यही भाव उनके मस्तिष्क में हो । जब व्यक्तिगत अत्याचार के झुकावों को धार्मिक सिद्धान्तों ही का नाम दिया जाने लगा हो और जब यह सारी हिंसा व अत्याचार की शिक्षा ख़ुदा ही के नाम पर उसी से सम्बन्धित करके प्रस्तुत की जाती हो तो फिर क़ादिरे मुतलक़ (सर्व शक्तिमान) ख़ुदा के क़हरी हाथ के है कोई हाथ जो इन सत्ताधारी विद्वानों को अपने संकल्पों को पूरा करने से रोक रख सके ?

इस क्रम में जहां तक मौलाना मौदूदी के सिद्धान्तों का प्रश्न है उन का वर्णन कुछ सीमा तक वर्णानात्मक रूप से पहले गुज़र चुका है । रहे शेष विद्वान तो लंबा होने के भय से इनका अलग-अलग वर्णन तो यहां सम्भव नहीं हां इस के अर्न्तगत तहक़ीक़ाती अदालत के फ़ाज़िल जजों की तहक़ीक़ का सारांश स्वयं उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत किया जाता है :-

"इस्लामी सरकार में इरतदाद (धर्म परिवर्तन) की सज़ा मृत्यु है । इस पर विद्वान व्यवहारिक रूप से समान राय रखते हैं । (देखो मौलाना अबुलहसनात सय्यद मुहम्मद अहमद क़ादरी सदर जमीअत-उल-उलमाए पाकिस्तान. मौलाना अहमद अली सदर जमीअत-उल-उलमाए इस्लाम पश्चिमी पाकिस्तान, मौलाना अबु आला मौदूदी संस्थापक व पूर्व अमीर

जमाअत-ए-इस्लामी पाकिस्तान मुफ़्ती मुहम्मद इदरीस जामया अशरफ़िया लाहौर व सदस्य जमीअतुल उल्माए पाकिस्तान, मौलाना दाऊद ग़ज़नवी सदर जमीअत अहले हदीस पश्चिमी पाकिस्तान, मौलाना अब्दुल हलीम क़ासमी जमीअत-उल-उल्माए इस्लाम पंजाब और मिस्टर इब्राहीम अली चिश्ती की ग्वाहियां) इस आस्था के अनुसार चौधरी जफ़र उल-लाह ख़ां ने यदि अपने विद्यमान सिद्धान्त विरसा में प्राप्त नहीं किए बल्कि वह स्वयं अपनी इच्छा से अहमदी हुए थे तो उनको मार देना चाहिए था । और यदि मौलाना अबुल हसनात सय्यद मुहम्मद अहमद क़ादरी या मिर्ज़ा रज़ा अहमद ख़ाँ बरैलवी या इन असंख्य विद्वानों में से कोई साहिब (जो फ़त्वे (EX. D. E. 14) के सुन्दर वृक्ष के प्रत्येक पत्ते पर चित्रत दिखाए गए हैं) ऐसे इस्लामी देश के रईस (सत्ताधारी) बन जाएँ तो यही अन्त देव बन्दियों औरा वहाबियों का होगा जिनमें मौलाना मुहम्मद शफ़ी देवबन्दियों मैम्बर बोर्ड इस्लामी शिक्षा दस्तूर साज़ असैम्बली पाकिस्तान और मौलाना दाऊद ग़ज़नवी भी सम्मिलित हैं । और यदि मौलाना मुहम्मद शफ़ी देवबन्दी रईसे मुमलिकत (देश के सत्ताधारी) निर्धारित हो जाएँ तो वह इन लोगों को जिन्होंने देवबन्दियों को काफ़िर निर्धारित किया है इस्लाम के दायरे से निष्कासित कर देंगे और यदि वह लोग मुरतद की परिभाषा में आएँगे अर्थात् उन्होंने अपने धार्मिक सिद्धान्त विरसे में प्राप्त न किए होंगे बल्कि स्वयं अपना सिद्धान्त बदल लिया होगा तो मुफ़्ती साहिब उनको मृत्यु की सज़ा देंगे ।

जब देवबन्दियों का एक फ़त्वा ***(EX. D. E.*** *13) जिस में असना अशरी शिय्यों को काफ़िर निर्धारित किया गया है अदालत में प्रस्तुत हुआ तो कहा गया कि यह वास्तविक नहीं बल्कि कृत्रिम है लेकिन जब मुफ़ती मुहम्मद शफ़ी ने इस बात के सम्बन्ध में देवबन्द से पूछताछ की तो उस दारुल-उलूम के दफ़तर से इस फ़त्वे की एक नक़ल प्राप्त हो गई जिसपर दारुल-उलूम के समस्त अध्यापकों के हस्ताक्षर अंकित थे और इनमें मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब के हस्ताक्षर भी सम्मिलित थे । इस फ़त्वे में लिखा है कि*

जो लोग हज़रत सिद्दीक़-ए-अकबर(र) की साहबिय्यत पर ईमान नहीं रखते, जो लोग हज़रत आएशा सिद्दीक़ा(र) पर आरोप लगाने वाले हैं और जो लोग क़ुर्आन में तहरीफ़ (परिवर्तन) के दोषी हैं व काफ़िर हैं । मिस्टर इब्राहीम अली चिश्ती ने भी जिन्होंने अध्ययन किया है और अपने लेख की जानकारी रखते हैं इस राय का समर्थन किया है उनके निकट शिया अपनी इस आस्था के कारण काफ़िर हैं कि हज़रत अली(र) नबुव्वत में हमारे रसूले पाक(र) के शरीक थे । मिस्टर चिश्ती ने इस प्रश्न का उत्तर देने से इन्कार किया है यदि कोई सुन्नी अपना सिद्धान्त परिवर्तित करके शिय्यों का समर्थक हो जाए तो क्या वह इस इरतदाद का कर्त्ता होगा जिसकी सज़ा मौत है ? शियों के निकट समस्त सुन्नी काफ़िर हैं और अहले क़ुर्आन अर्थात् वह लोग जो हदीस को अविश्वस्त समझते हैं और उसको आचरण योग्य नहीं मानते सामूहिक रूप से काफ़िर हैं । और यही दशा स्वतन्त्र विवेकियों की है । इस समस्त बहस का अन्तिम परिणाम यह है कि शिया, सुन्नी, देवबन्दी, अहले हदीस और बरैलवी लोगों में से कोई भी मुस्लिम नहीं । और यदि देश की सरकार ऐसी जमाअत के हाथ में हो जो दूसरी जमाअत को काफ़िर समझती है तो जहां कोई व्यक्ति एक आस्था को बदल कर दूसरी (आस्था) अपना लेगा उसको इस्लामी देश में अवश्य मृत्यु की सज़ा दी जाएगी और जब यह हक़ीक़त समक्ष रखी जाए कि हमारे सामने मुस्लिम की परिभाषा के मामले में कोई दो विद्वान भी समान राय नहीं रखते तो इस आस्था के परिणामों का अनुमान करने के लिए किसी विशेष कल्पना शक्ति की आवश्यकता नहीं । यदि विद्वानों की प्रस्तुत की हुई परिभाषाओं में से प्रत्येक परिभाषा को विश्वस्त समझा जाए फिर उन्हें विलयन व हस्तांतरण के

सिद्धान्त के अधीन लाया जाए और उदाहरण के रूप में आरोप का वह रूप अपनाया जाए जो गलैलियो के विरुद्ध इनकूऐज़िशन के फ़ैसले में अपनाया गया था तो उन कारणों की संख्या असीमित हो जाएगी जिनके आधार पर किसी व्यक्ति का इरतदाद प्रमाणित किया जा सके ।

(तहक़ीक़ाती अदालत की रिपोर्ट, पृ. 236-237)

अत: इस दशा को देख कर कौन कह सकता है कि यदि इन मुस्लमान सम्प्रदायों में से किसी एक विद्वान के हाथ में "सत्ता" आ जाए तो शेष समस्त सम्प्रदायों के व्यक्तियों का क़त्ले आम वैध निर्धारित नहीं किया जाएगा । विश्वसनीय रूप से ऐसा ही होगा परन्तु इस अन्तर के साथ कि उस समय कुफ़र व इरतदाद के फ़त्वे व्यक्तिगत रूप से प्रकाशित होने के स्थान पर उस समय की सरकार के बुलैटिनज़ (Bulletins) के रूप में प्रकाशित हुआ करेंगी अथवा मंत्रियों की प्रैस कान्फ्रैंस में सम्भवता उनकी घोषणा की जाए और यह समस्त फ़त्वे एकपक्षीय होंगे और किसी विरोधी सिद्धान्त के ज्ञानी (आलिम) को यह अधिकार न होगा कि मुस्लमान सरकार के किसी ज्ञानी के विरुद्ध फ़त्वा जारी कर सके बल्कि फ़त्वे का क्या प्रश्न उसके लिए तो अपनी प्रिय जान बचाना भी असंभव होगा इसके अतिरिक्त कि (तक़िय्यह) कर ले अर्थात् वास्तविकता को छुपा लें :-

"यदि वह ऐसा ही सत्यवादी है कि मुनाफ़िक़ बन कर रहना नहीं चाहता बल्कि जिस चीज़ पर अब ईमान लाया है उसकी पैरवी में सच्चा होना चाहता है तो अपने आप को सज़ा-ए-मौत के लिए क्यों प्रस्तुत नहीं करता ?"

बुलैटिनज़ की सरगरमी के साथ साथ गलोटिनज़ (गर्दन उड़ाने का एक यन्त्र) की गति भी तीव्र होती चली जाएगी और धड़ा-धड़ सिर धड़ से अलग होने लगेंगे । और जैसा कि प्रत्येक ऐसे हिंसा के दौर में हुआ करता है उन सत्यवादियों के अतिरिक्त भी जो मुनाफ़िक़ बनकर जीवित नहीं रहना चाहते और गीदढ़ के सौ वर्षीय जीवन पर शेर के आधे घंटे के जीवन को अच्छा समझते हैं कुछ ऐसे लोग होंगे जो इरतदाद के

आरोप में धर लिए जाएँगे अर्थात् वह लोग जिनके शत्रु इन्हें उस समय की सरकार के हाथों मरवाने के लिए उन पर कुफ़र का आरोप लगाएँगे (जैसा कि पहले भी लगते आए हैं और आज भी लग रहे हैं) और न्यायालयों में अधिकता के साथ शपथ लिए हुए साक्षी प्रस्तुत हुआ करेंगे कि अमुक पुत्र अमुक ने बरैलवी या देयोबन्दी या मौदूदी सिद्धान्तों के विरुद्ध (जिस किसी की भी सरकार हो) यह कुफ़र बके थे । अतः ऐसे दोषियों के इन्कार पर अवश्य इन्हें पुलिस के हवाले और तहक़ीक़ (पूछताछ) के लिए दे दिया जाया करेगा और इन्हें भांति भांति की भयंकर यातनाएँ देकर पूछा जाएगा कि ख़ुदा को अपने समक्ष रख कर बताओ कि तुमने अमुक कुफ़र का कथन कहा था या नहीं । अतः कुछ तो वह होंगे जो ख़ुदा को समक्ष जान कर उस कुफ़र के कथन से इन्कार करेंगे और इस ''झूठ'' की सज़ा में भयंकर यातनाएँ सह सह कर जान दे देंगे और कुछ वह होंगे जो उन अत्याचारों से तंग आ कर आख़िर ख़ुदा तआला को समक्ष जान कर यह मान लेंगे कि हां हमने यह कुफ़र का कथन बका था और इस ''सच्चाई के प्रकटन'' की सज़ा स्वरूप उनकी गर्दनें तलवार या गलोटीन (गर्दन काटने का एक यन्त्र) के एक वार से उड़ा दी जाएँगी ।

यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं कि ''इस्लामी राज्य'' के इस व्यवहारिक चित्र को देख कर ग़ैर इस्लामी संसार अत्यन्त उत्तेजित और घृणित होगा और ''इस्लाम'' के विरुद्ध अत्यन्त घृणा की भावनाएँ सीनों में धधक उठेंगी यहां तक कि मुहम्मद अरबी सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम की सुन्दर शिक्षा को जो वास्तव में सिर से पैर तक अमन और शांति की शिक्षा है, साक्षात हिंसा व अत्याचार के नाम दिए जाने लगेंगे और दुनिया इस दीन से अत्यन्त विमुख हो जाएगी । और वह अफ़्रीक़ा भी जो अहमदिय्यत के मनमोहक संदेश को सुनकर इस्लाम की ओर तेज़ पगों के साथ दौड़ा चला आ रहा है अपने पग रोक लेगा बल्कि उल्टे पांव फिर जाएगा और वह अमरीका भी जिसके हज़ारों निवासियों को अहमदिय्यत इस्लाम की गोद में खींच लाई है अत्यन्त शंकाग्रस्त नज़रों से इस पवित्र शिक्षा को देखने लगेगा और यूरोप की भी वह समस्त रियासतें जहां

अहमदी मुबल्ग़िीन (प्रचारक) पांच समय नारा हाए तकबीर ऊंचा करते हैं (अज़ान देते हैं) एकदम इस्लाम के नाम से तंग आ जाएँगे परन्तु सत्ताधारी विद्वानों की बला से यह सब कुछ होता रहे उनको तो इस्लाम की प्रतिष्ठा ''मुरतदीन'' के मौत में ही नज़र आएगी। अत: उनकी बला से यदि इस्लाम का प्रचार दूसरे धर्मों में रुकता है तो रुकता फ़िरे और उनकी बला से यदि मुसलमान बढ़ने की अपितु कम होत हैं तो होते रहें। जब तक करोड़ों करोड़ मुसलमान इरतदाद के आरोप में क़त्ल नहीं किए जाएँगे उनके निकट इस्लाम सफ़ल व विजयी नहीं हो सकता ।

यह है इस समय के इस्लाम के विद्वानों के निकट इस्लामी रियासत की कल्पना और इस्लाम विजय का मानचित्र । क्या यही कल्पना نعوذ بالله (हम अल्लाह की पनाह चाहते हैं) हमारे आक़ा बानी-ए-इस्लाम (संस्थापक) हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो अलैहि वसल्लम के दिल में भी थी ? मौलाना मौदूदी के पीछे कितने हैं वह विद्वान जो इस प्रश्न का यह उत्तर दे सकें कि हां यही थी वह कल्पना ! वह कल्पना यही थी । यही थी...! इस संभावित उत्तर की कल्पना से मैं यह सोचने पर विवश हो जाता हूँ कि आख़िर कब तक उम्मत के विद्वान अपने पवित्र व मुतहर रसूल(स) की ओर (ख़ुदा तआला की असीमित रहमतें और दरूद हों उस के अस्तित्त्व और उस की आल (संतान, अनुयायी पर) हिंसा व अत्याचार के विचार सम्बन्धित करते रहेंगे ? आख़िर कब तक न्याय के नाम पर अत्याचार और शांति के नाम पर अशांति की शिक्षा दी जाती रहेगी ? और कब तक रहमत (दया, कृपा) के नाम पर अत्याचार और पवित्रता के नाम पर पर्दादार स्त्रियों को अपमानित करने का पाठ दिया जाता रहेगा ? गाली गलोच की ग़ैर इस्लामी रीतियां आख़िर कब छोड़ी जाएँगी ? और कब विरोधी सम्प्रदायों पर निराधार आरोप लगाने का क्रम बंद होगा ? यह रातें कब समाप्त होंगी और वह दिन कब आएँगे जब ख़ुदा की अज़मत (सम्मान, प्रतिष्ठा) को स्थापित करने के लिए ख़ून की होली नहीं खेली जाएगी ?

और मैं सोचता हूँ कि क्या इसी प्रकार स्पेन की इन्कूएज़ीशन का इतिहास दोहराया जाता रहेगा और मादाम तोसो के ''ऐवान हाए वहशत'' आतंकित भवन आबाद होते रहेंगे ?... और जब मैं सोचता

हूँ तो तुरन्त क़ुर्आन-ए-करीम की इस आयत की ओर मेरा ध्यान परिवर्तित हो जाता है कि :-

وَالسَّمَآءِ ذَاتِ الْبُرُوْجِ ۝ وَالْيَوْمِ الْمَوْعُوْدِ ۝ وَشَاهِدٍ وَّ مَشْهُوْدٍ ۝ قُتِلَ اَصْحٰبُ الْاُخْدُوْدِ ۝ النَّارِ ذَاتِ الْوَقُوْدِ ۝ (البروج:٢-٦)

(अलबरूज : 2-6)

मुझे ''बुर्ज़ों वाले आसमान और वचन वाले दिन और शाहिद (साक्षी) और मशहूद (जिसकी ग्वाही दी जाएँ, की क़सम है कि खाइयों वाले हलाक हो गए। अर्थात खाइयों में वह आग जलाने वाले जिनमें ख़ूब ईंधन झोंका गया था।''

हमने इस इश्क (प्रेम) में क्या खोया है क्या पाया है !!

1953 का लाल दौर व्यतीत हो गया और कितने ही असहायों के लहू ने अहमदियत में एक नया रंग भर दिया और उसकी रगों में बलिदानों का ताज़ा और पवित्र लहू दौड़ने लगा । इस युग में अहमदियों की दशा कुछ इस प्रकार थी जिस प्रकार एक बच्चा भयानक आतंकों से भयभीत होकर अपनी बाहें खोले हुए मां की ओर नि:संकोच लपकता है । अत: वह भी अपने रहमान व रहीम (दयालु एवं कृपालु) ख़ुदा की गोद में पनाह लेने के लिए उसकी ओर दौड़े और अत्यन्त विलाप के साथ उसके हज़ूर (समक्ष) आजिज़ाना (नम्रतापूर्ण) दुआओं में लग गए । बहुत से ऐसे दुर्बल जो कभी नमाज़ों में भी भूल चूक कर जाते थे अपने बिस्तरों से रातों को उठ-उठ कर सज्दों में गिरने लगे और अपनी सज्दागाहों को ख़ून के आंसू रो-रो कर भिगो दिया यहां तक कि आकाश से उनपर शांति उतरी और ख़ुदा उनके दिलों में उतर आया और प्रत्येक क्षण उनके साथ रहने लगा ।

अत: वह हर डर से निडर हो गए और प्रत्येक भय उनके हृदयों से जाता रहा । उन्होंने वह सब कुछ पा लिया जिसकी प्राप्ति के लिए मानवजाति उत्पन्न की गई थी । यहां तक कि वह ख़ाली हाथ भी जिनके घर लूटे गए थे और समस्त आयु की जमापूंजी छीन ली गई थी ईमान व इरफ़ान के धन से माला माल हो कर इस सौदे पर प्रसन्न हो गए । वह जानते थे कि कुछ तुच्छ पैसों के बदले उन्होंने वह सम्पत्ति प्राप्त की है जो क़ारून के ख़ज़ानों को भी प्राप्त न थी । वह जानते थे कि ख़ुदा

तआला के मार्ग में सन्यास और समृद्धता का जो पद उन्हें प्राप्त हुआ है वह क़ैसरो किसरा के भाग्य में भी न था ।

उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक इस मार्ग में जानें दीं, छूरे उनके सीनों में घोंपे गए, वह आग में जलाए गए, वह मारे और पीटे गए और नाना प्रकार की शारीरिक यातनाएँ उन्हें दीं गईं परन्तु वह इस मार्ग में सदृढ़ता पूर्वक डटे रहे जैसे उनसे पहले भी वह लोग सदृढ़तापूर्वक डटे रहते आए हैं जिनके दिल इस ईमान और विश्वास से परिपूर्ण हुआ करते हैं कि यह सब कुछ वह सच्चाई व सत्यता के मार्ग में सहन कर रहे हैं । जो जानते हैं कि उनके दिलों में मानवता की भलाई के अतिरिक्त और कोई भावना नहीं । उनके कथन भी इस बात की ग्वाही देते हैं और उनके कर्म भी । और उनका सारा जीवन सहानुभूति, कृपा सुशीलता और धैर्य और अल्लाह के तक़वा के साथ व्यतीत होता है ।

यद्यपि यह ठीक है कि उनमें से कुछ कमज़ोर इस परीक्षा के कठिन मार्गों में अन्त तक प्रतिक्षा पालन न कर सके और प्रेम के अत्यन्त कठिन स्थानों पर कुछ यहां रह गए और कुछ वहां । परन्तु ऐसे कमज़ोरों की संख्या बहुत थोड़ी थी । संभवता हज़ार या दस हज़ार में से एक । परन्तु उनका अलग होना विनाश का कारण होने के स्थान पर जमाअत के लिए और शक्ति का कारण प्रमाणित हुआ और अधिक वरदानों का अग्रसर बनी । जमाअत का अधिकांश भाग प्रत्येक दशा में बहुत धैर्य एवं सुदृढ़ता के साथ अपनी प्रतिज्ञा पर स्थापित रहा ।

उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक इस मार्ग में जानें दीं और अत्यन्त धैर्य के साथ प्रत्येक अपमान (तिरस्कार) को स्वीकार किया । उनके मुँह काले करके उन्हें गलियों में फिराया गया और गंद और कीचड़ उन पर उछाले गए उनके स्वांग भरे गए, और जूतियों के हार उनके गलों में डाले गए । वह संसार की प्रत्येक घृणित गाली और गंदे आरोप का निशाना बन गए और स्वयं अपने मुहल्लों ही की गलियों में फिरना उनके लिए कठिन हो गया । उनके उन अबोध बालकों पर भी आवाज़ें कसी जाने लगीं जो नहीं जानते थे कि किस दोष की सज़ा उन्हें दी जा रही है । वह प्रतिदिन मदरसों और बाज़ारों से ज़ख़्मी दिल (आहत दिल) और आँसू भरी आंखों के साथ घरों

को लौटते थे । अनोखे व अज्ञात मनों से उनको पुकारा जाता था और दूसरे बच्चे अपने वातावरण के अनुसरण में उन पर तालियां पीटते थे और "मिर्ज़ाई कुत्ता" की आवाज़ें स्थान स्थान पर उठतीं थीं । यह सब कुछ उनकी समझ से बा'हर था । अत: वह सिर फेंके धड़कते हुए दिलों के साथ, छोटे-छोटे तेज़ पग उठाते हुए अपने घरों की शांतिपूर्ण चारदीवारी की ओर बढ़ते थे । परन्तु उनके छोटे सहनों की शांति भी अधिकतर गली से फैंके हुए पत्थरों से एकदम झनझना कर भंग हो जाती थी या गंदगी के ढेरों और क़त्ल की धमकियों पर आधारित पत्रों से मलिन होने लगती थी । अहमदी माता पिता ने यह सब कुछ देखा और अपने बच्चों के ज़ख़्म भी अपनी छातियों पर खाए परन्तु उनके सृद्रढ़ पगों में डगमगाहट न आई ।

आख़िर यह आश्चर्य जनक वृत्तांत क्योंकर हुआ और इस भव्य धैर्य की समर्था उन्होंने कहां से पाई ? वह कौन सा सदृढ़ विश्वास था जो इन आड़े समयों में उनके दिलों का सहारा बन गया ?

यदि वह मिथ्याभाषी, झगड़ालू और झूठे और दज्जाल थे । यदि अहमदिय्यत एक दुकानदारी थी और यह सब कुछ अंग्रेज़ की ग़ुलामी और सांसारिक लालच हेतु स्थापित किया गया था तो इस संदेश हेतु संसार के प्रत्येक लालच को उन्होंने कैसे ठुकरा दिया और अपने धन अपनी आंखों के सामने कैसे लुटते देखे ? अपनी जान और सम्मान के लिए हर ख़तरा क्यों मोल ले लिया और क्यों उन्होंने अडिग संकल्प और धैर्य के उदाहरण दिखाए जिनकी समर्था केवल सच्चों और सत्यवादियों को वरदित होती है। इसका कारण वास्तव में वही कारण था जिसका वर्णन करते हुए बानी-ए-सिलसिला अहमदिया (संस्थापक) हज़रत मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद साहिब अलैहिस्सलाम फ़र्माते हैं :-

क़ौम के ज़ुल्म से तंग आके मेरे प्यारे आज
शोर-ए-महशर तेरे कूचह में मचाया हमने,

काफ़िर व मुलहिदो दज्जाल हमें कहते हैं,
नाम क्या क्या ग़मे मिल्लत में रखाया हमने ।

तेरे मुँह की ही क़सम मेरे प्यारे अहमद(स)
तेरी ख़ातिर से यह सब बार उठाया हमने ।

और उन भयानक दिनों में भी हमारे दिल इस विश्वास से परिपूर्ण थे कि अन्ततः एक दिन प्रेम को घृणा पर विजय प्राप्त होकर रहेगी । यह बिगड़े तैवर अवश्य बदलेंगे । और यह रुठे हुए भाई अवश्य मानेंगे । दिल की भावना अन्ततः काम करेगी और शिष्टाचार का आकर्षण अन्ततः उन्हें हमारे सीनों की ओर खींच लाएगा । हमारे कानों में इमाम जमाअत अहमदिया हज़रत मिर्ज़ा बशीर-उद-दीन महमूद अहमद(र) का यह शांतिमय संदेश बज रहा था और आज भी है कि :-

दुश्मन को ज़ुलम की
बरछी से तुम सीना व दिल बर माने दो.

यह दर्द रहेगा बनके दवा तुम
सब्र करो वक़्त आने दो ।

जब सोना आग में पड़ता है
तो कुंदन बन के निकलता है

फिर गालियों से क्यों डरते हो
दिल जलते हैं जल जाने दो ।

तुम देखोगे कि इन्हीं में से
क़तराते मुहब्बत टपकेंगे,

बादल आफ़ातो मसाएब के
छाते हैं अगर तो छाने दो ।

अतः मुसीबत व कठिनाई के बादल आए और चले गए । उन की बिजलियां हमें जला न सकीं बल्कि प्रेम की बूंदे टपका कर चली गईं । यह बादल फिर भी आते रहेंगे और छाते रहेंगे परन्तु प्रायः यह हमें अपनी बिजलियों से निडर प्रेम की बूँदों की प्रतीक्षा में आंखें बिछाए हुए पाएँगे । और वह दिन बहुत दूर नहीं कि यह प्रेम की बूंदें ऐसे बरसेंगी कि सब कटुताएँ धुल जाएँगी तब रहमत (दया) के आकाशीय जल से जल थल एक हो जाएँगे और इस रहमत के पानी पर ख़ुदा का अर्श (सिंहासन) फिर से स्थापित होगा।